श्री गौरहरिर्जयति

प्रकाशक के द्वारा प्रकाशितग्रन्थ संख्या—१२८

# श्रीगोविन्दलीलामृतम्

श्रीलश्रीकृष्णदासकविराजगोस्वामिविरचितम्

[ तृतीयखण्डम् ]



प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा

# ❁ अथ द्वादशः सर्गः ❁

अथाह वृन्दा व्रज-काननेशौ पादाम्बुजे वामृतु-कारुमुख्यैः ।
निवेदितं षड्भिरिहास्ति यत्तत् साद्धं समाकर्णयतं सखीभिः ॥१॥
प्रीत्यर्थं युवयोः सुचित्रितमिदं वृन्दावनं किङ्करै-
रस्माभिर्बहुयत्नतो निपुणता-सर्व्वस्व-प्रत्यर्पणैः ।
तन्नाथौ कृपया समीक्ष्य सफलं कर्त्तुं युवामर्हतं
भृत्यानां हि विशेषकौशलकृतेरीशावलोकः फलम् ॥२॥
वृन्दावन-स्थिरचरैस्तत्तल्लीलास्थलीस्थितैः ।
निवेदितं पादाब्जे यत् तच्चाकर्णयतं प्रभू ! ॥३॥

---

तब वृन्दादेवी बोली हे व्रजकाननेश्वर राधाकृष्ण ! आप लोगों के चरणकमलों में ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शीत और बसन्त—ये छः ऋतुरूपी प्रधान शिल्पियों का एक निवेदन है। उसे सखियों के सहित श्रवण करें ॥१॥

ऋतुओं का निवेदन यह है कि हम लोग आपके किंकर हैं। हमने आपकी प्रसन्नता के लिए अपना समस्त प्रयत्न तथा निपुणता-रूपी सर्वस्व वृन्दावन को समर्पण करके इसे अत्यन्त सुन्दर रूप से सजाया है। अतएव हे वृन्दा-बनेश्वर युगल ! आप दोनों इस वृन्दावन के प्रति अवलोकन करके इसको सफल बनावें कारण कि स्वामीजन अनुगत सेवकों के विशेष कौशलपूर्ण कृति के प्रति दृष्टिदान करवे

अन्योन्य-सङ्गोल्लसितौ भवन्तौ द्रष्टुं निजार्थैः करुणोद्भवैर्माम् ।
निर्वेदितुं चार्जनि या समीहा तामर्हतं नः सफलीविधातुम् ॥४॥
तावद्देत्याब्रवीत् कृष्णं सुबलेन समं बटुः ।
वृन्दाबन-प्रजाः कृष्ण ! निःस्वास्ते राधया कृताः ॥५॥
सौन्दर्य-माधुर्यमयी वनस्य या लक्ष्मी ह्तास्यास्तनुशोभयैव सा।
फलप्रसूनादिमयी बहिश्च या सखीभिरेवापि समक्षमावयोः ॥६॥
नान्दीमुखी समुपसृत्य ततोऽवदत्तौ
स्वस्त्यस्तु वां सहचरीगण-संयुताभ्याम् ।

---

हे प्रभु राधाकृष्ण ! वृन्दावन के रासादि लीला – स्थली के स्थावर-जंगम प्राणियों ने आप दोनों के चरणकमलों में जो निवेदन किया है, उसे आप श्रवण करें ॥३॥

वे निवेदन करते हैं कि हमारी यह अभिलाषा उत्पन्न हुई है कि आप दोनों परस्पर के संग से उल्लास को प्राप्त हो रहे हैं–यह हम दर्शन करें। हमारी इस अभिलाषा को सफल करने के आप योग्य हैं अर्थात् इसे पूर्ण करें ॥४॥

उस समय सुबल और मधुमङ्गल वहाँ आकर श्रीकृष्ण से बोले–"हे कृष्ण ! तुम्हारे वृन्दाबन की सारी प्रजा को श्रीराधा ने निर्धन कर डाला है ॥५॥

कारण कि श्रीराधा के अङ्ग की शोभा ने तो वन का सौन्दर्य और माधुर्य को हर लिया है तथा वन की बाहर की शोभा जो फल-फूलादि हैं– उन्हें भी हमारे सन्मुख ही श्रीराधा ने अपनी सखियों के साथ हर लिया है ॥६॥

तब नान्दीमुखी आकर कहने लगी हे राधाकृष्ण ! सखीसहित तुम दोनों का मङ्गल होवे ! पौर्णमासीदेवी ने तुम दोनों को शत शत आशीर्वाद दिया है। उससे मङ्गल

साशी:शतं भगवती यदिहादिशद्वां
तत् कर्णयोः पथिकतां नयतं शुभंयू ॥७॥
स तीक्ष्णदण्डः स्मरचक्रवर्त्ती वृन्दाटवी-राज्यपदे भवन्तौ ।
समान-सामन्ततयाभिषिच्य न्ययोजयद्भृङ्ग पिकादि-चारान् ॥८॥
तदात्ममध्ये कलिना न संयुतिः सम्भोगहानिर्नृ पतेर्भयन्तथा ।
समञ्जसत्वेन ततो मदाज्ञया राज्ये सुखं निर्विशतं युवामिति ॥९॥
मामावदत् सा पुनरीत्थमीशा विवाद आसीत् प्रथमं तयोश्चेत् ।
वृन्दावृता त्वं सुविचार्य्य मह्यं दोषोऽत्र कस्येति निवेदयाशु ॥१०॥
नान्दीमुखीमथ जगाद हरिस्त्वमस्या
जानासि वृत्तमखिलं मिलनं कुतो नौ ।

---

को प्राप्त होते हुए तुम उनके आशीर्वाद—वाक्य को श्रवण करो ॥७॥

उनके वाक्य ये हैं:— प्रचण्ड दण्डकारी कन्दर्प सम्राट ने वृन्दावन के राज्य-पद में तुम दोनों का समान सामन्त (अधिकारी) के रूप में अभिषेक करके भ्रमर व कोकिलादिकों को अनुचरों के रूप में नियुक्त किया है ॥८।

इसी कारण (समानाधिकार प्राप्त होने के कारण) तुम दोनों परस्पर में कलह न करना ! कलह से सम्भोग (सुख-भोग) की हानि होती और राजा से भय भी प्राप्त होता है। अत-एव मेरी आज्ञानुसार तुम दोनों राज्य में सुन्दर प्रीति का मेल बनाते हुये सुख-भोग करो ॥९॥

पौर्णमासी ने और भी स्पष्ट करके मुझसे कहा है कि यदि राधाकृष्ण में कहीं विवाद हो जाए तो तुम और वृन्दादेवी मिलकर अच्छी प्रकार से विचार करना कि पहला दोष किस का है और उसे शीघ्र ही आकर मुझसे कहना ॥१०॥

निःस्वीकृतं बनमिदं सबयस्यया मे
वंशी च सा विमुषिता शठयानयाद्य ॥११॥
कौन्द्व्यब्रवीद्यत् स्मर-सार्वभौम-पार्श्वं प्रयातौ कलहायमानौ।
हरे! भवन्तौ पृथु गर्व्ववन्तौ किं तत्र वृत्तं कथयात्र सत्यम् ॥१२॥
कृष्णोऽवदत्तस्य समीप एतां नीत्वा मयोक्तं बनलुण्ठिकेयम्।
निगृह्यतां दण्डितमेतदर्थं मदर्थमस्या मयि दापयेति ॥१३॥
पृष्टामुनेत्थं तमुवाच गोपै-रसंख्य-गोचारणतो बनं ते।
उन्मूलितं तत्फल-पुष्प-लुब्धैः स्वया श्रिया पोषितमस्त्यदो नः ॥१४॥

---

इस प्रकार के पौर्णमासी के बचन नान्दीमुखी से श्रवण करके श्रीकृष्ण उससे बोले- तुम तो इन श्रीराधा के सब वृत्तान्त जानती ही हो। फिर भला हम दोनों में मेल कैसे हो सकता है। देखो न! श्रीराधा और इनकी सखियाँ बड़ी शठ हैं—इन्होंने मिल करके इस बन को लूट लिया है और आज तो मेरी वंशी तक इन्होंने चुराली है ॥११॥

तब कुन्दलता श्रीकृष्ण से बोली - "हाँ कृष्ण! तुम दोनों तो अत्यन्त गर्वीले बने बिवाद मचाते हुए कन्दर्पराज के समीप गये थे ना उस समय वहाँ क्या हुआ था यहाँ सब सच सच बता दो" ॥१२॥

श्री - कृष्ण बोले—इन श्रीराधा को कन्दर्प राज के निकट ले जाकर मैंने कहा, ये बन की लुटेरिन हैं, इनको दण्ड दो। दण्ड में इनसे धन लेकर मेरा धन मुझे दे दो ॥१३॥

तब कन्दर्पराज के पूँछने पर श्रीराधा ने उनसे कहा कि फल फूल के लोभी गोपों ने अपने असंख्य गौओं को चरा चरा कर आपका यह बन उजाड़ कर दिया है। हमने तो अपने

शैथिल्य-भाजोऽस्य मृषा गिरास्या दृष्टो मयाऽस्यां दृढ़-पक्षपातः।
सिद्धेऽपि दोषे न कृतो विचारः साक्षात स युष्मासु समर्पितो यत्।
साब्रवीद्यदि तस्यास्यां पक्षपातस्तदासकौ।
तारुण्य-रत्नं संदण्डय केन निर्व्वचनीकृता ॥१६॥
नृपेङ्गितेनाध्वनि तं निजार्थं मयार्थितापीच्छति चेन्न दातुम।
इमां तदा दण्डयितुं प्रवृत्तो-ऽनया बलात् प्रत्युत दण्डितोऽस्मि ॥
कटाक्ष-बाणैः कुटिलीभवद् भ्रूवा विद्धस्तया गद्गद्रुद्ध-कण्ठया।
मुदं स लेभे किल कुन्दवल्लिका सापि स्वलीला-कमलेन ताड़ना ॥

---

अंग की कान्ति व सम्पत्ति से इस बन को पुष्ट कर रखा है ॥१४॥

श्रीराधा के इस मिथ्याबचन को सुन कर कन्दर्पराजने श्रीराधा का बड़ा भारी पक्ष लिया-यह मैंने स्पष्ट देखा। कितना बड़ा पक्षपात था कि दोष सिद्ध हो जाने पर भी उन पर साक्षात् विचार नहीं किया गया। इसी कारण मैंने अब उस विचार को तुम लोगों के हाथ सोंपा है ॥१५॥

तब कुन्दलता श्रीकृष्ण से बोली "कृष्ण! उस कन्दर्प राज ने यदि श्रीराधा का ही पक्ष लिया तो फिर इनको तारुण्य रूपी रत्न का दण्ड देकर इनको मौन क्यों बना दिया" ॥१६॥

श्रीकृष्ण बोले कि राजा के संकेत से मैंने मार्ग में इन श्रीराधा से अपने धन के लिये प्रार्थना की थी और धन देंगी नहीं—ऐसा सोच कर मैंने इनको दण्ड देना चाहा तो उलटा इन्होंने ही बलपूर्वक मुझे दण्ड दे डाला ॥१७॥

श्रीकृष्ण के ऐसे धृष्ट वचन को सुन कर श्रीराधा का कण्ठ भर आया, वाणी गद्गद हो गई उन्होंने भौंह टेढ़ी

ततः शिरोवेष्टनतः स पत्रिकां निष्कास्य नान्दीवदनाकरे न्यधात् ।
सा तां पठत्यस्फुटमर्थितोत्सुकैः सभ्यैः पुनस्तैः स्फुटमप्यवाचयत् ।
स्वस्ति श्रीस्मरसार्वभौमचरणाब्जानां स-नान्दीमुखी-
वृन्दा-कुन्दलतादि-सभ्यनिचयेष्वेतत् समाज्ञापनम् ।
देया कानन-सत् प्रजाः प्रति हृता श्रीराधया श्रीस्ततो
राधा-माधवयोर्यथा मुरलिका-न्यायो विधेयश्च वः ॥२०॥
सभ्येषु पृच्छत्स्वथ राधिकां तां पुरः स्थितोवाच तदा विशाखा ।
पुरानयाख्यायि नृपाग्रतो यत् पुष्णाति सेयं वनमात्मलक्ष्म्या ॥२१॥

---

करके श्रीकृष्ण प्रति कटाक्ष पात किया। उन कटाक्ष-बाणों से बिंधे जाने तथा कुन्द-लता व श्रीराधा के हस्त के लीला-कमल से ताड़ित होने पर भी श्रीकृष्ण अतिशय आनन्द को प्राप्त हुये ॥१८॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने उस पत्र को अपनी पगड़ी में से निकाला जो उन्होंने पहले ही लिखकर उसमें रख छोड़ा था और उसे नान्दीमुखी के हाथ में अर्पण किया। नान्दी-मुखी उसे अस्पष्ट रूप से पढ़ने लगी परन्तु सभा के श्रवणो-च्छुक जनों के प्रार्थना करने पर वह स्पष्ट रूप से पुनः पढ़ने लगी ॥१९॥

पत्रः—"श्रीयुत स्मर – सार्वभौम के चरणकमलों की जय हो। नान्दीमुखी, वृन्दा व कुन्दलतादिक सभ्यगण के प्रति कन्दर्पराज का विज्ञापन यह है कि श्रीराधा ने वृन्दावन की प्रजाओं की जो श्री अर्थात् सम्पत्ति हरन की है यह उस बन की प्रजाओं को वापिस लौटा दी जाय। तदनन्तर श्रीराधा-माधव के मुरली-विवाद पर यथायोग्य विचार किया जाय" ॥२०

अब सभासदों को श्रीराधा से प्रश्न करने को उद्यत देख

अथाह ललिता मुग्धे ! तदेतत् कथनेन किम् ।
प्रतिबिम्वं हि राधायाः श्रीमूर्त्तेर्व्रजकाननम् ॥२२॥
किं करिष्यति राजा नः सूचकैरुपयापितः ।
पालयामोऽटवीं स्वीयां गृह्णीमोऽस्याः फलादिकम् ॥२३॥
तथाप्याज्ञास्य पाल्या चेद्गत्वाग्रे पश्यताटवीम् ।
वृन्दावनेशया पुष्टामात्मपोषं सखीमिव ॥२४॥
नैवास्माभिः क्वापि दृष्टास्ति वंशी
धर्म्मोच्छित्त्यै दीक्षिता या सतीनाम् ।

---

सन्मुख स्थित विशाखा बोली "इन्ही श्रीराधा ने कन्दर्पराज के सन्मुख पहिले यह कहा कि ये निज सम्पत्ति द्वारा इस बन की पुष्टि कर रही हैं अर्थात् इन्होंने बन की प्रजाओं की सम्पत्ति कुछ भी नहीं हरन की है ॥२१॥

ललिता बोली अरी भोली-भाली विशाखे ! तुम्हारे इस कथन का प्रयोजन ही क्या है ? यह व्रजबन तो श्रीराधा की श्रीमूर्ति का प्रतिबिम्ब स्वरूप है ही – फिर कहना क्या ? ॥२२

दुष्ट लोग भले ही राजा के समीप चुगली खायें, राजा हमारा क्या बिगाड़ सकता है ? हम अपने बन का आप पालन करेंगी और इसके फलादिकों को भी हम लेंगी ॥२३॥

और यदि कन्दर्पराज की आज्ञा माननी ही है तो पहले चल कर तो देखो कि यह वृन्दावन, बृन्दावनेश्वरी श्रीराधा द्वारा अपनी सखी की भाँति कैसे लालित-पालित हो रहा है ॥२४

रही वंशी की बात तो जिस वंशी ने सतियों का धर्म-नाश करने की दीक्षा ले रखी है, उसे हमने कहीं भी नहीं देखा है । परन्तु यदि कहीं भाग्य से वह हमें मिल भी जाय

सास्मद्दिष्ट्या लभ्यते चेत्तदैनां
कृष्णापूरैर्वाहयामः समुद्रम् ॥२५॥
नान्द्यब्रवीत् कृष्ण ! वन-प्रजाभ्यो
दत्ता मया श्रीरिति यद्वचोऽस्याः ।
सत्यं मृषा वेति विचार्य्य पूर्व्वं
वंश्या विचारः परतो विधेयः ॥२६॥
वनमनु ललिताग्रे कृत्य राधां चलन्ती
विपिन-विहरणेच्छुः प्रेष्ठयोः प्राह सभ्यान् ।
चलत सह मयैव स्वश्रिया राधयाद्धा
कलयत वनमेतत् पोषितं भूषितं च ॥२७॥
खग-मृग-तरु-वल्ली-पत्र-पुष्पादि-वृन्दे
प्रकट-कनक-गौराद्वैत-वर्णोऽथ जाते ।

---

तो हम उसे यमुना-जल में बहा कर समुद्र में पहुँचा देंगी ॥२५

नान्दीमुखी बोली, "कृष्ण ! प्रजाओं को मैंने सम्पत्ति दान की है श्रीराधा का यह बचन सत्य है कि मिथ्या, इसका विचार पहले करके फिर वंशी का विचार करना ही उचित है" ॥२६॥

ललिता की भी यही इच्छा थी कि प्रियतम युगल श्रीराधा-कृष्ण बन-भ्रमण करें अतएव श्रीराधा को आगे कर बन-गमन को उद्यत होती हुई ललिता कहने लगी "तुम सब मेरे साथ चलो और चलकर प्रत्यक्ष-देखलो कि श्रीराधा ही अपनी शोभा द्वारा बन को पुष्ट व भूषित कर रही हैं" ॥२७॥

जब श्रीराधा को आगे कर सब बन-को चले तब क्या हुआ कि पक्षी, मृग, तरु, लता, पत्र, पुष्पादि समस्त पदार्थ ही स्वर्ण के समान केवल गौरवर्ण के प्रकाशित होने लगे ।

अघरिपुमुख-सभ्यानान्तु ते ते पदार्थाः
परिचयपदमीयुः केवलाकार-भेदैः ॥२८॥
सभ्यान् पुरस्कृत्य जगाद नान्दी सत्यं वचः श्रीवृषभानुजायाः ।
पुष्टं स्वकान्त्या विपिनं यदस्या नेत्रोत्सवं नस्तनुतेऽखिलानाम् ॥२९
कृष्णोऽवदद्याति यदेयमालयं सम्पत्तिमादाय वनस्य कृत्स्नशः ।
आयाति चेद्रूपभियार्पयत्यमुं तदिन्द्रजालं किमु वेत्ति राधिका ॥३
हर्षोत्फुल्लाः प्रहसितमुखीर्वीक्ष्य सर्व्वा वयस्याः
कृष्णे यत्नात् सपदि बटुना प्रापितेऽग्रेसरत्वम् ।
श्रीराधाया द्युति-शवलिता कृष्णकान्तिः समृद्धा
प्रोत्सपन्ती मरकतनिभा व्यानशे काननं तत् ॥३१॥

---

उनमें केवल आकार का ही भेद रह गया जिससे कि श्री-कृष्णादि सभ्यजन यह जान पाते थे कि यह पक्षी है, पशु है इत्यादि ॥२८॥

नान्दीमुखी सभ्यगण को सम्बोधित करके कहा कि वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधा का वचन ही सत्य है कारण कि उनकी निज-कान्ति द्वारा परिपुष्ट होकर यह वन हम सबके नेत्रों को आन-न्दित कर रहा है ॥२९॥

तब श्रीकृष्ण बोले—"श्रीराधा जब अपने गृह को गमन करती हैं उस समय इस वन की समस्त सम्पत्ति लेकर चली जाती हैं और जब फिर इस वन में आती हैं तो कन्दर्पराज के भय से सब सम्पत्ति वापिस लौटा देती हैं। इससे मालूम होता है कि श्रीराधिका कोई इन्द्रजाल – विद्या जानती हैं ॥३०॥

श्रीराधा की सखियों को हर्ष से फूली और हंसती देखकर मधुमंगल ने तुरन्त श्रीकृष्ण को आगे कर दिया। तब तो श्री-राधा की गौरकान्ति से श्रीकृष्ण की मरकतवर्णतुल्य कान्ति

हृष्टोऽथ ऋक्ष्रीमधुमङ्गलस्तान् मिथो मिलद्भ्यः शबलोज्ज्वलाङ्गौ।
राधा-मुकुन्दो स्मरतापितौ किं तद्वञ्चनायैक्यमिह प्रयातौ ॥३२॥
सभ्यान्नूचे प्रहसितमुखी तुङ्गविद्या कवीशा
श्रीगान्धर्व्वा-द्युति शबलितैः कान्ति-पूरैर्मुरारेः।
यूयं सर्व्वे मरकतमयीं दीप्तिमासाद्य सद्यः
प्राप्ताः स्थोदाहरण-पदतां तद्गुणालङ्कृतेनु ॥३३॥
किञ्चिद्विवक्षौ पुरतः सरन्त्यां चलत्करायां बनपालिकायाम्।
दैवात् समीराभिमुखी यदासी-द्वंशी तदास्या ध्वनिरुच्चचार ॥३४

---

और अधिक उभल पड़ी और सुवर्णकान्ति मानो वन पर छा गयी अर्थात् आराधा की गौरकान्ति और श्रीकृष्ण की नील-कान्ति दोनों मिल कर एक मरकत (हरित्) वर्ण की कान्ति वृन्दाबन पर व्याप्त हो गई ॥३१॥

तब मधुमंगल फूल कर बोला—"सखियो ! क्या श्रीराधा-कृष्ण ने ही अपनी सम्मिलित कान्ति में प्रवेश कर उज्ज्वल अांग धारण किया है ? क्या उस कन्दर्प-ताप के छलना के लिये दोनों यहां आकर इस मरकतकान्ति में एक हो गये हैं ॥३२॥

इस पर कवीश्वरी तुंगविद्या अपने मुख पर हँसी की छटा बिखेरती हुई बोली-हे सभ्यगण ! राधाकान्ति युक्त श्रीकृष्ण की कान्ति में तो तुम्हें सदा मरकतकान्ति ही प्राप्त होता रहता है और वह मरकतकान्ति श्रीराधाकृष्ण के गुणालंकार के उदा-हरण को ही प्राप्त होना प्रतीत होता है ॥३३॥

अब तो बनपालिका वृन्दादेवी के भी कुछ कहने की इच्छा हुई तो वह हाथ को चलाती हुई जैसे ही आगे बढ़ी कि दैवयोग से उसके हाथ में छिपायी हुई वंशी के छिद्रों में वायु प्रवेश कर गई और वह बज उठी ॥३४॥

तत्काकली-श्रवणतश्चकितासु सख्यी-
स्वासाद्य तां सपदि कुन्दलता सखीभिः ।
आदाय तत्करतलान्मुरलमीथैनां
चौरीयमित्युपनिनाय हरेः समीपम् ॥३५॥
राधाब्रवीन्मुरलिकां विनिधाय वृन्दा-
पाणौ कदर्थयति ते सखि देवरोऽस्मान् ।
तन्मन्यसे न यदि पृच्छ कुतोऽनयेयं
प्राप्ता न चेद्वदति सत्यमियं हि दण्ड्या ॥३६॥
वृन्दाह कक्खटिकया वंशी शैव्याकराद्बलात् ।
आच्छिद्यानीय मे दत्ता कुञ्जे नान्दीमुखी-पुरः ॥३७॥
अथ कुन्दलता वंशीं कृष्णपाणौ समर्पयत् ।
सोऽप्यादाय चिराल्लब्धां प्रहृष्टस्तामवादयत् ॥३८॥

---

उस वंशी-ध्वनि को श्रवण कर सब सखियाँ चकित हो उठी। तब तो सखियों के साथ कुन्दलता ने जाकर बृन्दा के हाथ से मुरली ले ली और "यह बृन्दा चोर है" कहती हुई श्रीकृष्ण के समीप उसे ले गयी ॥३५॥

श्रीराधा कुन्दलता से बोली—"सखी कुन्दलते ! तुम्हारा देवर वृन्दा के हाथ में वंशी पकड़वा हम लोगों को वृथा ही कष्ट दे रहा है। यदि ऐसा नहीं है तो पूछो कि इस बृन्दा को यह वंशी कहाँ मिली ? इतने पर भी यदि सच न बताये तो यह निश्चय ही दण्ड की भागिनी बनेगी" ॥३६॥

बृन्दा ने उत्तर दिया कि एक बन्दरी ने शैव्या के हाथ से बलपूर्वक वंशी छीन कर नान्दीमुखी के सन्मुख कुञ्ज में मेरे हाथ में दे दी थी ॥३७॥

तब कुन्दलता ने श्रीकृष्ण के हाथ में वंशी समर्पण की

मनोवंशान् कुर्वन्निजगदबलानां मदन-रुग्-
घूर्णोत्कीर्णान् जीर्णान् स्थिर-चरण-धर्म्मान् विनिमयन् ।
ऋतूनां सम्पत्तीयुगपदिह षण्णां समुदयन्
सुधासारैः सिञ्चन् जगदुदलसद्वेणु-निनदः ॥३९॥
श्रीकृष्णस्याविकल-मुरली-ध्वान-बाणैर्विदूरा-
न्नारीणां यद्वरधृतियुजां दर्पकोन्मत्ततासीत् ।
अश्लीलोकोऽप्यभवदतनुखण्ड-पीड़ा-विहस्त-
स्तन्नाश्चर्य्यं यदयमभिता मारमूर्त्ति-स्वरूपः ॥४०॥
द्रवति शिखरवृन्देऽचञ्चले वेणुनादै-
र्दिशि दिशि विसरन्तीर्निर्झरापः समीक्ष्य ।

---

और श्रीकृष्ण भी बहुत समय बाद वंशी को प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हो उसे बजाने लगे ॥३८॥

यह वंशीध्वनि कैसी है कि त्रिभुवन की सकल अबलाओं के मन रूपी जो वंशावली (बाँस-समूह) है उसमें काम-रोग का घुन (कीड़ा) लगा कर उसे खाने वाली है; स्थावर को जंगम और जंगम को स्थावर करने वाली है, वृन्दावन में छहों ऋतुओं के धर्म एक समय में ही उदय करा देनी वाली है तथा त्रिलोकी को अमृत-धारा से सिंचन करने वाली है। इस प्रकार यह वंशीध्वनि परमोल्लासमयी है ॥३९॥

श्रीकृष्ण की अविकल (शुद्ध) मुरलीध्वनि कन्दर्प के बाण तुल्य भी हैं। इन बाणों के द्वारा अत्यन्त धैर्य्यवती नारियों में दूर से श्रवण करके ही जो कामोन्मत्तता उत्पन्न होती है तथा पुरुषों में भी काम की जो प्रचण्ड - पीड़ा उदय होती है-वह आश्चर्य की बात नहीं कारण श्रीकृष्ण साक्षात् मूर्तिमान कामदेव हैं ॥४०॥

तृषित–खग–मृगाली गन्तुमुत्का जड़ा तैः
स्वयमपि सविधाप्ता नैव पातुं समर्था ॥४१॥
वंशी–नादैः सरसि पयसि प्राप्तिते ग्राव-धर्म्मं
हंसीः सन्दानित-पदयुगाः स्तम्भिताङ्गी रिरंसुः ।
आसन्नीशाः स्वयमपि जड़ा बद्धपादा न गन्तु
ताभ्यो दातुं न बिष-शकलं नापि भोक्तुं मरालाः ॥४२॥
ततो बृन्दाटवीं बृन्दा स्फीतां तत्तद्दतु–श्रिया ।
दर्शयन्ती स्वनाथौ तावभाषत पुरोगता ॥४३॥

---

अब वंशी-ध्वनि-श्रवण से स्थावर-जंगमादि के धर्म विपर्यय का वर्णन करते हैं:—वेणुनाद से जब पाषाण पिघले तो पर्वत बृन्द भी पिघल कर चारों ओर बह चले। उनके बहते हुए जल – राशि को देखकर तृषातुर पशुपक्षीगण जल पीने को जब उत्कण्ठित हुए तो वंशी-ध्वनि से स्वयं जड़-से बने रह गये और जल के समीप ही होने पर भी जल पीने में किसी प्रकार भी समर्थ न हो सके ॥४१॥

इस वंशी-नाद से सरोवर का जल जमकर पाषाणवत् हो गया– तब तो हंसिनियों के दोनों पाँव भी बँध गये और देह भी अचल हो गई। हंसगण रमण की इच्छा करते हुए भी शिला रूप में परिणत जल में पाँवों के फँस कर जम जाने के कारण चलने में और अपनी प्रियागण हंसिनियों को कमल की नाल देने में अथवा आप ही खाने में भी असमर्थ हो गये ॥४२॥

तब बृन्दादेवी अपने नाथ श्रीराधाकृष्ण के सन्मुख उपस्थित हुईं और पूर्वोक्त तद्तद् ऋतुओं की शोभा सम्पत्ति से समृद्ध वृन्दावन का अवलोकन कराती हुई कहने लगी ॥४३॥

स्फुरत्स्तम्भास्तब्धैर्विलसति चरैः कम्प-वलिता
स्थिरैः कम्प्रैः स्विन्ना स्रवदुपलकैर्गद्गदयुता।
विरावैरस्पष्टैः पुलक-वलिताङ्गयङ्कुर-चयैः
सखीश्रेणी-वेशौ प्रणयविवशा सेयमटवी ॥४४॥
वासन्ती-बकुलादिकैर्विचकिलामोघा-शिरीषादिकै-
र्यु थी-नीप-सुकेतकी-प्रभृतिभिर्जात्यब्ज-बाणादिभिः।
लाध्राम्लानमुखैश्च चारुकुसुमैर्बन्धूक-कुन्दादिभिः
क्ऌप्ताकल्प-विभूषणार्चिततनुस्तैर्भाति सैषाटवी ॥४५॥

---

अब उस शोभा सम्पत्ति का विस्तार करने के लिये वृन्दाटवी के सखी - भाव का दर्शन करते हैं। यथा—हे श्रीराधा-कृष्ण ! यह अटवी (वन) सखियों की भाँति प्रेम-विह्वला हो शोभा दे रही है। जैसे सखियाँ स्तम्भ, स्वेदादि सात्त्विक भावों से विह्वल होकर विलास करती हैं वैसे ही इस वृन्दाटवी के जंगम प्राणी जो जड़ धर्म को प्राप्त हो गये हैं, वही तो इस वन सखी के अंग में स्तम्भभाव है; जो स्थावर पदार्थ कम्पित हो उठे हैं वही इसका कम्प है, पिघलते हुये पाषाण ही इसके स्वेद है, पक्षियों का अस्फुट कलरव ही इसकी गद्गद् वाणी है और अंकुरों के समूह से यह पुलकितांगी बनी शोभा दे रही है ॥४४

अब अंग-भूषण का वर्णन करते हैं:—बसन्त ऋतु में उत्पन्न मालती व मौलसिरी आदि, ग्रीष्म में उत्पन्न मल्लिका, अमोघ अर्थात् पाटल व शिरीष, वर्षा ऋतु में यूथिका, कदम्ब व केतकी, शरद् ऋतु के जाति, पद्म व बाण, हेमन्त ऋतु के लोध व अम्लान एवं शिशिर ऋतु के बन्धूक प्रभृति जो सुन्दर पुष्प-राशि हैं उनसे ही इस बनसखी की सुन्दर वेश-रचना हुई है। उनसे अलंकृत होकर यह वृन्दाटवी शोभा को प्राप्त हो रही है ॥४५

फुल्लाभिर्माधवीभिर्वकहर ! विलसन्त्यत्र फुल्ला रसालाः
सन्मल्लीभिः शिरीषास्त्विह वरगणिका-वीथिभिश्चात्र नीपाः ।
जातीभिः सप्तपर्णा इह च कुसुमिताम्लान-पालीभिरस्मिन्
लोध्रास्ते वां सपर्य्यार्थिन इह फलिनी-श्रेणिभिः कुन्दभेदाः ॥४६॥
भृङ्गैः क्वापि वनप्रियाः क्वचिदिमे चाषैश्च घुम्याटका
दात्यूहैः शिखि-चातकास्तत इतो हंसादयः सारसैः ।
कीराः क्वापि किखीकुलैरिह भरद्वाजैश्च हारीतका
गायन्तीव मुदात्र वां गुण-यशः प्रेम्णा स्तुवतः सदा ॥४७॥
शाखैका मुकुलैर्युता किशलयैरन्या प्रसूनैः परा-
प्येकस्येह तराहरिद्भिरपरा काचिद्दलैः पाण्डुरैः ।

---

अब वसन्तादि ऋतुओं में दम्पति-भाव को प्राप्त लता व वृक्षगण की विशिष्ट शोभा को वर्णन करते हैं। यथा हे श्रीकृष्ण ! इस वृन्दाटवी में विकसित माधवी - लताओं के साथ प्रफुल्लित रसालवृन्द, सुन्दर मल्लिकाओं के साथ शिरीष समूह, यूथिकाओं के साथ कदम्ब समुदाय, जाति - लताओं के साथ सप्तपर्ण समूह, कुसुमित व अम्लान पाली-(पंक्तियों) के साथ लोध्र के वृक्ष तथा फलवती प्रियंगु लताओं के साथ कुन्द-गण मिलित होकर तुम दोनों की पूजा के लिये विशेष शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥४६॥

इस वृन्दाटवी में किसी स्थान में भौंरों के साथ कोयलों का समूह, कहीं स्वर्ण - चातक - पक्षियों के साथ गुड़गुड़, कहीं डाहुक पक्षियों के साथ मोर व चातकों का झुण्ड, सारस समुदाय के साथ शुकश्रेणी, तथा भरद्वाज पक्षियों के साथ हारीत पक्षीकुल बड़े आनन्द के साथ प्रेम विवश होकर मानों तो आप दोनों के गुण व यश का ही कीर्तन कर रहे हैं ॥४७॥

अन्यान्यापि च जालकैः किल फलैः पाकोन्मुखैः पक्त्रिमै-
र्यस्येत्थं तरु-मण्डलः षड़ृतुभिः स्वैः स्वैर्गुणैः सेव्यते ॥४८॥
ईयं वृन्दाटव्यातत-षड़्तु-लक्ष्मी-सहचरी-
कुलैः स्वैःस्वं स्वच्छमधुर-विभवैर्मण्डिततनुः।
भृतोच्चैःसम्भारा प्रणय-विवशालीव रभसात्
स्वसम्पद्भिः साक्षादभिलसति वां सेवन-सुखम् ॥४६॥
उदूर्ध्व-प्रसर्पत्सुमनोरजःपटं विधुन्वती वीक्ष्य गृहागतौ युवाम् ।
समीरलोलाग-लतावलिच्छला-दानन्दिता नृत्यति वृन्दिकाटवी। ५०

---

वृन्दाटवी के वृक्ष-श्रेणियों में किसी वृक्ष की एक शाखा में कलियाँ खिल रही हैं तो दूसरी शाखा में पल्लव निकल रहे हैं और तीसरी में कुसुम खिल रहे हैं। किसी शाखा के पत्ते हरे हैं तो किसी के पीले हैं। किसी में कच्चे फल लगे हैं तो किसी के फल गदरा रहे हैं। इस प्रकार वृक्ष समूह छहों ऋतुओं के गुणों से आप दोनों की सेवा कर रहे हैं ॥४८॥

यह वृन्दाटवी अपनी विस्तृत शोभा-रूपिणी सहचरियों के द्वारा विभूषिता, तथा पूर्वोक्त निज - माधुर्यवैभव के द्वारा सुशोभितांगी होकर, उत्कृष्ट सेवा-सामग्री को सँवारे हुये, प्रेम-विह्वला एक सखी की भाँति अपनी सम्पदा के द्वारा आनन्द-पूर्वक आप दोनों की साक्षात् रूप से सेवा करने के सुख की अभिलाषा करती है ॥४६॥

और भी-आप दोनों को अपने गृह में समागत् देख यह वृन्दाटवी आनन्दमग्ना होकर अपने वस्त्रों को ऊपर उछाल उछाल कर नृत्य कर रही है। वृक्षों से पुष्पों के पराग का ऊपर उड़ना ही वस्त्रों को उछालना है और वायु के झकोरों से वृक्ष और लताओं का हिलना ही नृत्य करना है ॥५०॥

नाना-वर्णैश्च पतितैः पुष्पैश्चित्राम्बरैरिव ।
वर्त्मास्तरणमानन्दात् कुर्वत्यभ्येति वामियम् ॥५१॥
युष्ममुखेन्दु-स्रवदिन्दुकान्त-सत्कुट्टिमानां पयमार्पयन्ती ।
पाद्यं युतं तत्सरणीषु जातैः श्यामाक-दूर्वाऽब्ज्यपराजिताब्जैः ॥५२
अर्घ्यञ्च दूर्वा-सुमनोऽङ्कुरादिकै निवेदयन्त्याचमनीयमम्बुभिः ।
तदम्बुपद्यान्तिकजाग-निष्पत-लवङ्गजालीफल-कोरकान्वितैः ॥५३
स्रवन्मरन्दैर्मधुपर्कमन्द-च्छाया-हिमाम्भःकणभारनम्रैः ।
शीतानिलैस्तोयनिभैः सुगन्धैः स्नानीयमानीय समर्पयन्ती ॥५४॥

---

जैसे सम्माननीय व्यक्ति का पाँवडे बिछाकर स्वागत किया जाता है वैसे ही यह वृन्दाटवी भी अपनी भूमि पर पतित नाना वर्ण के कुसुमावलियों के चित्र विचित्र पाँवड़े बिछाती हुई आप दोनों की पधरावनी कर रही है ॥५१॥

आसन का वर्णन कर अब पाद्य का वर्णन करते हैं यथा, आप दोनों के मुखचन्द्र की कान्ति से चन्द्रमणि की वेदिका (थाँभरा) पिघल कर बह चली। उस उत्कृष्ट वेदिका का वह जल, तथा बन के मार्ग में उत्पन्न हरित दूब, अपराजिता एवं पद्मपुष्प से युक्त पाद्य यह वृन्दाटवी आप दोनों को अर्पण कर रही है ॥५२॥

तथा दूब, पुष्प व अंकुरादि द्वारा अर्घ चढ़ा रही है एवं बन की नदी के समीप के वृक्षों से पतित लौंग व जायफल की कलिकाओं से युक्त आचमनीय निवेदन कर रही है ॥५३

और भी यह वृन्दाटवी पुष्पों से झरते हुये मधु द्वारा मधुपर्क अर्पण कर रही है। तथा मेघ की छाया से व हिम-कण के भार से शीतल समीर के जल के समान सुगन्धियुक्त स्नानीय जल समर्पण कर रही है ॥५४॥

किशलयदल-नानावर्ण-पुष्पोच्चयानां
जितमणि-मुकुरेष्वङ्गेषु वां बिम्बिताभिः ।
रुचिभिरिह विचित्राण्यंशुकान्यङ्गयोग्या-
न्यवयवचय-योग्यालङ्कृतिश्चार्पयन्ती ॥५५॥
स्वोत्पन्न-चन्दन-मधु-अगुरु-कुङ्कुमानां
चञ्चत्समीर-मिलितैवर-सौरभैर्वाम् ।
चर्चां मुदाङ्ग-निचयेषु समर्पयन्ती
नानापराग-मिलनैः पटवासकांश्च ॥५६॥
गुच्छार्द्धान् बकुलैः कृतान् विचकिलैरेकावलीं गोस्तनान्
यूथीभिर्नवमालती-सुकुसुमैः श्रोत्रावतंसान्यपि ।
अम्लानैरपि गर्भकांश्च रसनां कुन्दैः कृतां बामसा-
बन्यैरन्यविभूषणानि कुसुमैरङ्गेऽर्पयन्ती मुदा ॥५७॥

---

तुम दोनों का अंग मणिमय, रत्नमय, सुवर्णमय व मर-कतमय दर्पण को भी पराजित करता है। उन अंगों के प्रति यह वृन्दाटवी नवीन पल्लवों व नाना वर्ण के कुसुम समूहों के परस्पर के प्रतिबिम्ब से चित्र-विचित्रित वस्त्र एवं अलंकारों को समर्पण करती है ॥५५॥

और यह वृन्दाटवी, अपने में उत्पन्न चन्दन, मधु, अगुरु व कुंकुम की सुगन्धि को लेकर आने वाली मन्द मन्द वायु के सौरभ से युक्त चन्दनादि-लेप व नाना विध कुसुम पराग के मेल से प्रस्तुत सुगन्ध-चूर्ण आप दोनों के अंग-प्रत्यंग के प्रति समर्पण कर रही है ॥५६॥

यह वृन्दाटवी, आप दोनों के अंगों के लिए मौलसिरी के फूलों के झब्बे, मल्लिका सुमन की एकलड़ी हार, यूथिका पुष्पों की चौसर हार, नवमालती के कर्णफूल, केशपाश के

स्वोत्पन्नानेक-सत्पुष्प-तुलसीदलमञ्जरीः ।
पल्लवांश्चार्पयन्त्येषा तैः कृताश्च बहुस्रजः ॥५८॥
उदूर्ध्वप्रसर्पद् वरसौरभोर्म्मी लोलालिमाला-मिषतोऽत्र धूपम् ।
दीपं चलद्गन्धफली-च्छलेन नैवेद्यमिष्टैः स्वफलैर्ददाना ॥५६॥
रम्भा-गर्भज-कर्पूर-लवङ्गैलादि-संयुतैः ।
समर्पयन्ती ताम्बूलं स्वपूगाहिलतादलैः ॥६०॥
स्वयंपतद्भिः कुसुमैः सुवहा-वकुलादिभिः ।
पुष्पवर्षं विदधती शारीशुक-जयध्वनैः ॥६१॥

---

लिये अम्लान पुष्पों के गुच्छ, कटि के लिये कुन्दपुष्पों की कौंधनी तथा अन्यान्य पुष्पों के और भी अनेक आभूषण सानन्द अर्पण कर रही है ॥५७॥

यह वृन्दाटवी, अपने में उत्पन्न अनेक उत्तम पुष्प, तुलसी-दल, मञ्जरी, तथा सुकोमल पल्लवों को तथा इनके द्वारा बनी हुईं बहुविध मालाएँ आप दोनों को समर्पण कर रही है ॥५८॥

और यह वृन्दाटवी, ऊपर को उड़ने वाली सुगन्धि से खिच कर ऊपर उड़ने वाले भौंरों के छल से धूप-दान कर रही है, हिलते हुये चम्पक श्रेणी के छल से दीपदान कर रही है तथा अपने में उत्पन्न मन चाहे फलादिकों का नैवेद्य समर्पण कर रही है ॥५६॥

और, कदली के गर्भ से उत्पन्न कपूर, लौंग व इलायची, सुपारी आदि द्रव्यों को डाल कर पान-पत्र को भी तांबूल के लिये समर्पण कर रही है ॥६०॥

और यह वृन्दाटवी स्वयं पतित हारसिंगार, मौलसिरी

मरुच्चलच्चम्पक-शाखिकादोश्छदाग्र-पाण्युत्थकलिकालि-दीपैः ।
विराव-वाद्यैरलिनाद-गानै- र्नीराजयन्त्यद्य मुदाटवी वाम् ॥६२॥
समीरणोत्थापित-पातितैर्मुहुः शाखाचयैः पुष्पफलानि पल्लवैः ।
नम्रैर्मुदासौ युवयोर्वितन्वती पादाम्बुजाग्रेऽमितदण्डवन्नतिम् ॥६

स्तुतिं खगानां निनदैरलिस्वनै-
र्वाद्यञ्च गानं पिकपञ्चमैः कलैः ।
कथास्त्वदीयाः शुकशारिकादिभि-
र्नृत्यञ्च नृत्यच्छिखिभिर्वितन्वती ॥६४॥

---

आदि की सुमन-वर्षा कर रही है तथा शुद्ध सारिकाओं की ध्वनि के द्वारा जय जयकार कर रही है ॥६१॥

और यह वृन्दाटवी आज आप दोनों की आरती भी उतार रही है:—चम्पक-वृक्षों की शाखायें ही भुजायें हैं, उनके पत्ते ही पाणि (हाथ) हैं, और पत्तों के आगे के भाग में जो कलियाँ हैं वे ही दीप हैं। पक्षियों का कलरव ही आरती के बाजे बज रहे हैं और भौंरों की गुंजार ही गीत गाये जा रहे हैं ॥॥६२॥

और यह देखिये—यह वृन्दाटवी आप दोनों के चरणों के आगे असंख्य दण्डवत् प्रणाम भी कर रही है— वायु के झोंकों से फूल-फल-व पत्तों समेत शाखाओं का बार बार ऊपर उठना और झुक झुक कर नीचे हो जाना ही उसकी विनम्र प्रणति है ॥६३

और भी देखिये – यह वृन्दाटवी पक्षियों की ध्वनियों से स्तुति कर रही है, भौंरों की गुंजार में बाजे बजा रही है, कोकिलों के पंचम – स्वर में गा रही है, शुक- सारिकादि के आलाप में आप दोनों की कथा को वर्णन कर रही है और मोर-मोरनियों के नृत्यकारी द्वारा आप दोनों के सम्मुख नृत्य प्रस्तुत कर रही है ॥६४॥

चक्रानिलोत्थापित-पुष्पधूली-जालैरुपर्याशु बितायमानैः ।
माध्वीक-पीयूष-कणास्रबीणि मुदातपत्राणि च बिभ्रतीयम् ॥६५॥
इतस्ततो बल्लरि-चामरैर्मरु-द्विलोल-रम्भादल-तालबृन्तकैः ।
सम्बीजयन्तीति कृतान्महोत्सवा-दानन्दसत्रैरखिलानतर्पयत् ॥६६
मुकुन्द-मन्दानिल-सत्कुबिन्दकः समुच्छलत्पुष्परजोबितानकम् ।
इतस्ततोऽब्रन्मधुपावली-तुरीं क्षिपन्निबोष्णावरणाय वां बयेत् ॥६७
ईशाबिमं पश्यतमात्मनोऽग्रे बसन्तकान्ताख्यमरण्यभागम् ।
यस्मिन्नृतूणामधिपो मुदा वां सेवोत्सुकः स्वैर्बिभवैश्चकास्ति ॥६८॥

---

और आप दोनों के ऊपर यह छत्र भी बड़े आनन्द से धारण कर रही है। बवण्डर से पुष्पों की पराग राशि ऊपर आकाश में व्याप्त होकर उसका एक चँदौवा सा बन गया है। उसमें से मधु के अमृतकण झर रहे हैं। ऐसा है यह आतपत्र (छत्र) ॥६५॥

और चँवर के आकार की बेलों से यह आप के चावर डुरा रही है और बायु के चलने पर केले के पत्तों से यह आप की इधर से उधर तक बीजना कर रही है। इस प्रकार आसन, अर्घ्य। पाद्यादि आप दोनों को प्रदान करके बृन्दा-टवी ने एक महोत्सव मनाया है, एक आनन्द-यज्ञ करके अखिल प्राणि को परितृप्त किया है ॥६६॥

हे मुकुन्द ! यह मन्द समीर एक बड़ा निपुण तन्तुकार (जुलाहा) है। इसने आप दोनों के ताप-निबारण के लिये मधुकरों को तुरी बनाया है। ये आकाश में इधर से उधर उड़ते हुये पुष्प-पराग के डोरे बुन बुनकर चँदौबा तान रहे हैं ॥६७

हे युगल प्रभो ! अब आप अपने आगे बसन्त नामक बन के भाग का अबलोकन करें, जिस बन में ऋतु - राज बसन्त

अथ तद्विलोक-मुदितेन स्वमधुरिम-दर्शनोद्गता सा ।
हृदय-दयितां प्रति तां प्रमदादवर्णि हरिणा बनद्युतिः ॥६९॥
कुन्दे मरन्दाशन-तुन्दिलास्ते मन्दादराः सम्प्रति कुन्ददन्ति !
इन्दिन्दिराः पश्य मरन्द-लुब्धामाकन्दमुच्चूनशिखं प्रयान्ति ॥७०
मौनव्रतं त्यक्त मिवान्यपुष्टाः कण्ठं कषायेण विशोधयन्तः ।
सार्द्धं पिकीभिः कलकण्ठि पश्य माकन्दमुद्यन्मुकुलं प्रयान्ति ॥७१
बासन्ती – स्वर्णयूथी-मुखहसित-लतालीभिरालिङ्गिताङ्गी
फुल्लेयं चम्पकाली बकुलततिरियं सापि तापिञ्छमाला ।

---

आप लोगों की सानन्द सेवा करने के लि उत्कंठित हो अपने वैभव सहित शोभा दे रहा है ॥६८॥

तब श्रीकृष्ण बन की सफल शोभा के दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुये तथा अपनी माधुरी के दर्शन से बन में जो एक अपूर्व कान्ति का उदय हुआ था, उसे प्राणप्रिया श्रीराधा को लक्ष्य करके बर्णन करने लगे ॥६९॥

हे कुन्ददन्ति ! वह देखो—इस समय मधुपान से तृप्त होकर ही मकरन्द के लोभी भ्रमरगण कुन्दपुष्प को परित्याग कर उच्च शिखर वाले आम की ओर जा रहे हैं ॥७०॥

हे कलकण्ठि ! आम के बौर के खाने से कोकिल का कण्ठ खुलता है, इसी कारण वह देखो आज कोकिलाओं के साथ कोकिल समूह मौनव्रत त्याग करने की इच्छा से ही बौर के कसाय रस से अपने कण्ठ का शोधन करने के लिये बौर-वाले आम के वृक्षों के प्रति जा रहे हैं ॥७१॥

माधवीलता और सोनजूही आदि कुसुमित लताओं द्वारा आलिंगिता और प्रफुल्ला यह चम्पकलता है । और आगे कही जाने वाली छः सात लता-वृक्ष-श्रेणियाँ और हैं । यथा-मल्लिका

सेयं पुन्नागवीथी सुतिलक-बितति: सा त्वियं चूतपाली
श्रेणीयं वञ्जुलानां बिलसति पुरतश्चावलि: केशराणाम् ॥७२॥
पुन्नागा: सप्रलाभिर्विधुमुखि ! बकुला: सल्लवङ्गावलीभि:
कुब्जाभि: कोविदारा: सुदति ! रुरुचिरे चम्पका: केतकीभि: ।
तेऽशोका: स्वर्णयूथीततिभिरिह लसत्किंशुका: पाटलीभि-
र्वासन्तीभी रसाल: सित-शतदलिका-श्रेणिभि: केशराश्च ॥७३
अतिमुक्तैरतिमुक्तै रतिमुक्तैश्चान्वितं बनं यदिदम् ।
रथकृन्मालिक-मोक्षा-काङ्क्षैरपि सेबितं तस्मात् ॥७४॥

---

द्वारा आलिंगित बकुलश्रेणी, तमाल -पंक्ति. पुन्नागवीथी, सुतिलक वृक्ष श्रेणी, आम्रपंक्ति, वंजुल (वेत) श्रेणी एवं नागकेशर श्रेणी—ये सब आगे शोभा पा रही हैं ॥७२॥

और भी, हे चन्द्रवदनि ! हे सुन्दन्ति ! नवमालिका के साथ पुन्नागवृक्ष, उत्तम लवंगमाला के साथ बकुलवृक्ष, कुब्जा-लता के साथ कोबिदारवृक्ष, केतकी के साथ चम्पक, सान-जूही के साथ अशोक वृक्ष, पाटली के साथ पलास वृक्ष, माधवी के साथ आम्र तथा श्वेतवर्ण शतपत्रिका के साथ नागकेशर—ये सब बड़ी शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥७३॥

यह बन अतिमुक्त अर्थात् पुण्डूक वृक्ष द्वारा युक्त है अत-एव रथ बनाने वाले सूत्रकार (बढ़ई) इसका सेबन करते हैं। यह बन अतिमुक्त अर्थात् माधवीलता करके युक्त है अत-एव मालाकार (माली) इसका सेबन करते हैं। तथा यह बन अतिमुक्त अर्थात् नित्यमुक्त सिद्ध करके भी युक्त है अतएव मोक्षकांक्षी व्यक्ति भी इसका आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् गोपांगनाओं को सहज प्राप्त सायुज्य, सालोक्य,

शरोत्पत्ति-स्थानायत इदमरण्यं रतिपते
लता-वृक्षव्रातः कुसुम-शरकारायत इह ।
पतन् भृङ्गव्यूहः प्रतिकुसुममुच्चैर्ध्वनिमिषा-
द्दिशन् भद्राभद्रं गणयति परीक्षाकर इव ॥७५॥
मधुपी मधुपं विष्टं स्वप्रतिबिम्बाञ्चि पुष्पमनु दृष्ट्वा ।
मिलितां मधुपीमन्यां मत्वा तृषितापि निवर्त्तते रोषात् ॥७६॥
वनमनु मिलितौ नौ वीक्ष्य हर्षात् प्रकाश्य
स्वक-नवफलदन्तांस्तच्छदोष्ठाधरांश्च ।

---

सारूप्य व सार्ष्टि रूप मुक्ति को प्राप्त करने के लिये मुनिगण वृक्षरूप से वृन्दावन में अवस्थान करते हैं।७४॥

यह बन रतिपति कामदेव के बाणों की उत्पत्ति-स्थान की भाँति आचरण कर रहा है। कारण कि लताएँ और वृक्ष तो सब पुष्पबाण – निर्माणकारी का कार्य कर रहे हैं और भौंरे एक एक फूल पर पड़ते हुए जोर जोर से गुनगुनाने के मिस से परीक्षक का कार्य कर रहे हैं अर्थात् यह पुष्पबाण उत्तम है, यह मन्द है– इस प्रकार परीक्षक की भाँति जाँच कर रहे हैं ॥७५॥

और वह देखो प्रिये ! बन में एक फूल के अन्दर एक भ्रमर घुस बैठा है और उस पर एक भ्रमरी का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। वह भ्रमरी अपने प्रतिबिम्ब को देख कर उस भ्रमर को भ्रमरी समझ रही है और भ्रमर से मिलने के लिये तृसातुर होती हुई भी रोस प्रकट करती हुई उससे पृथक् हो रही है ॥७६॥

प्रिये ! कमलमुखि ! हम लोगों को बन में आये हुए देख, कदली के वृक्ष हर्षित होकर अपने नबीन फल रूपी दन्तावली को प्रकाशित कर रहे हैं जिनके ऊपर के बल्कल दन्त-

कमलमुखि ! कदल्य: पश्य सङ्कोचयन्त्य:
पतदलिमधुबाष्पा: कम्पिताङ्ग्यो हसन्ति ॥७७॥
बल्लीषु हल्लीशक-केलिरङ्गी भृङ्गीभिरङ्गीकृत-नृत्यभङ्ग: ।
प्रस्थाप्य भृङ्गीं दयितां निगूढं सरत्यसौ भृङ्गयुबाब्ज-षण्डम् ॥७८
अटवीं प्रियामथ दर्शयन् ।
अवदत् प्रियौ मधुमङ्गल: ॥७९॥
निचायतं श्रीब्रजकाननेशा निदाघ-मञ्जुं बनभागमेतम् ।
य: स्वागतौ बीक्ष्य पुरो भवन्तौ सेवोत्सुक: स्वैर्विभवैश्चकास्ति ॥८०
सोऽयं टिट्टिभ-दुन्दुभि-ध्वनिभरैर्धूम्याट-भेरी-स्वरै-
र्झिल्ली-झल्लरि-निस्वनै: पिक-पिका-बीणा-निनादैर्मुदा ।

---

च्छद अर्थात् ओष्ठाधर की भाँति प्रतीत हो रहे हैं और जिन्हाने मधुरूपी संकोच के भार से मुख नीचे कर लिया है और जो वाष्प रूपी कम्प से काँप रहे हैं ॥७७॥

और भी देखो प्रिये ! यह युवा भृंग लताओं के ऊपर भृंगियों के साथ हल्लीश नृत्य (नारियों का नृत्य) स्वयं भी करता हुआ कमल के अन्दर अपनी प्रियतमा भृंगी को गुप्त-भाव से प्रवेश कराकर आप भी उसमें प्रवेश कर रहा है ॥७८॥

तब मधुमंगल प्रिय वृन्दावन के दर्शन कराते कराते श्री-राधाकृष्ण के प्रति कहने लगा ॥७९॥

हे ब्रजकाननेश्वर राधाकृष्ण ! ग्रीष्म – कालीन इस मनोहर बनभाग के दर्शन करें। यह अपने सन्मुख आप लोगों का सुख गमन देख कर सेवा के लिये उत्सुक हो अपने वैभव सहित प्रकाशित हो रहा है ॥८०॥

और भी—यह बनभाग तुम दोनों के दर्शन कर हर्षोत्फुल्ल हो टिटी–हरी पक्षियों के शब्द के रूप में दुन्दुभि बजा रहा

दृष्ट्वा वामिह चाष-डिण्डिम-रवैः शारी-वचःसंस्तवै-
र्भृङ्गालीध्वनि-गीतकैर्वितनुते नृत्यं लताग्रैश्चलैः ॥८१॥
वस्त्राणि सत्पाटलि-पुष्पवृन्दैः शिरीष-पुष्पैरवतंसकांश्च ।
मल्लीभिरङ्गाभरणानि हर्षाद्बिभर्त्यसौ वामिव दातुमुत्कः ॥८२॥
सुपक्वैरमैः पीलु-करीर-धात्री-राजादनैः सत्पनसाम्र-बिल्वैः ।
विकङ्कतैर्जालक-तालबीजैः सिषेविषुर्वां धिनुतेऽसकौ माम् ॥८३॥
इह रविमणि-बद्ध प्रान्तभूम्युष्मदीप्य-
द्दिनकर-करजालैर्म्लानिमाशङ्क्य वां किम् ।

---

है और गुड़गुड़ पक्षियों की ध्वनि के रूप में भेरी-नाद कर रहा है। झिंगुर की सुन्दर झन्कार में झाझ बजा रहा है, कोकिल-कोकिलाओं की कुहु कुहु में बीणा की मधुर ध्वनि कर रहा है, नीलपक्षी की बोली में डमरु की डिम डिम ध्वनि कर रहा है और सारिकाओं (मैनाओं) के शब्द में स्तुति करते और भौंराओं के गुंजार में गीत गाते हुए चंचल लताओं और वृक्षों के द्वारा नृत्य का बिस्तार कर रहा है ॥८१॥

और भी—यह ग्रीष्मकालीन मनोहर बनभाग तुम दोनों को सुन्दर पाटल (गुलाब) पुष्पों द्वारा बस्त्र, शिरीष सुमनों के कर्णभूषण एवं मल्लिका सुमनों के अंगाभरण अर्पण करने के लिये ही मानों उत्सुक होकर उन उन पुष्पों को धारण किये हुये है ॥८२॥

और भी:— यह बन भाग, पके हुये पीलू, करील (टेंटी), आँवला, पियाल, कटहल, आम, बेल, बिकंक, जालक, तालबीज इत्यादि स्वादु फलों के द्वारा तुम दोनों की सेवा करने की अभिलाषा करता हुआ मुझे (मधुमंगल को) आनन्दित कर रहा है ॥८३॥

प्रणय-तत-निजाङ्गैश्छायदन्त्यो भवन्तौ
कलयतमगवल्ल्य: पल्लवैर्वीजयन्ति ॥८४॥
बहुप्रजेयं कदली निजात्मजै-वृ‌ॅताभितस्तै. सुतवत्करा यथा।
ताँल्लालयन्तीच्छदपाणिना बभौ धयत्यधोऽङ्गसुमनःस्नुतस्तनम् ॥८
सुदीर्घ-नासेति सुपक्विमाम्रे विन्यस्त-चञ्चुं पिकमाकलय्य।
स्मेराननाः प्रेक्ष्य पुरो निजालीः प्रियां हरे पश्य विनम्र-वक्त्राम् ॥८६

---

पुनश्चः— इस बन के प्रान्त - भाग की भूमि सूर्यकान्त-मणि से आबद्ध (बँधी हुई) है, वह सूर्य के किरणजाल से उद्दीप्त हो उष्ण हो गया तो तुम दोनों को अपने ताप से मलिन न कर दे—इस आशंका से, प्रणय के बशीभूत होकर ही क्या इस बन के वृक्षों और लताओं ने अपनी शाखा—प्रशाखा रूपी अंगों का बिस्तार कर तुम लोगों के ऊपर आच्छादन कर रखा है और अपने पल्लवों के द्वारा वे तुम्हें बीजना कर रहे हैं ॥८४॥

और सप्त - पुत्रबती स्त्री की भाँति यह कदली भी बहु सन्तानबती है। यह अपनी सन्तानों से घिरी हुई अपने पत्तों के हाथों से अपनी सन्तानों का लालन करती है और अपने नीचे के भाग में लटकते हुए पुष्प रूपी स्तन के झरते हुए मधु-रूपी दूध को उन्हें पिलाती है-ऐसी यह कदली अति शोभा को प्राप्त हो रही है ॥८५॥

और उधर तो देखो कृष्ण! तुम्हारी प्रियतमा श्रीराधा ने शिर नीचा कर लिया है कारण कि वह जो एक पका हुआ आम है उसका पार्श्वभाग नासिका सा लगता है, उस-पर कोयल अपनी चोंच मार रहा है। इसे देख सखियों को लगा कि श्रीराधा के मुख—चुम्बन के लिये तुमने अपना

मल्ली-वल्ली-मतल्ली-ततिभिरिह लसल्लोल-लोलालिमाला
चिल्लीभिश्चारु-तल्लीतटभुवि विदधत् साधु-हल्लीशकेलिम् ।
क्रुध्यत्कन्दर्प-मल्लीकृत-कुसुमचयैर्यस्स्मिताभिस्तमालः
सोऽयं श्रीगोपपल्लीपतिसुत इव सद्वल्लवीभिश्चकान्ति ॥८७॥
निशम्य वाचं मधुमङ्गलस्य राधा-मुकुन्दौ स्मितशोभितास्यौ ।
वृन्दा-वितीर्णान् श्रवणे न्यधात्तां शिरीष-पुष्पस्तवकान् परस्परम् ।
करारविन्देन पराग—पांशुलान्
कृष्णः प्रियायाः अलकान् व्यतस्तयत् ।

---

मुख उस पर संयुक्त कर दिया और वे हँस पड़ीं उनको हँसती देख श्रीराधा लज्जित हो गई और शिर नीचे कर लिया ॥८६॥

और उस क्षुद्र सरोवर के तट पर तो गोपांगना से घिरे हुये ब्रजराजनन्दन की सी शोभा छा रही है। वहाँ पर एक सुन्दर मल्लिका के साथ यह तमाल - वृक्ष हल्लीश नृत्य (स्त्रियों का मण्डलाकार नृत्य) विलास कर रहा है। मल्लिका पर जो बड़े मनमानते, चंचल और लोभी भ्रमरकुल मंडरा रहे है वे ही मानों तो उसकी कुटिल भौंहें हैं और उसकी कुसुम-राशि ही मानों तो उसका मन्द - हास्य है जिसे अतिक्रुद्ध कन्दर्पराज द्वारा नियुक्त मल्लराज ही समझो। तात्पर्य—तमाल और मल्लिका - वृक्ष की सम्मिलित शोभा गोपी-कृष्ण-विलास-माधुरी की भाँति दृष्टिगोचर हो रही है ॥८७॥

इस प्रकार मधुमंगल की बातें श्रवण कर श्रीराधाकृष्ण का मुखारविन्द मन्द मधुर मुसकान से सुशोभित हो गया और उन्होंने वृन्दादेवी के अर्पित शिरीष फूल के गुच्छे को परस्पर के कर्णों पर धारण कराया ॥८८॥

तब श्रीकृष्ण ने श्रीराधा के मुखपर छूटे हुये छोटी छोटी

साप्यस्य चूडोपरि केकि-चन्द्रकाम्
विकाशि--दोर्मुलमथालकानपि ।।८९।।
कृष्णः प्रियामाह हृदि स्पृशन् प्रिये ! निदाघघर्मैरुपतापिताऽभितः ।
पलायमानः कुच-शैलदुर्गकं समाश्रितः शैत्यगुणोऽस्ति किं तव ।।९०
कान्ते सुधांशु-मणिबद्ध-गवालवाले
तद्वक्त्र-शुभ्र-किरणोदय-जाम्बुपूरे ।
स्नात्वा निपीय सलिलं विगतोष्णतापा-
स्तत्सेतु-मूर्द्धिन विलसन्ति खगाः सकान्ताः ।।९१।।
राधाकृष्णौ प्राह ततस्तौ सुबलोऽपि
प्रावृड्रम्यं पश्यतमग्रे वनभागम् ।

---

अलक जाल को पुष्पों के पराग से धूसर कर दिया और श्रीराधा ने भी अपनी भुजा ऊपर उठाकर श्रीकृष्ण की मोर-चन्द्रिका और अलकावली को पुष्पों के पराग से वैसे ही धूमल कर दिया ।।८९।।

श्रीकृष्ण प्रियतमा के हृदय को स्पर्श करते हुये बोले, "प्रिये क्या ग्रीष्म के ताप से पीडित हुआ शीतलता गुण इधर उधर भागता-हुआ तुम्हारे कुचशैल रूपी दुर्ग का आश्रित हुआ है" ।।९०।।

हे प्रिये ! तुम्हारे मुखचन्द्र के उदय होने के कारण वृक्षों के चारों ओर बंधे हुये चन्द्रकान्तमणि के थामरों में से जल बहने लगा है। इसी से पक्षीगण अपनी अपनी कान्ताओं के साथ थामरे के शिरोभाग में बिलास कर रहे हैं ।।९१।।

तब सुबल ने श्रीराधा - कृष्ण से कहा हे राधाकृष्ण देखो ! वह सामने का बनभाग वर्षा ऋतु से मनोहर बना हुआ है,

विद्युन्मेघौ त्वामिह मत्वा प्रणयान्धौ
नृत्यत्याराम्मत्त-मयूर-व्रज एषः । ६२॥

मल्ली-मतल्ली-कुलपालिकाना-मङ्के निषण्णान् भ्रमरान् सुलोलान्
स्वसौरभैः पश्यतमात्तगर्वाः कर्षन्त्यमुष्मिन् गणिका हसन्त्यः ॥६३

अस्मिन् भृङ्गालि-ललिता बर्षावर्षोर्जिताटवी ।
घन-मेघावृता भाति यूथी यूथीकृतालिका ॥६४॥

अभ्रमभ्रावृतं चास्मिन् भुवनं भुवनाप्लुतम् ।
ककुभः ककुभैः फुल्लैर्व्याप्ता नीप-कदम्बकैः ॥६५॥

आलालपीतीह मुदा पिकाली दात्यूह-मालापि च कोकवीति ।
संरारटीत्यत्र हि चातकालिः शालूर-वीथिः परिरोरवीति ॥६६॥

---

मोर तुम्हें विद्युत् और मेघ समझ प्रेमोन्मत्त हो नृत्य कर रहे हैं ॥६२॥

और देखो ! इस बन में गणिका अर्थात् जूही फूल गर्वीली बनी हँसती हुई सती मल्लिका रूप कुलरमणियों के अंकों में स्थित अत्यन्त चंचल भ्रमरों को अपने सौरभ के द्वारा आकृष्ट कर रही हैं। (दूसरे पक्ष में:)—गणिकाएँ कुलांगनाओं की गोद में से लम्पट पुरुषों को अपने अंग-सुबास से आकर्षित कर रही हैं ॥६३॥

इस भाग में यह बन बड़ी शोभा को प्राप्त हो रहा है, यह मधुकरमालाओं से मनोहर बना है, बर्षाकालीन जलधारा से वृद्धि को प्राप्त हुआ है और सघन मेघमालाओं से आवृत होने के कारण यूथिका (जूही) कुसुमों से अलिकुल को यहीं एकत्रित कर रखा है ॥६४॥

इस बन में गगन – मंडल मेघमालाओं से आवृत है और भुवन – मंडल जल से प्लावित है और दिङ्मण्डल (दिशाएँ) प्रफुल्ल अर्जुन व कदम्ब के वृक्षों से व्याप्त है ॥६५॥

बिरारवीत्यत्र बकालिरेषा शिखावल-श्रेण्यपि दंध्वनीति ।
कोपष्टिकाली प्रणिनानदीति प्रसंस्वनीत्यत्र च मुद्गुपंक्तिः ॥६७॥
घनावली-नील-नीचोल-संवृता बलाकिकामौक्तिक-हारधारिणी ।
बलारिकोदण्डक-मण्डना पुरः प्रावृट् सखीवेच्छति वां निषेवितुम् ॥
कदम्बैः प्रालम्बान् कुटज-कुसुमैर्गर्भक-बरान्
किरीटान् केतक्या दल-समुदयै रङ्गणयुतैः ।
स्फुटद्यूथीपुष्पैरपि विविधहारान् स-ककुभै-
रसौ प्रावृड् लक्ष्मीश्चरण-कमलेष्वर्पयति वाम् ॥६६॥

---

और भी देखो, इस बन में कोकिल कुल बार बार आनन्द के साथ आलाप गान कर रहा है। डाहुक (एक जलपक्षी) सब बार बार बोल रहे हैं। चातक और दादुर भी बार बार जोर जोर से धुनि कर रहे हैं ॥६६॥

इधर बकपंक्ति उच्च ध्वनि कर रही है, मयूरकुल भी ऊँची केका धुनि कर रहे हैं, जल कुक्कुट गम्भीर शब्द कर रहा है और हंसश्रेणी पुनः पुनः उच्चरव कर रही है ॥६७॥

यह वर्षा ऋतु सरद् की भाँति तुम दोनों की सेवा करने की इच्छा से सन्मुख उपस्थित हुई है इसी कारण इसने मेघ-मालाओं की नीली-साड़ी, बक-पंक्तियों को मुक्ता-माल और इन्द्रधनुष के नीले, पीले, व रक्तादि नाना वर्णो के रत्नालंकार धारण कर लिये हैं ॥६८॥

यह वर्षालक्ष्मी तुम दोनों के चरणकमलों में कदम्बों की सरल लम्बीमाला, गिरि – मल्लिकाओं के उद्दाम केशभूषण, केतकी का किरीट तथा पत्र सहित खिले हुए यूथिका, कदम्ब, और अर्जुन के पुष्पों द्वारा गुंथे हुये नानाप्रकार के हार समर्पण कर रही है ॥६६॥

घुसृणमदविलासारोजयोः पक्कतालै-
र्लसदलक-ततीनां पक्क-जम्बूफलैः सा ।
त्वयि तव दयितायाः स्वङ्गुलीपर्वकाणा-
मुपमितिमभिधत्ते पक्क-खर्जूरकैश्च ॥१००॥
कृष्णं बिना सुलीलः को वा व्रजवनमृते क वा लीला ।
अरयत इति दात्यूहैः को वा को वा क वा क वा विरुतैः ॥१०१॥
कृष्णं शश्वत्स्वलीला-घनरस-बितरैः प्रावृषं संसृजन्तं
हित्वा के वा पयोदाः क्वचिदपि च कदाप्यम्बुवृष्टिं ददानाः ।

---

यह वर्षालक्ष्मी तुम्हारे लिये तुम्हारी प्रियतमा श्रीराधा के अंगों के उपमानों का भी विधान कर रही है अर्थात् श्रीराधा के अंगों की उपमा योग्य वस्तुएं भी वन में विद्यमान हैं, यथा.- श्रीराधा के कुंकुम कस्तूरी लिप्त स्तनयुगल के सदृश पक्क तालफल हैं, अलकावली के सदृश सुपक्क जम्बुफल (जामुन) हैं, और सुन्दर अंगुलियों के पर्व के समान सुपक्क खर्जूर (खजूर) फल हैं ॥१००॥

पुनश्चः— श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कौन व्यक्ति सुन्दर लीलामय है? और वृन्दावन के अतिरिक्त किस स्थान में ही ऐसी लीला सम्पन्न हो सकती है? अर्थात् कहीं नही। इसी विचार से ही दात्यूह (जलकौआ) "को वा, को वा, क वा क वा" अर्थात् कौन् श्रीकृष्ण जैसा व्यक्ति है और कहाँ वृन्दावन जैसा स्थान है, अर्थात् कोई नहीं, कहीं नहीं-पुकाररहा है॥१०१

यहाँ के तो दादुर भी मेघ व वर्षाकाल की निन्दा कर रहे हैं। वे हर्ष से फूल फूल करके 'के को, के को' ध्वनि करते हुये यही पूँछ रहे हैं कि कहाँ है श्रीकृष्ण के समान जलदाता मेघ और कृष्णलीलारस वृष्टि के समान वर्षाकाल? मेघ तो

प्रावृट्कालः स को वा षड्तुषु गणितो मास–युग्म–प्रमाणः
केकोनादैः प्रहर्षाद्दिति दिशि दिशि तान् तच्च निन्दन्ति मेकाः ॥१०
वर्षायते मधुस्रावो मधुपाली घनायते ।
पुरः कदम्बवाटीयं पश्यतं दुर्दिनायते ॥१०३॥
स्वप्रेष्ठयासौ विलसन् शिखण्डी शिखण्डिनीर्वीक्ष्य पुरः समेताः ।
आच्छादयंस्तां निजपिञ्छतल्या नृत्यत्यसौ ताः पुरतो विधाय ॥१०

---

केवल एक प्रदेश में वर्षाकाल में ही जल बरसाते हैं और वह वर्षा काल भी छः ऋतुओं में से दो मास का एक ऋतु और श्रीकृष्ण तो अपनी लीला द्वारा गाढातिगाढ दास्य, सख्य, वात्सल्य व शृंगारादि रसों की झर लगा लगा कर निरन्तर वर्षाकाल की ही सृष्टि किये हुये हैं, ऐसे रसदाता श्रीकृष्ण के सन्मुख जलदाता मेघ भला क्या है? अर्थात् वर्षाकाल में मेघों की जलवर्षा से कृष्णलीला – वर्षण में अधिकता है ताप–हारित्व है और सुखश्रवणता है। यही विवेचना करके मानों तो दादुर "के का" धुनि कर के मेघ वर्षाकाल की निन्दा कर रहे हैं ॥१०२॥

और देखो वृक्षों से यह मधु की धारा वर्षा – धारा के समान, भ्रमर–श्रेणी जलधर – मेघ के समान और यह अग्रवर्ती कदम्ब दुर्दिन के समान आचरण कर रहे हैं। मेघाच्छन्न दिन का नाम ही दुर्दिन है। सघन कदम्ब की छाया मेघाच्छन्न आकाश की भाँति ही प्रतीत होती है ॥१०३॥

और देखो, इस मोर ने अपनी प्रिया मोरनी के साथ विहार करते करते सामने और मोरनियों को आते देखा तो अपने पुच्छ जाल से अपनी प्रिया को ढक कर उनके आगे नृत्य कर रहा है ॥१०४॥

इत्थं पुष्णन् प्रावृषेण्यां श्रियं तां
राधा-शम्पालिङ्गितः कृष्ण-मेघः ।
आली-चक्षुश्चातकान् सुष्ठु धिन्वन्
विश्वं सिञ्चत्येष लीलामृतैः स्वैः ॥१०५॥

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गो द्वादश एष सुष्ठु निरगान्मध्याह्नलीलामनु ॥१२॥

## ❀ अथ त्रयोदशः सर्गः ❀

ततस्तैरागतः कृष्णः सीमां कानन-भागयोः ।
तच्छोभामाह कान्तायै ऋतुयुग्म-श्रियान्विताम् ॥१॥

---

श्रीकृष्ण रूपी जलधर श्रीराधारूपिणी सौदामिनी के द्वारा आलिंगन होकर इस प्रकार वर्षा – कालीन शोभा को बिस्तार करते हुये और सखियों के नेत्ररूपी चातकों को प्रीतियुक्त करते हुये लीलामृत द्वारा विश्व का सींचन कर रहे हैं ॥१०५॥

अब श्रीगोबिन्दलीलामृत महाकाव्य का मध्यान्हलीला नामक द्वादश सर्ग समाप्त हुआ। यह श्रीगोविन्दलीलामृत श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूप-गोस्वामी की कृपा का फल है, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीमज्जीवगोस्वामी के संग से उदय हुआ है तथा श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वर के प्रभाव से प्रादुर्भूत हुआ है ॥१२

निर्यद्वर्षाख्य-बाल्योद्यच्छरत्तारुण्यमाङ्कुरा ।
किशोरी—तनुवद्भाति प्रिये पश्याटवी पुरः ॥२॥
प्रविगत-कुसुमां काले प्रवयसमिव यूथिकां हित्वा ।
प्रोद्यत्कुसुमां जातीं मुग्धामिव संमिलत्यसौ भ्रमरः ॥३॥
परिणत-वर-गुञ्जापुञ्ज-शोणाटवीयं
पतित-शिखि-शिखण्डा काश-पुष्पैः सिता भूः ।
शिखिततिरपि मूका वाग्मिनी हंस-पंक्तिः
कथयति ऋतुलक्ष्मीः शारदीमागतां नः ॥४॥

---

अब श्रीकृष्ण सकल स्वजनों के साथ वर्षा व शरत्कालीन बन विभागों की सीमा पर स्थित मनोज्ञ कानन में जा उपस्थित हुए और प्रियतमा श्रीराधा के निकट बन दोनों ऋतुओं की शोभा से युक्त बन की शोभा वर्णन करने लगे ॥१॥

हे प्रिये ! देखो यह बन किशोरी अर्थात् एकादशवर्ष वाली बाला के शरीर की भाँति शोभायुक्त हो रही है, कारण-कि इसके अंगसे वर्षा नामक बाल्य का गमन एवं शरद्रूपी तरुणाई का अंकुर उदय हो रहा है ॥२॥

हे प्रिये ! देखो यह भ्रमर पुष्पविहीन यूथिका को वृद्धा नारी के समान परित्याग करके मुग्धानारी के समान प्रस्फुटित कुसुमजाती का आश्रय ले रहा है ॥३॥

प्रिये ! देखो यह बन हमको समागत शरद् ऋतु की शोभा बतला रहा कारण कि यह बन पके हुये सुन्दर गुंजाफल से लाल हो रहा है, इसकी भूमि पर मोर - पंख गिरे-बिखरे पड़े हैं और यह काश के फूलों से श्वेत हो रही है तथा मेघों के चले जाने से मयूरकुल मूक है और हंसपंक्ति वाचाल हो गयी है ॥४॥

सेफालिका-कुसुमपालिमलिः सतृष्णो
यां यां मुदा स्पृशति संस्खलति स्म सा सा ।
आलीततिः सुमुखि ! यद्वदहं तदानीं
यां यां ससार चकितापससार सा सा ॥५॥
अथावदत् कुन्दलता निचायतं वृन्दावनेशौ वनभागमग्रतः ।
इमं शरच्चारुतयेह विश्रुतं वयस्यया वां शरदा विभूषितम् ॥६॥
चञ्चत्खञ्जन-लोचनाम्बुज-मुखी लोलालि-मालालका
खेलत्कोक-कुचा सिताभ्र-सिचया रक्तोत्पलोष्ठाधरा ।
कूजत्सारस-पालीरम्यरसना नीलोत्पलोत्तंसिका
नाथौ पश्यतमत्र वां शरदियं सेवोत्सुकास्ते सखी ॥७॥

---

हे सुमुखि ! अपनी वंशी को ढूढते समय में जिस जिस सखी के समीप गया था, तो वे जैसे चकित होकर जिधर तिधर भाग निकलीं थीं, उसी प्रकार ये लोभी भ्रमर मुदित होकर जिस जिस सेफालिका (हारसिंगार) के फूल को स्पर्श करते हैं, वह वह टूट टूट कर भूमि पर गिरते जाते हैं ॥५॥

तब कुन्दलता बोली, हे वृन्दावनाधीश्वर श्रीराधाकृष्ण ! तुम दोनों सामने के इस बनभाग के दर्शन करो । कारण कि तुम लोगों के समान किशोर बयस वाली शरद् ऋतु ने इसे विभूषित किया है, अत एव शारदीय शोभा मनोहारिणी है करके विख्यात हुई है ॥६॥

हे युगल प्रभो ! यह शरद् सखी तुम दोनों की सेवा के लिये बड़ी उत्सुका है । देखोना चंचल खंजन इसके चंचल-नयन हैं, कमल ही बदन है, चंचल अलिकुल ही अलकावली है, क्रीडारत चकोर ही स्तन हैं, शुभ्रवर्ण मेघमण्डल ही

जातीभिः सह-रङ्गणाभिरखिलाङ्गालङ्कृतीः कैरवै-
रुत्तंसानवतंसकांश्च सुभगौ रक्तोत्पलेन्दीवरैः ।
शय्यां कुञ्जगृहे स्वयं निपतितैः सेफालिका-सञ्चयै-
र्निर्म्मायार्पयितुं शरत्सहचरी वां वर्त्म संवीक्षते ॥८॥
प्रफुल्ल-सप्तच्छददान-सौरभः सिताम्बुदाली-कुथ-संवृताङ्गकः ।
काश-प्रसूनावलि-चारुचामरः स्मरोन्मदोक्षालि-विराव-बृंहितः ॥९
नभो नदत्सारस-किङ्किणीकलः
सोऽयं शरत्काल--मनोज--वारणः ।
स्वनन्मरालादिक--पत्रि--निस्वनद्--
घण्टाचयो दीव्यति कानने पुरः ॥१०॥ युग्मकम्

---

वस्त्र है। रक्तोत्पल ही ओष्ठाधर हैं, कूजते हुए सारस पंक्ति ही चारु किंकिणी (कौंधनी) है, एवं नीलोत्पल ही कर्ण-भूषण बना हुआ है। (यह अर्थ वन पक्ष का हुआ) सखी-पक्ष में – सखियाँ भी खंजनलोचना पद्ममुखी इत्यादि हैं ॥७॥

यह शरद् सहचरी अनेक प्रकार की सेवा – सामग्रियों का निर्माण करके तुम दोनों को अर्पण करने के लिये बाट जोह रही है। इसने रंगन व जाति – पुष्पों के अलंकार सब अंगों के लिये बनाये हैं, कुमुद पुष्पों के शिरोभूषण, सुन्दर रक्त-कमल व नीलकमल के कर्णभूषण बनाये हैं, तथा स्वयं पतित सेफालिका पुष्पों की शय्या रचना की है ॥८॥

और यह शरद्काल कन्दर्पराज का विख्यात गजराज भी है। यही आगे के वन में विलास कर रहा है। कुसुमित सप्त-च्छद वृक्ष का सौरभ ही इसका मद है। श्वेतवर्ण के मेघ-मालाओं के झूल से इसका अंग आवृत है काश (मूंज) के

कमलाकर-लालिता सदा परमहंसकुलैक-संश्रया ।
विलसच्चक्ररुचिर्विभौ पुरः शरदेषा भगवत्तनूरिव ॥११॥
अथ ते शुश्रुवुः सर्व्वे पक्वामृत-फलद्रुमे ।
शुकानां सारिका-वृन्दैर्वितण्डां तदधःस्थिताः ॥१२॥
वेदान्ताध्यापनाचार्य्या अनुचाना वयं द्विजाः ।
श्रीभिरास्पृष्टवृक्षाणां पताम: फल-भक्षणात् ॥१३॥

---

कुसुम ही इसके चारु चँवर हैं, कामोन्मत्त वृष, भ्रमर एवं पक्षियों के शब्द ही इसकी चिंघाड़ है, आकाश मार्ग में कूजते हुए सारस श्रेणियों के शब्दही इसकी किंकिणी की अस्फुट ध्वनि है और बोलते हुए हंसादि पक्षियों के शब्द ही इसके घण्टों की घनघोर है ॥९–१०॥

यह शरद् काल श्रीभगवद्विग्रह के समान भी शोभा युक्त है, भगवान् श्रीविष्णु का विग्रह जैसे कमला (लक्ष्मी) कर लालित है, परमहंसकुलाश्रित है तथा क्रीडा करते हुए चक्र के द्वारा सुशोभित है वैसे ही यह शरद् ऋतु कमलाकर अर्थात् कमल के उत्पत्ति-स्थान सरोवरों से सुशोभित है, श्रेष्ठ हँस कुल का एक मात्र निवासस्थल है तथा चक्रवाक पक्षियों द्वारा सुशोभित है ॥११

तब श्रीराधा, श्रीकृष्ण, मधुमंगल, पौर्णमासी, वृन्दादेवी, कुन्दलता व अन्यान्य सखीगण वृक्ष के नीचे विराजमान होकर अमृतमय सुपक्व फल युक्त वृक्ष के ऊपर बैठे सारिकाओं के साथ शुकपक्षियों का वितण्डावाद श्रवण करने लगे ॥१२॥

शुक पक्षी कहने लगे:— हम द्विज हैं एवं अनुचान हैं अर्थात् हमने गुरुजनों के समीप वेद वेदांगादि अखिल शास्त्र अध्ययन किया है तथा वेदान्तशास्त्र का अध्यापन करके हम

वनं वृन्दावनेशेन दत्तमेतत् प्रतुष्यता ।
अस्मभ्यं सारिकास्तस्माद्गच्छतान्यत्र दासिकाः ॥१४॥ युग्मकम्
प्रभु-द्विषः प्रजा यूयं राधैव यद्वनेश्वरी ।
पुराणेष्वदमेवोक्तं "राधा वृन्दावने वने" ॥१५॥
श्रुत्या कृष्णवनत्वेन यदेतद् गीयते वनम् ।
बाध्यते हि स्मृतिः श्रुत्या तद्विचारयत स्वयम् ॥१६॥
हरेरियं वनेशता समस्त लोक-विश्रुता ।
श्रुति-स्मृति-प्रमाणिका जगन्मनः प्रमोदिका ॥१७॥

---

आचार्य भी हुए हैं। स्त्रियों के द्वारा स्पर्श किये हुये वृक्षों के फल खाने से तो हम पतित हो जायेंगे ॥१३॥

विशेषतः वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण ने संतुष्ट होकर यह वन हमको समर्पण किया है अतएव हे दासिका सारिकाओं ! तुम लोग अन्यत्र चली जाओ ॥१४॥

यह सुनकर सारिकायें कहने लगीं अरे शुको ! तुम सब प्रभु के विद्वेषी प्रजा हो कारण कि श्रीराधा ही इस वन की अधीश्वरी हैं। यही पुराणों में वर्णित हुआ है कि "श्रीराधा ही वृन्दावन नामक वन की अधीश्वरी हैं। ॥१५॥

तब शुककुल बोला—अरी सारिकाओ ! श्रुति में इस वन को कृष्ण - वन कहा गया है, अतएव तुम स्वयं इस पर विचार कर लो। जब श्रुति के प्रमाण से स्मृति का प्रमाण वाधित हो जाता है तो निश्चय हीं यह वन श्रीकृष्ण का ही सिद्ध हुआ ॥१६॥

और समस्त लोकों में भी यही प्रसिद्ध है कि श्रीकृष्ण ही इस वन के अधीश्वर हैं। श्रुति-स्मृति इसमें प्रमाण

नात्र स्वस्वामि-सम्बन्धो राधायाः केवलो वने ।
अपि चाङ्गाङ्गि-सम्बन्धस्तदङ्ग-बिम्बतात्र यत् ॥१८॥
अन्तःकौटिल्य-मालिन्या बहिर्वीक्षण-रञ्जनाः ।
गोपाला भान्त्यमी पक्व-महाकाल-फलोपमाः ॥१९॥
वाक्य-वल्कल-संछन्ना दृढ़-मानास्थि-संवृता ।
नारिकेल-फलानां वा गोपिकानां रसस्थितिः ॥२०॥

---

हैं और यह लोक मानस को भी मोद प्रदान करने वाला है ॥१७

तब तो सारिकाएँ शुकपक्षियों के इस कथन को कि "इस वन में केवल मात्र श्रीकृष्ण का ही अधिकार है" सहन न कर सकीं और कहने लगीं—अरे शुको ! इस बनमें श्रीकृष्ण की भाँति श्रीराधा का केवल स्वामित्व सम्बन्ध ही नहीं है, अपितु अंशांश सम्बन्ध भी है कारण कि इस बन में श्री-राधाङ्ग का प्रतिबिम्ब वर्तमान है अत एव हमारी ईश्वरी श्री-राधा का ही यह वन है ॥१८॥

इस प्रकार वनाधिकार के विषय पर सारिकाओं ने शुक पक्षियों का मुख बन्द कर दिया और तब वे बड़े आवेश के साथ श्रीराधा के उत्कर्ष को वर्णन करती हुई श्रीकृष्ण को "गोपालक" कह कर उन का लघुत्व प्रकट करने के लिये कहने लगीः—अरे शुक ! इन सब गोपालकों का अन्तःकरण कुटिलता और मलीनता से परिपूर्ण है, किन्तु बाहर ये अति मनोहर दिखायी देते हैं अतएव ये पके हुये महाकाल (माकाल) फल के समान हैं जो भीतर से काला और बाहर से लाल होता है ॥१९

शुककुल तब बोलाः— "अरी सारिकाओ ! वृजांगनाओं की रस में जो स्थिति है अर्थात् वे जो रसमयी हैं वह शठता रूपी

बहिरन्तश्चैकरूपा दोष-हेयांश-वर्जिता ।
द्राक्षाफलोत्करस्येव स्वामिनो मे रसस्थितिः ॥२१॥
अन्तः सदा रसमयोऽपि बहिः समुद्यत्-
कौटिल्य-धार्ष्ट्य-खरवल्कल-पर्व रूक्षः ।
मानाख्य-यन्त्रणमृते न रसप्रदोऽसा-
विक्षु-प्रकाण्ड इव वः प्रभुरच्युताख्यः ॥२२॥
अन्तःस्निग्धाद्बहिः शाठ्य-वल्कलात् स्नेह-लम्भनम् ।
वाम्य-निष्पीडनादेव कृष्णात् कृष्ण-तिलादिव ॥२३॥

---

वल्कल और दृढ़ मान रूपी अस्थियों के द्वारा समावृत हैं, ठीक जैसे कि नारियल के फल का जल बाहर के कठिन खोपरा और दृढ़ जटाओं से ढका रहता है । २०॥

परन्तु हमारे स्वामी श्रीकृष्ण में रस की ऐसी अवस्थिति है कि बाहर और अन्तर एक रूप है—उसमें त्याग देने योग्य कोई दोष नहीं है–न छिलका है, न गुठली, केवल रस ही रस, ठीक द्राक्षाफल (अंगूर) की भाँति ॥२१॥

सारिकाएँ बोलीं—"तुम्हारे प्रभु अच्युत का अन्तःकरण सर्वदा रसमय होने पर भी बाहर कुटिलता और धृष्टता रूप का मोटा वल्कल और पर्व (गाँठ) बने हुए हैं उससे वह नीरस हो गया है अत एव जैसे गन्ना कोल्हूयंत्र में पेले बिना अपना रस दे ही नहीं सकता वैसे ही तुम्हारे श्रीकृष्ण रसिक – चूड़ामणि हुए तो क्या हुए मान रूपी यंत्र से दबाये विना वे रस प्रदान करने में समर्थ ही नहीं होते ॥२२॥

पुनः दूसरा दृष्टान्त देती हुई सारिकाएँ बोलीं—"जैसे काले तिल में बाहर छिलका और भीतर स्निग्ध तेल रहता तो है

गोपी-श्रेणी जवालीवासौरभा वहिरुज्ज्वला ।
नीलोत्पलनिभः कृष्णः सुरुचिः सौरभान्वितः ॥२४॥
मञ्जिष्ठेव मदीशा स्वान्तर्बहिरपि सदैकरागेयम् ।
स्फटिकमणि-वदीशस्ते नव-नव-सङ्गाद्विभिन्न-रागोऽयम् ॥२५॥
दाहिता दैत्य-शलभाः प्रज्वाल्य स्वबलानलम् ।
येन येनोद्धृतोऽद्रीशः-स्तेन साम्यं क आप्नुयात् ॥२६॥
व्रजेश्वराराधान-तुष्ट-विष्णुना कृष्णे निधायाद्भुत-शक्तिमात्मनः ।
बकी-बकाद्या निहताः सुरारयः कृष्णोऽनभिज्ञैरिह कीर्त्तिरर्पिता ॥२७

---

परन्तु पेले बिना वह तेल निकलता ही नहीं, ऐसे ही तुम्हारे श्रीकृष्ण का अन्तःकरण स्निग्ध तो है पर बाहर शठतापूर्ण है अत एव मानरूपी यंत्र में दबाये जाने पर ही स्नेह - रस निकलता है ॥२३॥

शुकगण बोले— तुम गोपियाँ तो जवापुष्प (गुड़हर) की भाँति केवल बाहर से ही उज्ज्वल हो पर हो सौरभहीन । परन्तु हमारे श्रीकृष्ण तो नील - कमल के समान सुन्दर कान्ति व सौरभ से युक्त हैं ॥२४॥

शारिका बोली— मेरी ईश्वरी का राग (अनुराग) मंजीठ की भाँति सदा बाहर-भीतर एक-सा है किन्तु हे शुक ! तुम्हारे श्रीकृष्ण स्फटिक मणि के समान हैं जिसका अपना रागरंग कुछ नहीं है पर जिस जिस का संग करता है उस उस के रंग से रंग जाता है ॥२५॥

शुक बोला कि जिस श्रीकृष्ण ने निज सामर्थ्य रूप अग्नि को प्रज्वलित करके दैत्य रूपी कीटों को भस्म कर डाला तथा जिन्होंने गिरिराज गोवर्द्धन को धारण किया, उस श्रीकृष्ण के साथ कौन बराबरी कर सकता है ? ॥२६॥

तुष्टोऽयमद्रिर्बलिभुगव्रजस्य स्वयं समुत्थाय नभस्यतिष्ठत् ।
अधोऽस्य हस्तं विनिधाय कृष्णो धरोद्धृतौ कीर्त्तिमुरीचकार ॥२८
सौन्दर्य्यं ललनालि-धैर्य्यदलनं लीला रमा-स्तम्भिनी
वीर्य्यं कन्दुकिताद्रिवर्य्यममला पारे परार्द्धं गुणाः ।
शीलं सर्व्वजनानुरञ्जनमहो यस्यायमस्मादृशां
विश्वं विश्वजनीन-कीर्त्तिरवतु स्वामी जगन्मोहनः ॥२९॥

---

शारी बोली— व्रजराज नंदराय की आराधना से संतुष्ट होकर श्रीनारायण देव ने श्रीकृष्ण में अपनी अद्भुत शक्ति का संचार कर के पूतना, बकासुर आदि दैत्यों का नाश किया था। श्रीकृष्ण ने कुछ नहीं किया तथापि इस रहस्य से अनभिज्ञ लोग श्रीकृष्ण में ही इस कीर्त्ति का आरोप करते हैं कि उन्होंने ही ये सब दैत्य मारे ॥२७।

गिरिराज गोवर्द्धन उठा लेने का रहस्य तो यह है कि व्रजबासियों के बलि भोग पूजा से संतुष्ट हो गिरिराज स्वयं ऊपर उठकर अधर में टिक गये। उसके नीचे श्रीकृष्ण ने अपना हाथ लगा दिया—बस इतने ही उन्होंने जगत् में गोवर्द्धनधारी कीर्ति को प्राप्त कर ली ॥२८॥

तब शुक बोला— अरी शारिके! जिसका सौन्दर्य असंख्य रमणियों के धैर्य-धन को हरन कर लेता है, जिसकी विश्वविख्यात लीला लक्ष्मीदेवी को विस्मित कर स्तम्भित कर देती है, जिसके वीर्य (पराक्रम) ने गिरिराज गोवर्द्धन को बालकों का गेंद सरीखा बना दिया, जिसके गुण अन्तिम संख्या परार्द्ध से भी अधिक हैं अर्थात् असंख्य अनन्त हैं, जिसका स्वभाव सर्व साधारण के चित्त को सुखी करना है

श्रीराधिकायाः प्रियता सुरूपता सुशीलता नर्त्तन-गान-चातुरी ।
गुणालिसम्पत् कविता च राजते जगन्मनोमोहनचित्तमोहिनी ॥३

रसयति राधाकृष्णौ रसयति तच्चरण-सेवातिसौख्यम् ।
अलिरिव मल्ल्यां सोऽस्यां रसयति तदधर-मात्रम् ॥३१॥

कृष्णस्य सङ्गमिह नाथति राधिका तं
लब्धं तु नाथति सुमान-वृषार्कतापैः ।

---

और जिसकी कीर्ति अखिल ब्रह्माण्ड का मंगल विधान करती है, वह हमारा स्वामी विश्वमोहन श्रीकृष्ण विश्व की रक्षा करें ॥२९॥

यह सुनकर सब सारिकाएँ बोल उठीं, अरे शुक? श्रीराधा का प्रेम, सौन्दर्य, सुशीलता, नृत्य–गान–चातुरी, गुणावली, रूप – सम्पत्ति तथा पंडिताई जगन्मोहन श्रीकृष्ण की भी मनोमोहिनी बन कर बिराज रही हैं ॥३०॥

तब शुक बोला! मल्ली लता जब अपने रस अर्थात् गुणों का बिकास करती है तो भ्रमर उस बिकसित लता का केवल मात्र मधुपान ही करता है इसके मूल, शाखा, उपशाखादि से कोई प्रयोजन नहीं रखता है। उसी प्रकार जब श्रीकृष्ण हास–परिहास, आलिंगन–चुम्बनादि का प्रकाश करते हैं तो श्रीराधा श्रीकृष्ण के युगल चरण–कमलों की सेवा रूप अति–शय सुख का ही आस्वादन करती हैं अर्थात् श्रीकृष्ण की पद–सेवा करती हैं, परन्तु श्रीराधा जब रस–राग का प्रकाश करती हैं तो श्रीकृष्ण श्रीराधा का केवल मात्र अधर–पान ही करते हैं, पाद-सेवन का कार्य नहीं करते हैं। इस भेद के कथन से श्रीकृष्ण का उत्कर्ष ही ध्वनित करना है ॥३१॥

तत् प्रीति-सेवनततेरपि नाथमाना
नाथत्यलं विपिन-नीवृति तस्य चित्रम् ॥३२॥
या सरित्स्तम्भिनी विश्वाकर्षिणी सर्व्वमोहिनी।
सद्धर्म्मोच्चाटिनी स्त्रीणां सा वंशी सङ्गिनी हरेः॥३३॥
कथयतु महिमानं को नु कृष्णस्य वंश्या-
स्तदितर-पुरुषे या रागपङ्कं विधूय।
हृदि जगदबलानां नाद-पीयूष-वृष्ट्या
सहज-दयित-कृष्णे रागमाविष्करोति॥३४॥

---

अतएव श्रीराधा का उत्कर्ष स्थापन करने के लिये शारी कहने लगी:—अरे शुक! इस बृन्दाबन में श्रीराधा श्रीकृष्ण से मिलने के लिये प्रार्थना करती तो हैं, परन्तु श्रीकृष्ण को पाने पर उनको प्रखर मान रूपी जेठ मास के सूर्य के ताप से तपाया करती हैं। पुनश्च श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्रीति-सेवा की प्रार्थना करती हुई भी बृन्दाबन में उसी श्रीकृष्ण के समीप उनकी ईश्वरी की भाँति आचरण करती हैं—है न आश्चर्य की बात ॥३२

और जो वंशी नदियों को स्तम्भित करती, चराचर बिश्वमंडल को आकर्षित करती और कुलकामिनियों के सत् धर्म का उच्चाटन करती है, ऐसी दुष्ट वंशी तो श्रीकृष्ण की संगिनी है अतएव संगदोष से साधुओं का स्वभाव भी दुष्ट हो जाता है ॥३३॥

तब शुक बोला— "अरी सारिकाओ! श्रीकृष्ण की वंशी की महिमा कौन बर्णन कर सकता है कारण कि यह वंशी-ध्वनि वह अमृत की बर्षा है कि जो त्रिलोकी की अबलाओं के हृदय में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य पुरुष (अपने अपने

अथ कीराश्च शार्य्यश्च स्वेशयोः प्रणयोन्मदाः ।
चक्रुः प्रश्नोत्तरालापं स्व-स्व-गोष्ठ्यां मुदा मिथः ॥३५॥
बिभ्रत् करैकेण नभस्यहार्य्यं महेन्द्र-गर्व्वाद्रिमधोऽनयत् कः ।
कः कालियाहेः फणवृन्दरङ्गे ननर्त्त तं भो वद कृष्ण एषः ॥३६॥
निज-हृदि धृत-वक्षोजाद्रि-युग्मोपरिष्ठाद्
गिरिधरमपि लीलाम्भोजवत् का बिभर्त्ति ।
भुजगदमन-चेतोवृत्ति-चञ्चद्भुजङ्गी-
शिरसि नटति का तां ब्रूहि सा श्रील राधा ॥३७॥

---

पति) में जो आसक्ति रूप पंक है उसे धोबहा करके सहज प्रिय, स्वतःसिद्ध पति श्रीकृष्ण में गाढ़ रति उत्पन्न कर देती है ॥३४॥

अब तो शुक-दल व सारिका - दल अपने अपने ईश्वर, श्रीराधाकृष्ण के प्रेम में उन्मत्त होकर अपनी सभा में बड़े आनन्द से प्रश्नोत्तर के रूप में वार्तालाप करने लगे ॥३५॥

एक शुक दूसरे शुक से बोला— बता तो भाई ! गिरिराज गोवर्द्धन को एक हाथ से अधर उठा कर किसने देवराज महेन्द्र के गर्वरूपी पर्वत को भूमिसात् कर दिया ? और किसने कालिय नागराज के फणिमंडल की रंगभूमि पर नृत्य किया ? शुक ने उत्तर दिया—इन्हीं कृष्ण ने ॥३६॥

उधर एक शारी दूसरी से बोली— बता तो बहन ! अपने युगल वक्षोज - मंडल रूप पर्वत के ऊपर गिरिधारी श्रीकृष्ण को लीला - कमल की भाँति अति क्षुद्र समझ कर कौन रमणी धारण किया करती है ? और कालियमर्दन श्रीकृष्ण के चित्त रूपिणी चंचल भुजंगिनी के शिरोभाग पर कौन नृत्य किया करती है ? इसके उत्तर में शारी ने कहा— वह रमणी और कोई नहीं—श्रीराधा ही हैं ॥३७॥

सदैवमुक्ताश्च अथातिमुक्ता जाता वनेऽस्मिन् परिफुल्लिताङ्गाः ।
पुष्णन्ति साग्ङ्ग-गणान् रसैः स्वैः कस्य प्रभावाद्वद माधवस्य ॥३८

सदैव मुक्ताश्च तथातिमुक्ता माध्वीककारा मधुपालि-सङ्गाः ।
उत्पद्य जाता वद तत्र हेतुं कस्यापि रामानुगतस्य सङ्गात् ॥३९॥

---

फिर एक शुकने दूसरे शुक से प्रश्न किया:— बताओ तो सही यह किसका प्रभाव है कि नित्यमुक्त ब्रह्म-निष्ठ मुनि जन प्रेमगन्धशून्य होकर के भी इस वृन्दावन में प्रेम से परि पुष्ट अंगवाले हाकर जन्म लेते हैं और उस रससे अर्थात् प्रेम से अपने भक्तजनों का पोषण करते हैं? अच्छा, ब्रह्म-निष्ठ मुनियों की बात छोड़ो, वृन्दावन की अतिमुक्त लता (माधवी) और वृक्ष (पुण्ड्रक) आदि के भी पत्र-पुष्पादि-अंग किसके प्रभाव से प्रेम से हृष्ट-पुष्ट रहते हैं जो प्रेम-रस मधु-धारा के रूप में बह बह कर चातक, भ्रमरादि भक्तजनों को पोषण करते हैं दूसरे शुक ने उत्तर दिया यह सब श्रीकृष्ण के प्रभाव से ही होता ह ॥३८॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण का उत्कर्ष सुन कर श्रीराधा पक्षवाली शारिकाओं के हृदय में तो बड़ा आनन्द हुआ परन्तु बाहर असूया सी करती हुई एक दूसरी से बोली:—अरी शारिके! जो संसार से अतीत, नित्यमुक्त हैं वे स्वयं भी मधुपान कारी तथा मद्यपों के संगी होकर जन्म लेते हैं— इसका कारण तो बताओ! तो दूसरी ने उत्तर दिया यह सब बलराम के भाई श्रीकृष्ण के संग के कारण ही होता है। (इस श्लोक में 'मधु' और 'रामानुगत' पद में श्लेष है। मधु से मद्य और प्रेम

हृत्वांशुकं पश्यति कोऽङ्गनाः कः साध्वीततेः कः सुकृतं भिनत्ति ।
को वा स्त्रियं वत्स-वृषौ च निघ्नन् न लज्जते तं वद कृष्ण एषः ॥४०
का मातृकां कः किल मातृकारकः को वत्सकं वत्सक-पालको व्रजे ।
का धेनुकं धेनुक-रक्षकोऽप्यलं वृषञ्च निघ्नन् वृषवर्द्धनोऽभवत् ॥४१
नीतिः कुमारी-वरणे तदङ्ग-हृद्वाक्परीक्षे थकरोच्च तां कः ।
सतीत्वमाच्छिद्य महासतीत्वं चक्रेऽवलानां वदतं स कृष्णः ॥४२॥
युग्मकम्

---

तथा 'राम' से बलराम् और बसन्त, रामा नारी अनेकार्थ अभिप्रेत है) । ३९॥

तब एक शुक ने दूसरे शुक से प्रश्न किया कौन व्यक्ति ललनाओं के वस्त्रों का हरन करके उनको विवस्त्रा अवलोकन करता है ? कौन साध्वी – सतियों का सुकृत नाश करता है ? और कौन ऐसा है जो स्त्रियों, बछड़ा और बैल का बध करके भी लज्जित नहीं होता है ? उत्तर मिला—यह श्रीकृष्ण ही है ॥४०

अब एक शुक दूसरे शुक से दो श्लोकों में प्रश्न करता है:— इस वृन्दाबन में किसने माता (पूतना) का बध कर माता (यशोदा) का सुख बढ़ाया है ? कौन बछड़े (वत्सासुर) को मार कर बत्स—पालक बना है ? धेनु (धेनुकासुर) को मार कर कौन धेनु - रक्षक बना है ? और वृष (वृषासुर) की हत्या करके किसने धर्म बढ़ाया है ? कुमारी कन्याओं ने जब पति-प्राप्ति के लिये तपस्या की तब कन्याओं के अंग, मन व वाणी की परीक्षा करने की नीति किसने चलायी ? और अबलाओं का सतीत्व अपहरण करके उनको महासती– पद पर किसने प्रतिष्ठा की ? दूसरे ने उत्तर दिया—श्रीकृष्ण ने ४१ ४२

इति पटु-विहगानां वाग्विलासामृतानि
श्रवण-चषक-पूरं तौ पिबन्तौ स-सभ्यौ ।
निज-निज-सुहृदं तत् प्रीणनायादिशन्तौ
वत-शरदृतु-लक्ष्मीं चेरतुर्लोकयन्तौ ॥४३॥
पक्व-द्राक्षा-वनजकं शारीभ्यो ललिता ददौ ।
कीरेभ्यः सुबलः प्रादात् पक्व-दाड़िम्ब-वाटिकाम् ॥४४॥
नान्दीमुखी तदनु तावबदद्वनेशौ
निध्यायतं स्वपुरतो वनभागमेतम् ।
हेमन्त-शान्तमतया प्रथितं निजैः सत्-
सम्पद्भयैश्चरणमर्चितुमुत्सुकं वाम् ॥४५॥

---

इस प्रकार अति चतुर पक्षियों के वाग्विलास रूप अमृत-धारा को श्रवण-पात्रों में भर भर पान करके श्रीराधा-कृष्ण ने अपने अपने सुहृद वर्ग ललिता व सुबलादि को उन सब पक्षियों को दाडिम्बादि फलों के दानों से संतुष्ट करने का आदेश दिया और तब अपने अपने सखा-सखी-वृन्द से घिरे हुये श्री-राधा-कृष्ण विस्तृत शारदीय वन-शोभा के दर्शन करते करते भ्रमण करने लगे ॥४३॥

तब ललिता ने शारिकाओं को पके द्राक्षा फल का क्षेत्र और सुबल ने शुक पक्षियों को पके दाड़िम का उद्यान अर्पण किया ॥४४॥

तदनन्तर दोनों ने दोनों से कहा— हे वृन्दावनाधीश्वरि ! हे वृन्दावनाधीश्वर ! तुम्हारे सन्मुख यह हेमन्तशान्तम नामक वन-भाग है- दर्शन करो । यह वन भी फल फूलादि अपनी सम्पत्ति द्वारा तुम दोनों के चरणार्चन के लिये उत्सुक है ॥४५॥

चित्राम्लान-कुरुण्टकैः कुरुबकैः फुल्लैर्लसत्सौरभा
माद्यत्तित्तिरि-लाव-षट्पद-किखी-कीरारवैर्मञ्जुला।
हृद्या पक्विम-नागरङ्ग-रुचकैः शीता तुषारानिलैः
सेयं भाति वनस्थलीह भवतां पञ्चेन्द्रियाह्लादिनी ॥४६॥
स्फुरित-सहचराली-वेष्टितोऽम्लानकान्ति-
स्तत-कुसुमधनुष्माालि-गोपी-प्रवीतः।
विकच-कुसुमवाणः कृष्ण ! ते देहतुल्यो
मुखरित-शुक-लीलो भाति हेमन्तकालः ॥४७॥

---

यह वनस्थली तुम्हारे पाँचों इन्द्रियों (चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा व त्वचा) को आनन्ददायिनी बनी हुई है, यह अपने अम्लान कुरुन्टक (भिन्टी फूल) और कुरुवक पुष्पों द्वारा नासिका को सौरभ प्रदान कर रही है। मतवाले तीतर, लाव, भ्रमर, शुकादि पक्षियों के मनोहर रव से श्रवण को सुखी कर रही है। सुरंग नारंगी फलों से रसना के लिये रसदायिनी है और हिमयुक्त समीर से शीतल बनी हुई त्वचा को सुख प्रदान कर रही है ॥४६॥

हे कृष्ण ! यह हेमन्त ऋतु तुम्हारी देह के समान शोभा पारही है। जैसे तुम अपने सहचर सखाओं से परिवेष्टित हो, वैसे ही यह हेमन्त भी तो अपने सहचर पीले भीण्टी फूलों से परिवेष्टित है। तुम्हारी देह जैसे अम्लान कान्तियुक्त है वैसे ही यह हेमन्त भी आँवले के फूलों से शोभित है। तुम्हारी देह से जैसे कुसुमधन्वा कामदेव की समृद्धि है, वैसे ही इस हेमन्त से भी काम समृद्धि को प्राप्त होता है। तुम्हारी देह जैसे हर्षिता गोपियों द्वारा मण्डित है वैसे ही यह हेमन्त भी

हिमऋतुलक्ष्मीमतिमुदितस्ताम् ।
हरिरथ कान्तां प्रतिकुरुते स्म ॥४८॥
रुचिर-विविध-वर्णा पक्वशाल्यंशुकाङ्गी
मदकल-शुक-पालीनाद-नान्दीमुखीव !
सुमुखि ! परिणतोच्चैर्नागरङ्गस्तनीयं
कलय वरनदीवाभाति हेमन्त-लक्ष्मीः ॥४९॥
औष्ण्यं हिमत्तु मनु ते हृदयाख्य-दुर्गं
भानोः समाश्रयति साध्वि ! तुषार-भीत्या ।

---

प्रफुल्लिता गोपीनाम की लताओं से शोभित है, तुम्हारा देह के लावण्य से कन्दर्प जैसे प्रफुल्लित रहता है वैसे ही यह हेमन्त भी कन्दर्प के बाण रूपी पुष्पों से प्रफुल्लित रहता है, तथा तुम्हारी लीला को जैसे श्रीशुकदेव कीर्तन करते हैं, वैसे ही इस हेमन्त में भी शुक पक्षी कलरव कर रहे हैं ॥४७॥

तब श्रीकृष्ण-अत्यन्त मुदित होकर प्रियतमा श्रीराधा के प्रति हेमन्त ऋतु की शोभा को एक दूसरी उपमा द्वारा वर्णन करने लगे ॥४८॥

वे बोले— हे प्रिये ! यह हेमन्त लक्ष्मी उत्तम नदी की भाँति शोभा दे रही है, इसके दर्शन तो करो। अनेक प्रकार के रंग के मनोहर पके हुए धान ही इसके अंग के वस्त्र हैं, मतवाले शुक पक्षियों की उच्च ध्वनि ही इसके मुख से निकलते हुये मंगलाचरण पाठ हैं और हे सुमुखि ! पके हुये नीबू फल ही इसके कुचयुगल हैं ॥४९॥

हे साध्वि ! शीत काल में सूर्य की उष्णता (ताप) ने शीत से भयभीत हो तुम्हारे हृदय रूपी दुर्ग का आश्रय लिया है,

तत्सङ्गमादनुपलब्ध-बियोग-दुःखं
रात्रिन्दिवं बिलसति स्तन-कोकयुग्मम् ॥५०॥
ऋताबिहाग्नेः प्रबलोष्णभावा भिया हिमान्याः परितो द्रवन्तः।
कूपाप्सु केचिद्विनिपत्य लीनाः क्रोडे द्रुमस्याद्रि दरीषु चान्ये ॥५१
हिमानी-डाकिनी सेयमलक्षितमहर्निशम् ।
इह भानु-बृहद्भान्बोः प्रपिवत्यौष्ण्य-शोणितम् ॥५२॥
आलिङ्ग्य कान्तां तरुणैः शयानैः कुचोष्णतासङ्ग-विभङ्ग-दीनैः।
आराधितोऽर्कः कृपया बिलम्ब्य प्रोद्यत् विबरोऽद्य निशाभिवृद्धिम्।

---

इस ताप के मिलाप के कारण ही स्तन रूप चकवा-चकई की जोड़ी, बियोग दुःख से मुक्त होकर, दिबानिशि उस हृदयदुर्ग-में ही बास कर रही है। अर्थात् चकबा-चकई तो रात्रि के समय बिछुड़ कर पृथक् पृथक् स्थान में बास करते हैं परन्तु तुम्हारे स्तनरूप चक्रवाक-दम्पति तो सूर्य के ताप को प्राप्त करके अहोरात्रि एकत्र निबास करते हैं ॥५०॥

हे प्रिये! इस शीतकाल में शीत के भय से अग्नि की प्रबल उष्णता भी इधर उधर भागती हुई कोई कूप के जल में, तो कोई वृक्ष की गोद में और कोई कोई गिर-कन्दराओं में जाकर लीन हो गई हैं। तात्पर्यः-शीत-काल में अग्निताप मन्द पड़ जाता है और कूपोदक, वृक्षतल और गिरिगह्वर कुछ गर्म लगते हैं ॥५१॥

हे प्रिये! बही यह हिमरूपा डाकिनी अलक्षित भाव से इस शीत ऋतु में दिन रात सूर्य और अग्नि की उष्णता रूपी रुधिर का पान कर रही है ॥५२॥

और हे प्रिये! जानती हो कि यह शीतकाल की रात्रियाँ

रासे कुमारीगण-कुङ्कुमाञ्चित-स्तनावली यां स्मृतिमानिनाय नौ।
सा पक्व-नारङ्गफलालिरत्र-तत्स्मारकत्वं स्वगुणं व्यनक्त्यसौ ॥५४
अथालोकयन्तौ पुरोऽरण्यभागम् ।
समुत्कौ निवेशाववादीद्वनेशा ॥५५॥
प्रविशदखिल-जन्तूत्कम्प-रोमाञ्चकारी
क्वचिदलघुनगाधः कोष्णता—शीतहारी।

---

बड़ी क्यों होती हैं कारण यह कि युवकों ने रात्रि-शयन में अपनी प्रियाओं का आलिंगन कर उनके स्तनों की उष्णता का अनुभव किया परन्तु रात्रि भोर होने पर आलिंगन से जब वे मुक्त हुये तो उष्णता के अभाव में उन्होंने व्याकुल होकर सूर्यदेव की आराधना की जिसके परिणाम में सूर्यदेव, कृपा करके, शीतकाल में बिलम्ब से उदय होने लगे ॥५३॥

रासक्रीड़ा के समय कुमारिकाओं के कुङ्कुमलिप्त स्तनावली ने हमें जैसे पके नारंगी फलों का स्मरण कर दिया था, अब इस समय वे ही नारंगी फलों की पाँति अपने "स्मरण दिला देने वाले" स्वगुण को प्रकाश कर रहे हैं अर्थात् स्तनावली का स्मरण दिला रहे हैं ॥५४॥

तब श्रीराधाकृष्ण को सन्मुख स्थित बन के अवलोकन में समुत्कण्ठित दर्शन करके बन की अधीश्वरी वृन्दादेवी कहने लगी ॥५५॥

हे राधे ! हे कृष्ण ! यह शिशिर रुचिर नामक इसी बन का एक भाग शोभा पा रहा है। इस बन में प्रवेश करते ही यह समस्त जीव-जन्तुओं को कम्पित कर देता है। इस बनमें किसी स्थान पर बड़े बड़े वृक्षों के नीचे कुछ गर्मी है जो शीत हर

मृदुलित-रवि-कान्तिर्दक्षिणाशागतार्कः
शिशिर-रुचिर-नामा भात्यरण्यैकदेशः ॥५६॥
जवाबन्धूकाभारुण-वरदुकूलं दमनक-
प्रभाचोली कुन्दद्युति-सित-निचोलं च दधती ।
भजद्वाज-श्रेणी-विरुतियुत-हारीत-रुतिभिः
स्तुवन्तीव प्रेम्णा शिशिरऋतुलक्ष्मीर्मिलति वाम् ॥५७॥
निबिड़दल-तरूणां वासराद्यन्तकाला-
गतरवि-करकोष्णे सूर्य्यकान्ताश्रितेऽङ्के ।

---

लेती है। इस वन में सूर्य की प्रखर किरणों भी मृदुल की भाँति आचरण करती हैं और यहाँ सूर्यदेव भी दक्षिण की ओर गमन कर रहे हैं अर्थात् दक्षिणायन में स्थित हैं ॥५६॥

इस शरत ऋतु की शोभा अधिक क्या वर्णन करूँ। यह शीत ऋतु-लक्ष्मी भी तुम दोनों से अति प्रेमपूर्वक मिलाप कर रही है। इसने जवा (गुड़हर) पुष्प की अरुण साड़ी और दमनक (दोना) पुष्प की कान्ति की चोली पहन ली है, कुन्दपुष्प की कान्ति के रूप में श्वेत दुपट्टा ओढ़ लिया है; और भरद्वाज और हारीत पक्षियों की सम्मिलित ध्वनि द्वारा स्तव कर रही है। इस प्रकार आप से मिल रही है ॥५७॥

और वह देखो मृगकुल भी तुम दोनों से मिलने आ रहा है। वे सघन पत्रावली-युक्त वृक्षों के नीचे बैठे बैठे धीरे धीरे चुगाली करते हुये बड़े सुहावने लग रहे थे। ये वृक्ष सूर्यकान्तमणि युक्त हैं तथा प्रातः और अपरान्ह काल के रवि किरणों से किंचित् उष्ण हो जाते हैं। उन मृगों ने तुम दोनों को आते देखा तो उनके अंगों में पुलक और

मृगततिरुपविष्टा मन्द-रोमन्थ-रम्या
प्रकट-पुलक-वाष्पा वां समीक्ष्याभ्युपैति ॥५८॥
क्षतावस्मिन् तेजःक्षतिरनुदिनं प्राण-सुहृदां
सरोजानां नष्टिः स्वसुख-समयाह्नोऽपि लघुता ।
तुषारैश्चण्डांशोरपि मृदुभिरुच्चैर्वत कृता
बिनैकं विश्वेशं भवति न हि कः काल-वशगः ॥५९॥
प्रबल-शिशिरभीत्या भानुरौष्ण्याख्य स्वविक्तं
स्तनयुग-गिरिदुर्गे बल्लवीनां न्यधत्त ।
त्वरितमिदममूभिः कृष्णभोगाय क्लृप्तं
प्रभवति न हि गाढ़-प्रेम्णि धर्मापेक्षा ॥६०॥

---

नेत्रों में जल आ गया और वे उठ पड़े अब आप युगल के दर्शन को समीप आ रहे हैं ॥५८॥

बड़े आश्चर्य की बात है कि सब ही काल के वशीभूत हैं एक विश्वपति भगवान के अतिरिक्त, इसी से देखो न, इस शीत-काल में अतिशय मृदुतर हिमकणाओं से प्रचण्ड मार्तण्ड का तेजः पुंज प्रति दिन क्षय को प्राप्त हो रहा है, सूर्यदेव की प्राण-तुल्या सुहृद कमलनि नष्ट हो रही है और स्वयं सूर्यदेव का सुख काल—उसका दिन भी घटता जा रहा है ॥५९॥

और एक विशेष बात तो यह है कि सूर्यदेव के गच्छित धन का भी अपहरण हो गया है। कारण कि सूर्य ने प्रबल शीत के भय से गोपियों के स्तन युगल रूपी गिरिदुर्गों में उष्णता रूप अपना धन न्यस्त कर रखा था किन्तु हे कृष्ण ! इन सब गोपियों ने उस धन को बड़ी त्वरा के साथ-तुम्हारे उपभोग के लिये तुम्हें अर्पण कर दिया है। यदि यूँ कहो कि एक

इति तद्गिरा प्रमुदितोऽत्र शिशिरर्त्तुजां वनश्रियम् ।
बकरिपुरथ कलयन् स तदा ललितं जगाद निज-प्रियाम् ॥६१॥
भ्रमदिन्दिन्दिर-वृन्द सुन्दरि ! शिशिरागमं दिशत्यत्र ।
मन्दादरमरविन्दे विन्दति कुन्दे यदानन्दम् ॥६२॥
पश्यन्दिरेन्दिन्दिर-वृन्द-संयुता दंदह्यमानं प्रबलैर्हिमैर्निजाम् ।
विहाय सम्प्रत्यरविन्द-मन्दिरं कुन्दावलौ सुन्दरि ! मन्दिरीयति ॥
हिमानी-राहु-सेनानां सूर्यं निर्जेतुमक्षमा ।
तस्मिन् प्रणयिनीं ज्ञात्वाज्वालयत् पद्मिनी-ततिम् ॥६४॥

---

का धरा हुआ दूसरे को दे देना धर्म-विरुद्ध है तो इसका उत्तर यह है कि अत्यन्त गाढ़ प्रेम में धर्म के विधि-निषेध की अपेक्षा नहीं रहती है ॥६०॥

इस प्रकार वृन्दादेवी के वचनों से आनन्दित होकर, शिशिर ऋतु जन्य बन शोभा के दर्शन करते हुये बकरिपु श्रीकृष्ण स्व – प्रियतमा श्रीराधा के प्रति सुललित स्वर में कहने लगे ॥६१॥

हे सुन्दरि ! देखो इस बन में भ्रमते हुये भ्रमरगण जब पद्म पुष्प के आदर-स्नेह को त्याग कर कुन्द के कुसुमों में आनन्द मान रहे हैं, तो जानना चाहिये कि अवश्य ही शीत-ऋतु का आगमन हुआ है ॥६२॥

हे सुन्दरि ! यह देखो ! भ्रमरों के साथ जो इस अर-विन्द (कमल) मन्दिर की लक्ष्मी (शोभा) थी वह अब अपने मन्दिर को प्रबल शीत से दग्ध प्राय: जान कर उसे त्याग कुन्दमन्दिर में चली गयी है अर्थात् भ्रमरों के द्वारा जो शोभा पहिले कमलों को प्राप्त थी वह अब कुन्दपुष्पों को प्राप्त हो गई है ॥६३॥

तोयोत्थिताया व्रजकन्यकाततेः स्तनावली यां स्मृतिमानिनाय मे ।
पाकोन्मुखी सद्बदरी-फलावली तामत्र सा मत्स्मृतिमानत्यसौ ॥६
हरिरथ दयिताया वृन्दयानीय दत्तौ
सितमृदुल-जवान्तमञ्जरी-कर्णपूरौ ।
सपुलक-करकम्पं कर्णयोः संन्यधत्त
श्रुतियुगमनु तस्यैषापि कौन्दावतंसौ ॥६६॥
राधायाः करपङ्कजेऽथ निहिता कौन्दी मुदा वृन्दया
या माला लघु-लोहितोत्पल-कुल-स्रग्दीप्तिमेषा दधे ।

---

देखो प्रिये ! यह हिमराशि राहु का सेनापति है । यह सूर्य को पराजित करने में असमर्थ होकर कमलनि को सूर्य की प्रणयिनी जान कर उसे ही जलाने लग रहा है ॥६४॥

हे प्रियतमे ! और भी देखो वस्त्रहरण के दिन व्रज कुमारिकाएँ जब जल से बाहर निकलीं तो उनकी स्तनावलीसे मुझे पके हुए बदरीफलों का स्मरण हो आया था । आज यहाँ वही ये पकते हुए बदरी-फलों की पाँति मुझे उन स्तनावली का स्मरण करा रही है ॥६५॥

तब वृन्दादेवी ने दो कर्णभूषण लाकर श्रीकृष्ण को अर्पण किया जो एसी मंजरियों से निर्मित थे कि जिनके मध्य-भाग में श्वेत और मृदुल जवा लगे हुये थे । श्रीकृष्ण ने पुलकित-देह और कंपित-करों से वे कर्ण-भूषण श्रीराधा के कर्ण-युगल में धारण कराये तथा श्रीराधा ने भी उसी प्रकार श्री-कृष्ण के कर्णयुगल में कुन्दपुष्प के कर्णभूषण धारण कराये ॥६६

पश्चात्, वृन्दादेवी ने श्रीराधा के कर कमलों में कुन्दपुष्पों की एक माला दी जिसकी प्रभा उनके कर कमलों की लाली

सूद्‌सेन्दीवर माल-रोचिरनया कृष्णस्य कण्ठेऽर्पिता
तेनास्या हृदि योजिता सपुलके चाम्पेय-माल्यद्युतिम् ॥६७॥
स्मेरा विशाखाबददेतदद्भुतं सुकोमला पश्यत कुन्दवल्लिका ।
एकैव पुष्पिण्यनिशं स्मरोन्मदैः क्रमोत्क्रमाभ्यां भ्रमरैः प्रपीयते ॥६८
चित्राब्रवीत् साध्वि ! न चित्रमेतत् सौभद्रमेषां रमणं यदस्याम् ।
विभात्यभीष्टवत्यनुरागवत्यां प्रचेतसामास यथैव वार्क्ष्याम् ॥६९॥

---

से लाल कमलों की माला की प्रभा सी प्रतीत होने लगी । श्रीराधा ने उस माला को श्रीकृष्ण के कण्ठ में अर्पण कर दी तब तो उसमें कुछ नीलकमलों की माला की सी नीली कान्ति आ गई । श्रीकृष्ण ने पुनः उस माला को उन के स्पर्श से पुलकित श्रीराधा के हृदय पर अर्पण कर दिया, तो उसने वहाँ श्रीराधा की अंग कान्ति से चम्पकमाला की कान्ति धारण कर ली । आश्चर्य एक ही कुन्दमाल, संसर्गवश लाला, नीली और पीली कान्ति को धारण कर लेना है ॥६७॥

तब हास्यमुखा विशाखा बोली— हे वृन्दावनाधीश्वर राधा-कृष्ण यह आश्चर्य तो देखो कि एक सुकोमल कुन्दलता पुष्पिणी अर्थात् पुष्पयुक्ता हुई है किन्तु काम-मतवाले भ्रमर उसे क्रम और विपरीत क्रम से पान कर रहे हैं । तात्पर्य: कुन्दलता नाम की सखी पुष्पिणी अर्थात् ऋतुमती हुई है और कामी पुरुष उसे क्रम-बिपरीत क्रम से भोग कर रहा है—यह परिहास उक्ति है ॥६८॥

इस वाक्य को सुदृढ़ करती हुई चित्रा सखी इसका समाधान भी करती हैं । वे बोलीं:— हे साध्वि ! अनुरागवती कुन्दलता में इन भ्रमरों का यह रमण कोई विचित्र नहीं है

कौन्द्यालताय कलयाकुलमालि फुल्लान्
स्वान् स्वान् निजान्तिक-गतानपि बन्धुजीवान् ।
संत्यज्य धैर्य्यरहिता नव-बन्धुजीव-
मेकं पिबन्ति तमिमं शतशो भ्रमर्य्यः ॥७०॥
चित्राह सारग्रहिलातिपूता कृष्णत्विड् धन्मधुमात्रवृत्तिः ।
भृङ्गीततिः पञ्चम-गान-गुर्वी यत्रातिशुद्धं मधु तत्र सक्ता ॥७१॥

---

कारण कि यह सौभद्र है अर्थात् सुखप्रद रूप से प्रकाशित हो रहा है ठीक जैसे अनुरागवती वार्क्षी नाम वाली बनकन्या में प्रचेतागण का रमण सुखप्रद हुआ था । गोपीपक्ष में अर्थ:- कुन्दलता के पति का नाम सुभद्र है- उस पति सुभद्र का जब कुन्दलता में रमण मंगलरूप है तब भ्रमरों का कुन्दलता में रमण भी सौभद्र है- मंगल रूप है- इसमें आश्चर्य ही क्या ? ॥६६॥

तब कुन्दलता और सब सखियों के प्रति कटाक्ष करती हुई चित्रा से कहने लगी:— सखी चित्रे ! आश्चर्य तो देखो कि शत शत भ्रमरी कुल अधीर हो अपने समीपवर्ती बन्धु-जीवों (जबा पुष्प) को छोड़ कर इस एक बन्धुजीव का चुम्बन कर रहे हैं, तात्पर्य:- भ्रमरी रूपा शत शत गोपी स्वगृह स्थित अपने अपने बन्धुजीवों (कुलके जीवन रूप पतियों) को छोड़ एक बन्धुजीव (श्रीकृष्ण) का भजन कर रही हैं ॥७०॥

चित्रा ने उत्तर दिया-इसमें आश्चर्य कुछ नहीं कारण कि ये भ्रमरी सारग्राहिणी हैं- जहाँ अति विशुद्ध मधु रहता है वहीं जाकर उसी में आसक्त होती हैं, इनकी कान्ति भी कृष्ण-कान्ति सदृश है अतएव अति पवित्र है और इनका

तां नर्म्मणाथ दयितां हरिराबभाषे
राधे तवातुलगुणैर्विधुताभिमाना ।
श्रीः सापि नार्हति तवानुगतिं कुतोऽन्याः
श्रुत्वेति सापि हरिणा सह संललाप ॥७२॥
सा श्रीः । त्वत्स्त्री ॥७३॥ यत् त्वम् । सा श्रीः ॥७४॥
गोप-स्त्रीणाम् । श्रीत्वं कस्मात् ॥७५॥ गोप-स्त्रीशः ।

---

गान भी मुरली के पंचम गान के समान है और एक मात्र मधु ही इनका जीवनाधार है। श्लेषार्थः- भ्रमरी कुल गोपांगनाएँ प्रेम रूपी सार को ग्रहण करने वाली हैं प्रेम ही एक मात्र उनका जीवनाधार है वे श्रीकृष्ण की कान्ति स्वरूपा हैं, अति पवित्रा हैं और मुरलीवत् पंचम गान में कुशल हैं। अतएव जहाँ सर्व वस्तु का सार प्रेम नित्य एक-रस वर्तमान रहता है उस श्रीकृष्ण में ही वे अन्य सब कुछ त्याग कर आसक्त हैं॥७१॥

तब श्रीकृष्ण प्राणेश्वरी श्रीराधा से परिहास करते हुए बोलेः- हे राधे तुम्हारे निरुपम गुण के द्वारा प्रसिद्ध लक्ष्मीदेवी का अभिमान नष्ट हो जाने पर भी जब वही तुम्हारी अनुगत होने के योग्य न हुई तो फिर अन्य स्त्रियों की तो बात ही क्या! यह सुन कर श्रीराधा श्रीकृष्ण के साथ बार्तालाप करने लगी ॥७२॥

श्रीराधा ने कहा:—कृष्ण! वह लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी है ॥७३॥
श्रीकृष्ण ने कहाः—हाँ, कारण कि वह लक्ष्मी तुम ही हो ॥७४॥
श्रीराधाः— भला गोपस्त्रियाँ लक्ष्मी कैसे हुईं ॥७५॥
श्रीकृष्ण जब मैं गोपस्त्री का पति होकर के भी लक्ष्मी

श्रीशो यस्मात् ॥७६॥ व्यक्तस्ते नारीत्वे । लोलाया रागोऽस्याः ॥
सत्यं मे नारीत्वम् । प्राप्ता सा तद्रूपा ॥७८॥ वेणुना कर्षिता ।
मृग्यपि त्वत्प्रिया ॥७६॥ त्वत्सदृग्लोचना । तन्मृगी मत्प्रिया ॥८०॥
कान्त्या नाम्ना साम्यं प्राप्ता । भास्वत्कन्या सा ते कान्ता ॥८१॥
यालीयं ते शाखा-हीना । कान्तेयं मे सा त्वद्रूपा ॥८२॥
वक्षसि भृङ्गी-पंक्तिरियन्ते । सा स्रजि सुप्तास्ते रमणीव ८३॥

---

पति हूँ तो तुम लोग भी लक्ष्मी हुई ॥७६॥

श्रीराधाः— तो स्पष्ट ही है कि तुम्हारी चंचला लक्ष्मी का (देवीत्व त्याग करके) तुम्हारी पत्नी बनने में ही प्रेम है ॥७७॥

श्रीकृष्णः— तुम्हारे स्वरूप वाली वह लक्ष्मी सचमुच में मेरी पत्नी बनी हैं अर्थात् तुम ही वह लक्ष्मी हो ॥७८॥

श्रीराधाः— वंशी ध्वनि से आकर्षित हरिणी भी तो तुम्हारी प्रिया है ॥७६॥

श्रीकृष्णः— हरिणी के लोचन जब तुम्हारे सदृश हैं तो वह भी अवश्य ही मेरी प्रिया है । ८०॥

श्रीराधाः— सूर्यकन्या यमुना की कान्ति कृष्ण होने से उसका नाम "कृष्णा" तुम्हारे नाम के समान हो गया इस कारण वह तुम्हारी कान्ता हुई ॥८१॥

श्रीकृष्णः— यह जो तुम्हारी सखी विशाखा है अर्थात् विना शाखा वाली है, वह तुम्हारे समान से मेरी कान्ता है ॥८२॥

श्रीराधाः— यह भ्रमर-पंक्ति तुम्हारी रमणी ही हैं क्यों कि

अलकावली सदृशीह ते । यदसौ सदा मम तत् प्रिया ॥८४॥
नीलोत्पल-मृद्वी मूर्त्तिस्तनुमध्या । सप्ताहमगन्ते दध्रे कथमेषा ॥८५॥
अङ्ग: कथमुच्चैर्हेमाचल-युग्मम् । मृद्वी तव मूर्त्तिर्धत्ते हृदि नित्यम् ॥८६॥

वियोगासहिष्णुः प्रिया सोमराजी ।
कलाभिर्विभिन्ना हृदि भ्राजते ते ॥८७॥
शशिवदनायास्तव नख-पंक्तिः । मनसि धृता मे वहिरपि साभूत् ॥

---

वे तुम्हारी रमणी के भाँति तुम्हारे वक्षस्थल पर शयन कर रही हैं ॥८३॥

श्रीकृष्ण:— हे राधे ! यह भ्रमर-पंक्ति जब तुम्हारी अलकावली सदृश है तो यह सदा मेरी प्रिया ही हुई ॥८४॥

श्रीराधा:— हे कृष्ण ! तुम्हारे इस नीलकमल सदृश कोमल और मध्य (कटि) में क्षीण मूर्त्ति से तुमने किस प्रकार एक सप्ताह पर्यन्त गोवर्धन धारण किया था ? ॥८५॥

श्रीकृष्ण:— मैंने तो एक ही गोवर्द्धन को सात ही दिन तक उठा कर रखा था परन्तु तुम्हारी अति सुकोमल मूर्त्ति ने दो-दो सुमेरु पर्वतों को अपने हृदय के ऊपर कैसे अनायास ही सदा काल के लिये धारण कर रखा है ? ॥८६॥

श्रीराधा:— चन्द्रमा की कलाओं के विभक्त हो जाने पर, वियोग असह्य होने के कारण सोमराजी (चन्द्र-समान स्वर्ण रेखाएँ) तुम्हारे वक्षस्थल पर प्रिया की भाँति बिराज रही है ॥८७॥

व्रततिततिरियं सतत-मधुमती। भ्रमरयुगपि ते मुदमतितनुते।
सदधरमिव ते किशलय-निचयम्।
वहति च कुसुमं स्मितमिव यदियम्॥९०॥
कुमार-ललितेयं कुमार-ललिताङ्गी।
सुमार-रणशूरा कुमार-जननीव॥९१॥
वचः समरशूरा सुकण्ठि! ललितेयम्।
सुमार-रण-हूता पलायन-परास्ते॥९२॥
सौवर्णाम्बुज-कोषे लग्ना भात्यलि-पंक्तिः।
वक्षोजोपरि चित्रा यद्वत्ते मदलेखा॥९३॥

---

श्रीकृष्ण:— तुम चन्द्रवदनी हो, तुम्हारी नख-पंक्ति को मैं सर्वदा अपने मन में धारण किये रहता हूँ, वही अब बाहर भी प्रकाशमान हो रही है॥८८॥

श्रीराधा:— नित्य मधुयुक्ता ये लता-श्रेणी भ्रमरों से युक्त होने पर भी तुम्हारे लिये अत्यन्त आनन्द का विस्तार करती हैं॥८९॥

श्रीकृष्ण:— करेंगी क्यों नहीं जब इन लताओं के नवीन पल्लव तुम्हारे सुरंग अधर की भाँति हैं और इनके फूल तुम्हारे मधुर मुसकान की भाँति हैं॥९०॥

श्रीराधा:— हे कुमार श्रीकृष्ण! यह कुमारी ललिता कुमार-जननी पार्वती की भाँति सुन्दर स्मर-संग्राम में निपुणा है॥९१॥

श्रीकृष्ण:— हे सुकण्ठी राधे! यह ललिता तो केवल वाग्युद्ध में ही पण्डिता है, कामयुद्ध में आह्वान करते ही यह भाग जाती है॥९२॥

चित्रपदा तव वाणी भाति यथा सुकृपाणी ।
इन्द्रिय-हृद्विहरन्तः कृन्तति हृत्तारुणीनाम् ॥६४॥
गायति पञ्चममुच्चैर्यत् सहजं पिक एषः ।
दर्पकरुक् तरुणीनां स्यादिह कः पिक-दोषः ॥६५॥
विधर्म्म-शास्त्रशंसिका तवातुला सु-वंशिका ।
कुकुट्टिनी-क्रियापरा जगद्वधू-प्रमाणिका ॥६६॥

---

हे राधे ! तुम्हारे गौर स्तनयुगल के ऊपर मृग-मद की रेखाएँ जैसी मनोहर लगती हैं वैसी ही मनोहर स्वर्ण कमल कोसों में स्थित भ्रमर-माला शोभा दे रही हैं ॥६३॥

श्रीराधाः— हे कृष्ण ! तुम्हारी विचित्र पद विन्यास वाली वाणी, तेज कृपाणी (तलवार) की भाँति शोभा दे रही है ! जैसे तलवार छेदन और भेदन क्रिया द्वारा बाहर और भीतर काटती है, वैसे ही तुम्हारी वाणी भी तरुणियों के अन्तर और बाहर की इन्द्रियों को छिन्न-भिन्न कर देती हैं ॥६४॥

श्रीकृष्णः— हे राधे ! देखो यह कोकिल सहज भाव से ही पंचम स्वर में गान करता है, उसके द्वारा तरुणियों को काम-रोग उत्पन्न हो जाता है । इसमें कोकिल का दोष क्या ? ऐसे ही मेरी वाणी का भी दोष क्या ? ॥६५॥

श्रीराधाः— हे कृष्ण ! यह तुम्हारी प्राण समान वंशी लौकिक व वैदिक धर्म विहीन शास्त्र को प्रकट

योषिदालि-दोषनाश-हेतुरस्ति वंशिकेह ।
धर्म्मशास्त्र-शंसिकाद्य मत्स्पृहा-समानिका हि ॥६७॥
कात्यायनी-व्रतपरा मृदुला कन्यकाततिः ।
सहते कथमामर्द मत्तेभ-सदृशात्तव ॥६८॥
गणिका कलिका-प्राया मत्तोऽयं भ्रमरो महान् ।
पुष्णाति तं तदामर्द सहमानाक्षता न किम् ॥६९॥

---

करने वाली है और कुत्सित कुट्टनियों की भाँति कुकर्म करने वाली है। त्रिलोकी की कुल-नारियाँ ही इसका प्रमाण है- उनको कुलधर्म से भ्रष्ट करके तुम्हारी वंशी कुलटा दूती का ही तो कार्य कर रही है ॥६६॥

श्रीकृष्णः— हे राधे ! मेरी यह वंशी समस्त ललना कुल के दोषों के नाश करने में कारण स्वरूपा है अर्थात् उनको यथार्थ पतिव्रता बनाने वाली है। यह वंशी धर्मशास्त्र प्रकाशिका भी है—धर्म यही है कि जैसे कैसे श्रीकृष्ण में मन का आवेश(अभिनिवेश) कर देवें। यह वंशी मेरे चित्त की वासनाओं की सिद्धिकारिणी भी है। अथवा तो यह वंशी ललनाओं को सम्यक् रूप से मेरे समीप लाने वाली तथा उनके जीवन को सफल करने वाली भी है ॥६७॥

श्रीराधाः— हे कृष्ण ! कात्यायनी व्रतपरा गोपकुमारिकाएँ स्व-भाव से ही कोमलांगी हैं और तुम मत्त गजराज सरीखे हो, फिर भला वे तुम्हारा सम्मर्दन कैसे सह सकेंगी ॥६८॥

तव नव-कनकक्षौणी भुजगशिशुसृतापीष्टा ।
इयमिह तनु-रोमालीयुगुदर-सदृशी यत्ते ॥१००॥
तव सा प्रियाद्रि-हाटक-स्थल्यपि भुजङ्ग-सङ्गता ।
यदियं विभाति वेणिकायुत-पृष्ठपट्टिके वत ॥११॥
कथमियं चकोर-वीथिका प्रिय ! विहाय चन्द्र-सन्निधिम् ।
अहनि सङ्क्तेह खेऽन्तिके भ्रमति नन्दिता मनोरमा ॥१०२॥
हित्वा खेन्दुं श्रययुजमेषा दृष्ट्वा कल्पं निज-परिपोषे ।
पीत्वा त्वत्श्रीमुख-विधुकान्ति-ज्योत्स्नां मत्वा सुखमिह भाति ॥१०३

---

श्रीकृष्ण:— हे राधे ! यूथिका के पुष्प कलियाँ जैसी तो होती हैं और भौंरा मतवाला होता है । फिर भी क्या वे अक्षत रहती हुई उनके मर्दन को नहीं सह लेती हैं ॥९९॥

श्रीराधा:— हे कृष्ण ! यह अभिनव स्वर्णमयी पृथिवी तुम्हारे शरीर की रोमावली संयुक्त उदर के समान है अत एव सर्प-शावकों (बच्चों) के गमनागमन से व्याप्त होने पर भी यह पृथिवी वांछनीय ही है ॥१००॥

श्रीकृष्ण:— हे राधे ! इस गिरिगोवर्द्धन की स्वर्णमय तलहटी भी तो सर्पयुक्त है तथापि यह तुमको प्रिय है कारण कि यह तुम्हारे भुजंगिनी वेणीयुक्त पृष्ठदेश के समान प्रकाशित हो रहा है ॥१०१॥

श्रीराधा:— प्रिय कृष्ण ! ये मनोरमा चकोरीगण किस लिये चन्द्र की सन्निधि (समीपता) त्याग कर यहाँ आकाश में समीप ही दिन की वेला में प्रसन्न होकर भ्रमण कर रही हैं ॥१०२॥

श्रीकृष्ण:— हे प्रिये ! इन चकोरियों ने यह देख कर कि आकाश

प्रश्नोत्तराभ्यामथ नर्म्मभङ्ग्या तत्तत्स्वभाव-स्तुतिगर्भ-पद्यैः ।
राधाच्युतौ तत्प्रणयातिनिघ्नौ विलज्जयामासतुरालिपालीः ॥१०४
पटुवाक् प्रखरा चण्डयपि विषमेषु रणे पलायते हूता ।
तत्रोत्कान्याश्चारमा-न्निवारयति का वदाशु ललिता सा ॥१०॥५
विषम-शराहव-विमुखी कुचयुग-कुङ्कुम-मदागुरु-पटीरैः ।
कचिदाराधयतीष्टदेवं बद का विशाखेयम् ॥१०६॥

---

का चन्द्रमा तो क्षयी है, वह अपनी अमृत कला से हमें कैसे पोषण करेगा, उसे छोड़ दिया है और तुम्हारे मुख चन्द्र को अपने पोषण करने में समर्थ समझ कर ये सब तुम्हारी मुखचन्द्र-चन्द्रिका को पान करते हुए सुख पूर्वक यहाँ समीप ही विचर रहे हैं ॥१०३

अब श्रीराधा – कृष्ण सखियों के प्रणय में उन्मत्त होकर उनके सम्बन्ध में परिहास भंगी से प्रश्नोत्तर करने लगे । वे सखियों के स्वभाव और स्तुति पूर्ण पदों के द्वारा सखियों को लज्जित करने लगे ॥१०४॥

श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया— हे राधे ! वाणी में कुशल, व स्वभाव से प्रखरा और अति कोपवती होने पर भी कौन रमणी कन्दर्प – युद्ध में बुलाये जाने पर भाग जाती है तथा अन्यान्य रमणियों को मदनसंग्राम में उत्सुक होने पर उनको निषेध करती है, शीघ्र बताओ ऐसी रमणी कौन है ? श्री-राधा ने कहा– यह ललिता है, ॥१०५॥

श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया, हे श्रीराधे ! कन्दर्प – युद्ध से तो विमुख परन्तु कभी अपने इष्टदेव की अपने कुच-युगल के कुंकुम, मृगमद, अगुरु व पटीर (सुगन्धित चूर्ण) द्वारा आरा-

वल्ल्यपि चंक्रममाणा हित्वान्तिकगं धवं सुदूरस्थम् ।
समिता कृष्ण-तमालं विभाति का कथय चम्पकलतेयम् ॥१०७॥
नानाचित्रे निपुणा बहुविध-शृङ्गार-रचनाभिः ।
मृदुरतिमानासहना सुखयति नः केह चित्रेयम् ॥१०८॥
कन्दर्पागम-विद्या-पटुरिह निभृतं स्वशिष्यस्य ।
स्वाङ्गान्यङ्गे न्यस्यति या तां कथयाशु तुङ्गविद्येयम् ॥१०९॥
उदरे प्रकटित-रागा विशदापीह कुटिला स्व-कलायाम् ।
मदनोदय-जननेक्षा का तां ब्रूहीन्दुलेखेयम् ॥११०॥

---

धना करती है ऐसी रमणी कौन है? श्रीराधा ने उत्तर दिया-वह विशाखा है ॥०६॥

श्रीकृष्णः-कौन लता इधर उधर घूमती हुई भी समीप के पति को त्याग दूर के कृष्ण-तमाल को प्राप्त होकर विशेष शोभा को प्राप्त होती है, श्रीराधा ने उत्तर दिया-चम्पक-लता। तात्पर्य: कौन लता नाम की गोपी समीप के पति को त्याग दूर के श्रीकृष्ण को प्राप्त करती उत्तर में वह चम्पकलता है।

श्रीकृष्णः— ऐसी कौन रमणी है जो नाना विध शृङ्गार (वेश) रचना के साथ नाना चित्र कार्य्य में कुशल है, कोमल स्वभाव वाली है, अभिमान को सह नहीं सकती है और हमारा सुख विधान करती है? श्रीराधाः- वह चित्रा है ॥१०८॥

श्रीकृष्णः— कामशास्त्र की विद्या में अत्यन्त निपुण है, एकान्त स्थान में जब मैं उनसे कामशास्त्र की शिक्षा ग्रहण कराता हूं तो वह मुझ अपने शिष्य के अंग पर अपना अंग अर्पण कर देती है, बताओ यह कौन है? श्रीराधाः - यह तुंग-विद्या है ॥१०९॥

रङ्गे नटनैर्लास्यैर्दीव्यन्ती नः सुखयति सह नृत्ये ।
वेवेष्टि द्रुतगत्या मामपि केह वद रङ्गदेवीयम् ॥१११॥
पाशककेलौ निपुणा चुम्बकरत्नं पणीकृतं जित्वा ।
मामपि गृह्णात्यजये दित्सति न हि का सुदेवीयम् ॥११२॥
तृप्तावन्यजनस्य तृप्तिमयिता दुःखे महादुःखिता
लब्धैः स्वीय-सुखालि-दुःखनिचयैर्नो हर्षबाधोदयाः ।
स्वेष्टाराधन-तत्परा इह यथा श्रीवैष्णव-श्रेणयः
कास्ता ब्रूहि विचार्य्य चन्द्रवदने ता मद्वयस्या इमाः ॥११३॥

---

श्रीकृष्णः—जो उदय होते ही राग अर्थात् ललिमा प्रकट करती है और अपनी कला (सोलहवाँ भाग में निर्मला होने पर भी जो अति कुटिला (चेढ़ी) है और जिसके दर्शन मात्र से काम उत्पन्न होता है, वह कौन है ? श्रीराधाः-वह चन्द्रकला है अर्थात् इन्दुलेखा नाम की सखी है ॥११०॥

श्रीकृष्णः-रंगभूमि पर नटन (पुरुष नृत्य) और लास्य (स्त्री-नृत्य) द्वारा स्वयं शोभा शालिनी होती हुई हम लोगों को सुख प्रदान करती है, और नृत्य में द्रुत गति के द्वारा मुझे भी आवृत्त कर लेती है, वह कोन है ? श्रीराधाः— वह रंगदेवी है ॥१११॥

श्रीकृष्णः— पाशक्रीड़ा में मुझ पर भी विजय पा कर पण (दाव) रूपी चुम्बक रत्न को कौन ग्रहण करता है ? और भला कौन पराजित होकर चुम्बक-रत्न की अभिलाषा नहीं करता है ? श्रीराधाः— वह सुदेवी है ॥११२॥

श्रीकृष्णः- औरों की तृप्ति से जिनकी परितृप्ति होती है, औरों को दुःख होने पर जिनको अत्यन्त दुःख होता है, जिनके निकट उनके निज सुख समूह उपस्थित होने पर भी जिन्हें हर्ष

इत्थं द्वोव्यञ्जविकल-कलाशालि-सीमन्तिनीनां
नर्म्मच्छद्माधर-कुचकरस्पर्श-पुष्पाद्य र्नाथैः ।
बल्लीनां वा किशलय-फलास्वाद-मत्तः पिकेशो
भ्रामं भ्रामं स किल ललितानन्ददं कुञ्जमाप ॥११४॥
श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽगाद्गणितस्त्रयोदशतया मध्याह्नलीलामनु ॥१३॥

---

नहीं होता है और दुःख उपस्थित होने पर चित्त में व्यथा नहीं होती है, ऐसे व्यक्ति बिचार पूर्वक कहो तो, कौन हैं ? श्रीराधाः— ऐसे तो मेरी बयस्या ललिता, बिशाखा इत्यादि ही हैं जैसे इस बृन्दावन में वैष्णवगण हैं ॥११३॥

इस प्रकार से श्रीकृष्ण चौंसठ कलापूर्ण ब्रज सीमन्तनियों के साथ परिहास के मिष से क्रीड़ा करते हुये नवपल्लव व फलों के रसास्वाद से मतबाले कोकिल-कुल की भाँति, उनके अधर-चुम्बन, कुचमर्दन व पुष्प विहारादि के छल से इधर उधर भ्रमण करते करते ललितानन्द नामक कुंज में पधारे ॥११४॥

यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य में मध्यान्हलीला नामक त्रयोदश सर्ग समाप्त हुआ । यह श्रीगोविन्दलीयामृत श्रीकृष्ण-चैतन्यमहाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूपगोस्वामी की कृपा का फल है, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्री-मज्जीवगोस्वामी के संग से उदय हुआ है तथा श्रीरघुनाथभट्ट-गोस्वामी के बर से प्रादुर्भूत हुआ है ॥१३॥
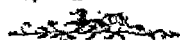
# ❀ अथ चतुर्दशः सर्गः ❀

अथालिवर्गानन-सौरभाहृत-
स्ताभिर्मुखाब्जेषु पतन्निवारितः ।
विन्दन् स राधा-वदनाम्बुजं द्रुतं
स्तद्गन्ध-मत्तः परितोऽलिरध्वनि ॥१॥
नेत्रान्तोद्धृ-चनैश्च कङ्कण-झणत्कारोर्म्मि-सन्तर्ज्जनै-
र्लीलाद्दोलित-पाणिपद्म-धुवनैः क्षिप्तोऽपि भृङ्गो यदा ।
लोभान्नापससार तर्ह्यपसृता श्रीराधिका श्रीहरेः
संव्यानाञ्चल-संवृतास्यकमला पार्श्वे निलीय स्थिता ॥२॥

---

अनन्तर, सखीवृन्द के मुख-सौरभ से आकृष्ट होकर एक भ्रमर उनके मुखकमल पर गिरने जा रहा था कि सखियों ने उसे उड़ा दिया। वह श्रीराधा के मुखकमल के पास जा पहुँचा और उसके सौरभ से मतवाला हो गुनगुनाता हुआ वहीं इधर उधर मँडराने लगा ॥१॥

श्रीराधा के नेत्र-कोण भय से संकुचित हो गये और वे कंकण के झन्कार के साथ गर्जन-तर्जन करती हुई चंचल कर से लीला-कमल को चला चला कर भ्रमर की ताड़ना करने लगी तथापि जब वह भ्रमर श्रीराधावदन कमल के मधुपान के लोभ से हटा नहीं तो श्रीराधा ने भाग कर श्रीकृष्ण के दुपट्टा की छोर से अपना बदन ढक लिया और उनके पार्श्व में छिपकर खड़ी हो गयीं ॥२॥

तस्मिन् गते पद्मवनीमलौ चले तामाहुरालयः सखि मा भयं कुरु।
निवारितोऽस्माभिरसौ स्वन् शठः पद्मालिमुक्तो मधुसूदनो गतः ॥
आढ्यङ्करण्या सुभगङ्करण्या स्थूलङ्करण्या प्रणयोच्चलक्ष्म्या
अन्धङ्करण्या दयितं पुरस्थं नान्धीकृतासावनुसन्दधे तम् ॥४॥
तावत् कृष्णेन ताः सख्य इङ्गितज्ञेन वारिताः।
तत्पक्षं जगृहुः सख्या विस्मिताः प्रेम-चेष्टितैः ॥५॥
प्रेमवैचित्र्य-विभ्रान्ता कान्ता कान्तान्तरं गतम्।
कान्तं मत्वा ततोऽभ्यस्य रुष्टा प्राह धनिष्ठिकाम् ॥६॥

---

वह चंचल भ्रमर भी कमलबन में चला गया और तब सखियों ने श्रीराधा से कहा "सखी राधे! तुम और भय मत करो, हम लोगों के निवारण करने से वह शठ मधुसूदन (भ्रमर; कृष्ण) पद्मबन को चला गया है" ॥३॥

सुनते ही श्रीराधा को ऐसा बोध हुआ कि मधुसूदन अर्थात् श्रीकृष्ण 'पद्मालि' अर्थात् पद्मा की सखी चन्द्रावली के समीप चले गये हैं अतएव आढ्य करणी (धनी बनाने वाली) सुभगं करणी (सौभाग्यशालिनी बनाने वाली) स्थूलंकरणी एवं अन्धं-करणी रूपा उन्नत सम्पत्ति ने श्रीराधा को बोध शून्य अन्धवत् कर दिया और वे समीपस्थ श्रीकृष्ण का भी अनुसन्धान न पा सकी ॥४॥

उसी समय इंगितज्ञ श्रीकृष्ण ने इंगित (संकेत) द्वारा सखियों को निवारण किया और उन्होंने भी श्रीराधा की प्रेम-चेष्टा से विस्मित होकर श्रीकृष्ण का ही पक्ष ग्रहण कर लिया अर्थात "श्रीकृष्ण यही तो है" कहकर श्रीराधा को सावधान नहीं किया ॥५।

धनिष्ठे धृष्टस्ते क्व नु कपटनाटीनटि ! नट-
स्त्वदर्थं स्वप्रेयान् कुसुममवचेतुं सखि ! गतः।
गतोऽयं पद्मालीं कपटिनि स तामानयति चे-
द्भविष्यत्यप्येषा तव मुखरुचा निर्जितरुचिः ॥७॥
दोषोऽत्र ते नास्त्यहमेव मूढ़ा श्रुत्वापि यातं गहने सशैव्यम् ।
विश्रभ्य वाण्यां तव कूटदूत्या यदा गता तस्य शठस्य पार्श्वम् ॥८
धनिष्ठैषाप्यस्मद्धृदय-सदृशी वञ्चयति नः
स चाप्यस्मानस्यन् विलसति तया मत्प्रियवने ।

---

तब कान्ता श्रीराधा प्रेम वैचित्त्य के कारण विभ्रान्त होकर यह समझ बैठीं कि कान्त श्रीकृष्ण कान्तान्तर अर्थात् अन्यकान्ता चन्द्रावली के समीप चले गये। तब तो क्रोध प्रकाशपूर्वक धनिष्ठा के निकट जा उससे कहने लगीं ॥६॥

अरी धनिष्ठे ! कपट नाट्य की नटी अर्थात् महाकपटिनि ! "नट वह धृष्ट, कहाँ गया है ? धनिष्ठा ने कहा, ? "सखी राधे ! तुम्हारे निज प्रियतम कृष्ण तुम्हारे लिये पुष्प चयन करने पद्माली (पद्मवन) गये हैं"। श्रीराधा:— "हे कपटिनि ! यदि वे उस पद्माली (चन्द्रावली) को ले आये तो क्या होगा" ? धनिष्ठा:— "वह पद्माली (चन्द्रावली) तुम्हारे वदन-कान्ति से मलिन हो जायगी अर्थात् उसकी शोभा नष्ट हो जायगी ॥७

श्रीराधा:— "अरी धनिष्ठे ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैं मूढ़ हूँ जो मैं यह सुन कर के भी कि श्रीकृष्ण शैव्या के साथ सघन वन में गये हैं, तुम जो कपटिनी दूती हो, तुम्हारी बातों में विश्वास करके उस शठ श्रीकृष्ण के समीप आकर ठगी गई हूँ ॥८॥

इदृक्षाप्यस्माकं नयन-विषयं सम्प्रति गतं
चिरं जीवेद्योऽस्मिन् जगति स हि वा पश्यति न किम् ॥९॥
इद किं सोढ़व्यं भवति यदयं मत्प्रिय-सरो-
निकुञ्जे पद्मालीं क्वचिदपि निधायात्र निभृतम् ।
समानाय्याप्यस्मान् छलमहह सन्दर्श्य शठधी-
मुधालापारम्भं न इह स विहायागमदमूम् ॥१०॥
ललिता प्राह तद्व्याष्ट्यं मया दृष्टं मुहुः सखि !
नावैषि सरला त्वमेहि यामः स्वमन्दिरम् ॥११॥

---

अब तो श्रीराधा ने किसी की ओर दृष्टि न देकर नीचे शिर कर लिया और अत्यन्त दुःखातुर होकर कहने लगीं-"हाय हाय ! मेरे हृदय तुल्य इस धनिष्ठा ने भी आज हम से वंचना कर डाली और श्रीकृष्ण भी मुझे त्यागकर उस पद्मालो के साथ मेरे ही प्रिय-बनमें बिलास कर रहे हैं। ओह ! मेरी विपक्षा के साथ मेरे प्रिय का रमण ! और वह भी मेरे नेत्रों के सन्मुख ! हा कष्ट ! इस जगत में चिरंजीवियों को क्या नहीं देखना पड़ता ! अर्थात् मैं कहीं चिरंजीविनी हुई तो न जाने और क्या क्या देखना पड़ेगा अतएव मेरे लिये मृत्यु ही श्रेयः है ॥९॥

"परन्तु हे राधे ! ऐसा तुम किस कारण से कह रही हो" मानो तो इसका उत्तर देती हुई पुनः बोलीं"-"हाय ! कितने दुःख की बात है ! इसे क्या कोई सह सकता है जो यह शठबुद्धि श्रीकृष्ण मेरे कुण्ड (राधाकुण्ड) के तीरबर्ती कुंज में, कोई निभृत स्थान में पद्माली चन्द्रावली को लुकाछिपा कर रख आवें और फिर हम लोगों को यहाँ बुलवा लाकर, मीठी-झूठी बातें सुना सुना कर हमको छोड़ कर उस पद्माली के पास चले जाँय ? ॥१०॥

इति तां ललिता पाणौ धृत्वा चक्रे गृहोन्मुखीम् ।
सापि तद्विरहाद्भीता दीनार्त्तोत्का जगाद ताम् ॥१२॥
दृष्टान् दोषान्न गृह्णाति चिन्तयत्यसतो गुणान् ।
दिदृक्षते तादृशं तं वामं चेत: करोमि किम् ॥१३॥
स्त्रीततेर्न क्वचित् कामजाप्युज्झिता
लालसा-बल्लरी दृश्यते बाह्यगा ।
षष्ठिका-धान्यजातेरिवेतीरिता
सा तया तां सखीं राधिका व्याहरत् ॥१४॥
त्यज व्यर्थां नारीचय-नय-कथां कर्णातुदन्तीं
बिनियान्ति प्राणा: स्फुटति मम हृद्घूर्णति वपु: ।

---

यह सुन कर ललिता ने कहा "सखी राधे ! मैंने तो श्री-कृष्ण की ऐसी ऐसी धृष्टता अनेक बार देखी है, परन्तु तुम तो सरला हो, कुछ नहीं जानती हो ! आओ चलें अपने घर ॥११

यह कह ललिता श्रीराधा का हाथ पकड़ घर ले जाने को उद्यत हुई तो श्रीराधा श्रीकृष्ण के बिरह में भीता,दीना, आर्त्ता व उत्कण्ठिता हो ललिता से बोली ॥१२॥

सखी ललिते ! श्रीकृष्ण जब अविद्यमान गुणों की ही चिन्ता करते हैं और दृष्ट दोषों को ग्रहण ही नहीं करते तो यह कुटिल चित्त उनको ऐसा ही देखने के लिये लालायित रहता है। यह मेरे चित्त का ही दोष है, बताओ मैं क्या करूं ॥१३॥

साठी धान पकने पर भी बाहर से ढका ही रहता है, बाहर निकलता नहीं है, ऐसे ही स्त्रियों की कामज लालसा बढ़ने पर भी बाहर कभी प्रत्यक्ष नहीं होता है। यह सोच कर ललिता बोली "हे सखि ! अपनी चित्तवृत्ति बताओ तो सही" ! यूँ ललिता द्वारा प्रेरित होने पर श्रीराधा बोलीं ॥१४॥

व्रजेन्नाशं मानो व्रजतु महिमा ह्रीश्च सधृतिः
सखि त्वां वन्दे हा हृदय-दयितं दर्शय लघु ॥१५॥
सारल्यं ते विविध-रमणी-लम्पटो धूर्त्त-भूप-
श्चापल्यं चाप्यनुपममिदं क्वापि रामास्वदृष्टम् ।
आलोक्यैतोऽप्यधिकमहहो वञ्चयिष्यत्यसौ त्वां
त्वच्चारित्रैर्वयमिह हताः किं पुनर्हंसि वास्मान् ॥१६॥
इतोऽपि का सास्त्यधिकात्र वञ्चना
यया शठोऽस्मान् स कदर्थयिष्यति ।

---

"सखी ललिते ! कर्णों को व्यथा पहुँचाने वाली नारियों की नीति की बात छोड़ो । इन नीति-वार्ताओं से मेरे प्राण निकले जाते हैं, हृदय फटा जाता है और देह में चक्कर आ रहा है । सो यदि यूँ कहो कि इससे तो मानादि नहीं रहेंगे तो मैं फिर कहती हूं, कि मान का नाश हो जावें, और धैर्य के साथ महत्व व लज्जा भी दूर चले जावें ! हा हा ललिते ! मैं तुम्हारी बन्दना करती हूं तुम शीघ्र ही लाकर प्राण प्रियतम के दर्शन करा दो ॥१५॥

ललिता बोली, सखी राधे ! श्रीकृष्ण तो धूर्तों के राजा हैं । उस पर बहुरमणी लम्पट हैं, और तुम्हारी सी सरलता व चंचलता भी और किसी रमणी में नहीं दिखायी देती है । अतएव तुम्हारी इस निरुपम चंचलता को देखकर वह तुम्हें इससे भी और अधिक वंचना करेगा । तुम्हारे चरित्र से हम पहिले ही मर रही हैं, अब मरी को तो और मत मारो अर्थात् जो कुछ चंचलता की सो की, अब और अधिक चंचल मत बनो ॥१६॥

यह सुन श्रीराधा अत्यन्त कातर होकर बोलीं, "सखि !

इत्यालपन्ती प्रियमैक्षताग्रत:
सालिङ्गय काञ्चिद्दयितां समागतम् ॥१७॥
तां वीक्ष्य पश्चाद्दयितोपगूढ़ां स्वसम्मुखीनां प्रतिकुर्व्वतीं स्वम् ।
पद्मा-सखीत्वेन विनिर्णयन्ती ह्रियेर्ष्यया सा विमुखी चकम्पे ॥१८
वल्गूयन्तीं समीक्ष्यामूं मन्तूयन्तीह राधिका ।
सा कुन्दलतयाभाषि कृष्णेनेरितया दृशा ॥१९॥
कान्तं द्रष्टुं समुत्का त्वमागतं तं समुत्सुकम् ।
द्रुतं मिल कथं जातास्यकस्माद्विमुखी रुषा ॥२०॥

---

इससे भी अधिक प्रवंचना और क्या हो सकती है जिसके द्वारा वे मेरी और अधिक दुदशा कर सकते हैं" इस प्रकार कहती कहती उनको यह भ्रम हुआ कि कोई एक कान्ता को आलिंगन किये हुये श्रीकृष्ण आ रहे हैं ॥१७॥

वह कान्ता भी कैसी है कि पृष्ठ (पीठ) की ओर से उसे श्री-कृष्ण आलिंगन किये हुए हैं। श्रीकृष्ण के अंग में श्रीराधा को अपना प्रतिबिम्ब इसी ढंग से दिखायी देता है अतएव यहाँ भी वैसा ही देख रही हैं। इस प्रकार अपने ही सन्मुख अपनी सी चेष्टा करने वाली प्रतिबिम्ब रूपिणी उस कान्ता को देख श्री-राधा ने उसे पद्मा की सखी चन्द्रावली ही ठहराया तथा लज्जा व ईर्ष्या से मुख फेर कर क्रोध से थर थर काँपने लगीं ॥१८॥

इस प्रकार जब राधा अपने प्रतिबिम्ब को श्रीकृष्ण के वक्षः स्थल से सटा देख क्रोध प्रकट कर रही थीं उस समय श्रीकृष्ण के नयन-भंगी से प्रेरित होकर कुन्दलता श्रीराधा से कहने लगी ॥१९॥

सखी राधे ! तुम कान्त के दर्शन के लिये उत्कंठित हो रही

साप्याह तां हरेर्वक्षस्यमूं किं त्वं न पश्यसि।
यां प्रदर्शयितुं गेहादानीताहं त्वया शठे ॥२१॥
कृष्णोऽब्रवीद्यां मनुषे न सैषा काप्यागतैकात्र मयानुयुक्ता।
राधा-वयस्या बनदेबतास्मी-त्युक्त्वा बलान्मां परिरभ्य सास्ते ॥२
आलिङ्ग्य संचुम्ब्य च मां स्वविद्यया
पृष्ठेन लग्नोरसि मे तथासकौ ।
यथा न निःसारयितुं क्षमोऽस्म्यमूं
स्वयं च निःसर्तुमपि प्रयत्नतः ॥२३॥

---

थी, वैसे ही वे भी तुम्हें देखने के लिये उत्सुक होकर पधारे हैं। सो तुम शीघ्र ही उनसे मिलो, किस लिये क्रोध करके मुख फेर रही हो ? ॥२०॥

राधा ने कहा—"अरी शठे ! जिसको दिखाने के लिये तुम मुझे घर से यहाँ ले आयी हो, उस पद्मा की सखी चन्द्राबली को क्या तुम श्रीकृष्ण के बक्षःस्थल पर नही देख पा रही हो ? ॥२१॥

यह सुन कर श्रीकृष्ण बोले, "हे राधे ! तुम जो मन में सोचती हो यह वह पद्मासखी चन्द्रावली नहीं है। यह तो कोई एक अनिर्वचनीया सती ने आकर "मैं-राधा की सखी बनदेवी हूं" कह मुझे बलपूर्वक आलिंगन करती हुई मेरे बक्षःस्थल पर अडी हुई है ॥२२॥

और यह बनदेवी मुझे आलिंगन चुम्बन कर अपनी विद्या के बल से मेरे बक्षःस्थल से पीठ लगा कर ऐसी सट गई है कि मैं यत्न करते हुए भी इसे हटा नहीं पा रहा हुं और आप भी यह देवी यत्न करती हुई निकल कर बाहर नहीं हो पा रही है ॥२३

प्रार्थितापि मया नैषा मां जहात्यतिकामुकी ।
वारयैनां निज-सखीं बलान्मां पीड़यत्यसौ ॥२४॥
लग्नायां ललितायां तच्छ्रुत्वा सासीदधोमुखी ।
सकृष्णा जहसुः सभ्याः कुन्दवल्ली जगाद ताम् ॥२५॥
नैवाक्षि-लग्नं दयितं विलोकसे छायां निजामन्यजनीञ्च मन्यसे ।
सर्व्वत्र चन्द्रावलिकां विशङ्कसे चित्रं तवेदं प्रणयाख्य-नर्त्तनम् ॥२'
अथाह वृन्दा व्रजमङ्गलाकरा- बालेप-चित्रै रुचिरां सुविस्तृताम् ।
वसन्त-लीलोत्सव-रङ्गवेदिका-स्थलीमिमां पश्यतमग्रतः स्थिताम् ॥

---

"हे राधे ! मेरी प्रार्थना करने पर भी यह कामिनी मुझे छोड़ नहीं रही है। सो तुम अपनी प्रयत्न से इसे रोको–यह बल-पूर्वक मुझे सता रही है ॥२४॥

तब तो ललिता ने श्रीराधा के कर्ण से लग कर धीरे से कह दिया- "यह तो कृष्ण के अंग में तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब है" । सुनते ही श्रीराधा ने सिर नीचे कर लिया । यह देख श्रीकृष्ण और सब सखियाँ जब हँसने लगीं तो कुन्दलता बोली:– ॥२५॥

सखी राधे ! बड़ा विचित्र है तुम्हारा यह 'प्रणयाख्य' नृत्य--(प्रेम की विचित्र गति-विधि) जो तुम नेत्रों के सन्मुख स्थित प्रियतम को तो देख नहीं पाती हो, और अपनी छाया को दूसरी समझती हो और सब ठौर चन्द्रावली की ही शंका (भ्रम) करती रहती हो ! ॥२६॥

तब वृन्दा ने निवेदन किया:— हे व्रजमंगल निधि राधा कृष्ण ! आप लोगों के निकट ही यह बसन्त लीलोत्सव की रंग-वेदी है–दर्शन करें । यह रंगवेदी अगुरु, केशरादि के लेप द्वारा लिखित नाना विध चित्रों से मनोहर है ॥२७॥

अगुरु-घुसृण-कस्तूरीन्दु-सच्चन्दनानां
पृथगपृथगुदञ्चत्कर्द मारम्भः प्रपूर्णैः ।
विविध-मणिचिताम्बुक्षेपयन्त्रैर्विराज-
द्विततवदन-कुम्भैरन्वितां शातकुम्भैः ॥२८॥
सैन्दूर-कार्पूरकपौष्पकन्दुकैः शरासनैर्बाणचयैश्च कौसुमैः ।
ताम्बूल-माल्यैः कुसुमाम्बु-चन्दनैरापूर्ण सौवर्णक-भाजनैर्युताम्ः ॥
कर्पूर-कुङ्कुम-मदागुरु-चन्दनानां
पङ्कैश्च चूर्णनिकरैरतिपूरिताभिः ।
श्वासाभिलव्य-मृदु-जातुष-कूपिकाभि-
रापूर्ण-हैमतत-भाजनवृन्दयुक्ताम् ॥३०॥ चतुर्भिः कुलकम्

---

इस वेदी के समीप अगुरु, केशरादि के जल से परिपूर्ण पृथक् पृथक् स्वर्ण कलश और इनके मिश्रित पंक जल से परिपूर्ण स्वर्ण कलश भी हैं जिनके चौड़े चौड़े मुखों पर विविध मणि निर्मित जलक्षेप यंत्र (पिचकारी) शोभा दे रहे हैं ॥२८॥

और सिन्दूर, कपूर और पुष्प के बने हुए तीन प्रकार की गेंद, पुष्पों के बने धनुष-बाण, ताम्बूल, मालाएँ, कुसुम बासित जल व चन्दनादि से परिपूर्ण पाँच स्वर्णपात्र, उपभोग के निमित्त वेदी के समीप रखे हुए हैं ॥२६॥

और कपूर, कुंकुम, केसर, अगरु व चन्दन इन पंचद्रव्यों के पंक व चूर्ण द्वारा परिपूर्ण लाख की कुप्पियाँ हैं अर्थात् किसी कुप्पी में कपूर, किसी में कुंकुम इत्यादि इत्यादि भरा हुआ है। और वे कुप्पियाँ इतनी सूक्ष्म हैं कि निःश्वास बायु से भी उनके टूट जाने का भय रहता है। इस प्रकार नाना बिध स्वर्णपात्रों से वह वेदी परिपूर्ण है ॥३०॥

आरुह्य तां श्रीरमणीचयो भवंस्तदैकतः श्रीरमणोऽप्यथैकतः ।
गृहीत-तत्तज्जलयन्त्रकादिकः परस्परं प्रेमभरादरीरमत् ॥३१॥
बिधृत-लघुसितांशुकौ रम्य-ताम्बूल-पूर्णाननौ
रतिपतिरण-यान्त्रिकत्वं गतौ तोययन्त्रैश्च तैः ।
चल-निशित-कटाक्ष-कन्दर्प-नाराच वृष्ट्या समं
विसृजत इह यन्त्रमुक्ताम्बुवृष्टिं मुदा तौ मिथः ॥३२॥
क्लिन्नातिसूक्ष्म-वसनान्तरुदीर्ण-तत्त-
दङ्गावलीमधुरिमामृत-सत्प्रवाहैः ।
संसिक्त-कान्त-नयनाब्जमनस्तटीका-
स्तस्यापि तैरतिनिषिक्त-वितृप्तनेत्राः ॥३३॥

---

अब तो परम सुन्दरी रमणी गण और परम सुन्दर रमण श्रीकृष्ण उस रंगवेदी पर चढ़े और उसके अगल बगल में रक्खे हुए क्रीड़ायोग्य पूर्वोक्त जलयंत्रों (पिचकारियाँ) से, कपूर, कुंकुम, केसरादि के जल-पंक से और चूर्ण पूरित कुप्पी और गेंदों से परस्पर में क्रीड़ा करने लगे ॥३१॥

रंग-खेल आरम्भ हुआ। रमणियों और रमण ने अति सूक्ष्म शुक्ल-वस्त्र धारण कर लिये हैं। पान मुँह में दबाये हुये हैं कन्दर्पयुद्ध के लिये जलयंत्र पकड़े हुये हैं। और उमग उमग कर परस्पर चंचल कटाक्ष बाणों के द्वारा काम वर्षा के साथ साथ पिचकारियों द्वारा जलधारा की भी वर्षा कर रहे हैं ॥३२

आगे चार श्लोकों द्वारा श्रीराधा प्रभृति व्रजसुन्दरियों की क्रीड़ा-माधुरी का वर्णन करते हैं; यथा:— व्रजसुन्दरियों के भीगे सूक्ष्म वस्त्रों के अन्दर से उनसे अंगों के माधुर्यामृत का जो प्रवाह उभल रहा था वह श्रीकृष्ण के नेत्रकमल को सींचता हुआ उनके मन रूपी तट के भीतर बँध गया, और उसी प्रकार

ताम्बूलचर्वितदरोच्छ्वसितैकगण्डाः
क्लिन्नालकालिवृत-घर्म्मजलाञ्चि-भालाः ।
विस्रस्त-केश-विगलत्-कुसुमावलिका-
लोलत्कचांस-युग-चारु-कुचांश-मध्याः ॥३४॥
धासोञ्चलीं विविधगन्ध-सुचूर्णपूर्णां
काञ्च्यान्तिरःसुदृढ़-शृङ्खलितां दधानाः ।
कन्दर्प-दीपन-सनर्म्म-मनोज्ञगानाः
कृष्णाभिषिक्त-निजगुप्तिषु सावधानाः ॥३५॥
नाना-प्रकार-पटवास-चयान् क्षिपन्त्यः
पौष्पादि-कन्दुकगणान् मृदुकूपिकाश्च ।

---

कान्त श्रीकृष्ण की अंगमाधुरी का अमृत प्रवाह व्रजांगनाओं के नेत्रों को अतिशय सींचता हुआ उनके मन को तृप्त करने लगा ॥३३॥

चर्वित ताम्बूल से उनका एक एक गण्ड कुछ उठा हुआ है। भीगीं अलकावली और घर्म-बिन्दुओं से कपोल शोभित है, खुले केश-कलाप से कुसुमावली झर रही हैं, और उन के केश कुछ स्कंधों पर कुछ कुचों के ऊपर, और कुछ पीछे पृष्ठ-कटि पर लहरा रहे हैं ॥ ३४ ॥

उन्होंने अपनी साडी के अंचल को जो अनेक प्रकार के सुगन्ध-द्रव्यों के चूर्ण से भरे हुए हैं कंधों पर से तिरछी लाकर के अपनी अपनी कौंधनी के नीचे कस करके बाँध ली है। वे कामोद्दीपन-कारी परिहासपूर्ण मनोज्ञ गीत गा रही हैं और श्रीकृष्ण के उन पर रंग-जल डालते समय अपने को बचाने में सावधान हो रही हैं ॥ ३५ ॥

ऐसी श्रीराधिका आदि व्रजसुन्दरियाँ नाना प्रकार के गन्ध-

प्रेम्णा सुगन्धि-सलिलैर्जलयन्त्रमुक्तैः
श्रीराधिका-प्रभृतयः सिषिचुः स्वकान्तम् ॥३६॥
अंसालम्बित-पौष्प-कार्म्मुकलतां बाणावलीं कौसुमीं
वंशीं चातुलतुन्दबन्धनिहितां रत्नाम्बुयन्त्रं करे।
बिभ्रत् श्रीघटिकाञ्चलञ्च निभृतं पिष्टातकैः श्रीहरिः
कान्ता-यन्त्र-बिमुक्त-गन्धसलिलैः सिञ्चन्निमा दिव्यति ॥३७॥
एकास्य निःसरति या जलयन्त्रधारा
व्योमध्वनीह शतधा च सहस्रधा च।
आसन्न-पातसमये किल लक्षधासौ
लक्ष्येषु पातसमये बत कोटिधा स्यात् ॥३८॥

---

चूर्णों-( अबीर, गुलालादि ) को डालती हुई, पुष्प, सिन्दूर और कपूर के बने हुए गेंदों से भरती हुई, लाख की बनी हुई चूर्ण-पूर्ण कुप्पियों को फेंकती हुई, और पिचकारियों से सुवासित जलों को छोड़ती हुई अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने प्राण-वल्लभ को रस-रंग से सींचने लगीं ॥ ३६ ॥

तब तो श्रीकृष्ण भी, कँधे पर पुष्प-धनुष धारण किये, कटि कसे मनोहर फेंट में पुष्प-बाण और वंशी उरसे हुये हाथ में रत्न-रचित पिचकारी और सुगन्ध-चूर्ण-पूर्ण चल घटों को लिये हुये पिचकारी से सुगन्धित सलिल चलाने लगे और कान्ताओं को भिगा भिगा कर खेलने लगे ॥३७॥

अकेले श्रीकृष्ण अनेक ब्रजसुन्दरीयों पर एक साथ कैसे जल डालते होंगे-इसके उत्तर में वर्णन करते हैं-कि श्रीकृष्ण की पिच-कारी से जल निकल आकाश-मार्ग पर चलते समय पहले तो एक धार से सौ धाराएँ और फिर सहस्र धाराओं में बँट जाता और नीचे गिरते समय लाख और अंगों पर पड़ते समय

जातूष्यो या गन्धचूर्णैः प्रपूर्णाः
क्षिप्तास्ताभिस्तेन वा कूपिकास्ताः ।
भूमौ पेतुः क्षेपवेगैर्विशीर्णा-
स्तन्मध्यस्था गोलिका-लक्ष्यमापुः ॥३६॥
तासां तनौ कुङ्कुम-बिन्दुजाल-मध्ये बिराजन्मदबिन्दवस्ते ।
सुवर्णवल्लीतति-पुष्पवृन्द-सुप्तालिसङ्घ-भ्रममुन्नयन्ति ॥४०॥
श्रीराधिका-प्रथमकीर्ण-सुसूक्ष्मरन्ध्र-
सद्यन्त्र-कुङ्कुम-जलामल-बिन्दुजालैः ।
व्याप्तं परिस्फुरति संहननं बकारे-
रुद्यत्सुधाकिरण-बिम्ब-शतैर्नभो वा ॥४१॥

---

कोटि धाराओं में बँट जाता। यह तो पिचकारी की एक धार की बात हुई, इसी प्रकार अन्य धाराओं से भी कोटि कोटि धाराएँ निकल पड़ती ॥ ३८ ॥

अब परस्पर लाक्षा ( लाख ) निर्मित कुप्पियों का फेंकना आरम्भ हुआ। वे फेंकने के वेग से ही फूट कर पृथिवी पर गिरतीं और उन में से सिन्दुर, केसर आदि की गोलियाँ उछल उछल कर श्रीकृष्ण और ब्रजसुन्दरियों के अंगों पर जा लगतीं॥

श्रीकृष्ण के द्वारा फेंके हुए कुंकुम गोली आदि श्रीराधा आदि सुन्दरियों के अंगों पर जा लगने पर उस कुंकुम रंग के मध्य में कस्तूरी की विन्दुओं ने ऐसा भ्रम उत्पन्न करा दिया कि स्वर्णलताओं के स्वर्णकुसुमों के मध्य में भ्रमर सो रहे हों। अर्थात् स्वर्ण लताएँ तो सुन्दरियों की देह, उस पर स्वर्ण कुसमावली हुई कुंकुम विन्दु समूह, और उनके मध्य के केसर विंदु हुये भ्रमर श्रेणी। ऐसी बिलक्षण अंगशोभा बनी-इससे श्रीकृष्ण का बिलक्षण निक्षेप-कौशल सूचित होता है ॥४०॥

ताः क्षेपवेग-गलिताबृति-कूपिकानां
कर्पूर-नागज-परागज-गोलिकाभिः ।
लग्नाभिरङ्ग-बसनेऽथ सुगन्धि-तोयैः
पङ्कत्वमेत्य विहिताः शवलाङ्गभासः ॥४२॥
नानावर्णैर्गन्धचूर्णैर्बिकीर्णै-रादौ भूद्यौव्योमसे दिग्विदिक् च ।
गन्धाम्बूनां बृष्टि-संच्छिन्नमूलै-र्लेभे चश्चाच्चित्र-चन्द्रातपत्वम् ॥४३॥

---

अब श्रीकृष्ण की अंग शोभा सुनिये:-पहले श्रीराधा ने सुन्दर सूक्ष्म छिद्र वाली पिचकारी से श्रीकृष्ण पर कुंकुमजल डाला। उस कुंकुम जल की निर्मल बूँदें बकरिपु श्रीकृष्ण की देह पर छा गईं। उस समय श्रीकृष्ण का श्यामल देह शत शत शशियों से समाकीर्ण नीलाकाश की भाँति शोभा देने लगा ॥४१

उधर श्रीराधिका आदि रमणियाँ भी अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र रंग से रंग गईं। कारण कि बेग से फेंके जाने पर कुप्पियों के सूक्ष्म आवरण फट गये और उनके भीतर भरे हुये कपूर, सिन्दूर व पुष्प की धूलि अथवा गोलियाँ सुगन्धित जल में मिल कर पंक बन गयीं और ब्रजांगनाओं के बस्त्रों और अंगों में लग गयीं जिस से वे चित्र-विचित्र वर्ण की दिखायी देने लगीं ॥४२॥

और आकाश में चंदोवा भी तन गया। कारण कि पहले तो रंग-विरंगे गन्धचूर्ण (अबीर, गुलालादि) के उड़ाये जाने पर पृथिवी, आकाश और दिशाएँ उनसे छा गयीं फिर पिच-कारियों के सुवासित जल से चूर्ण सब मिल करके पंक बन गया उस पंक से आकाश को बिना मूल का एक विचित्र चंदोवा प्राप्त हो गया ॥४३॥

कृष्णास्तीक्ष्णैरतनु-विशिखैर्नर्म्म-मन्त्र-प्रवीणै-
स्तासामासोन्मदन-बिवशा विद्धमर्म्मा कटाक्षैः।
तत्प्रत्यस्त्रैः मदरहसितापाङ्ग-लोकाशुगैस्तान्
प्रत्यावर्त्त्य व्यदधदथ ता व्याकुलाः सोऽपि शश्वत् ॥४७॥
मह्यां मेघः स च नरवपुस्तं च सिञ्चन्त्यजस्रं
शम्पास्तस्मात् पृथगित-लसन्मूर्त्तयो गन्धवाराम्।
धारासारैः सततममुना सिच्यमाना मुदास्मिन्
बृन्दादीनामपिबदमृतं नेत्रबापीह वर्गः ॥४८॥
क्रीडन्नित्थमसावमुभिरगमद्दोलाब्ज-वेद्यन्तिकं
बृन्दा कुन्दलते ह्यगाङ्गितनयैः कृत्वा सहाये हसन्।

---

ब्रजांगनाओं के परिहास मंत्र में प्रवीण और तीक्ष्ण कटाक्ष रूप काम वाणों के द्वारा मर्म स्थान बिंध जाने से जो बिवश हो गये थे उन श्रीकृष्ण ने भी प्रत्युत्तर में मन्द हास्य सहित अपने कटाक्षवाणों द्वारा उनके कटाक्ष वाणों का निवारण कर उनको व्याकुल कर दिया और आप भी व्याकुल हो गये ॥४७॥

प्रथम तो पृथिवी पर मेघ—यही एक आश्चर्य है उस पर वह मेघ भी नरदेह धारी हो—यह और भी आश्चर्य है, फिर उस मेघ को विद्युत् मिलकर सींच रही हो यह उससे भी अधिक आश्चर्य है, और फिर वह विद्युत्-वर्ग उस मेघ से पृथक हो बिलास मूर्त्तियाँ धारण करले और सुगन्धित जल धाराओं द्वारा उस मेघ को निरन्तर में सींच रही हो और मेघ भी उसी प्रकार की जलधाराओं द्वारा उन्हें सींच रहा हो-यह तो उससे भी अधिक आश्चर्य है। इस प्रकार के मेघ का सुधा पान बृन्दादिकों के नयन रूप चकोर अति आनन्द पूर्वक करने लगे ॥४८

तब श्रीकृष्ण ब्रजांगनाओं के साथ क्रीड़ा करते करते जब

कान्तायाः करपङ्कजात् कृत-पयोयन्त्रापहारो हरि-
र्हिन्दोलाम्बुजमारुरोह स हठादाच्छिन्न-वेणुस्तया ॥४६॥
अवददथ हसन्ती कुन्दवल्ली त्वमस्मै
विसृज सुमुखि! वंशी-कुट्टिनीं मा स्पृशामूम् ।
त्वमपि सलिल-यन्त्रं स्त्रीधनं माधवास्यै
त्वरितमिति तयोक्तं तौ विधातुं प्रवृत्तौ ॥५०॥
यच्छन्नसव्येन करेण यन्त्रकं सव्येन गृह्णन् मुरलीं तयार्पिताम् ।
ताभ्यां निजाभ्यां स दधार तच्छला-त्तद्युते तत्-कर-पङ्कजे हरिः
अधस्ताद्वृन्दया कुन्दवल्या चोत्थापितां हरिः ।
दोलामारोहयामास प्रतीपामपि तां बलात् ॥५२॥

---

हिन्दोला वेदी के समीप जा पहुँचे तो नेत्र भंगी द्वारा वृन्दा और कुन्दलता की सहायता से उन्होंने श्रीराधा के करकमल से पिचकारी छीन ली और श्रीराधा ने भी बल पूर्वक उनकी वंशी हर ली। तब श्रीकृष्ण हिन्दोलाम्बुज पर चढ गये ॥४६॥

कुन्दलता हँसती हुई श्रीराधा से बोलीं-"हे सुमुखि, तुम इस वंशी को श्रीकृष्ण को दे दो यह कुट्टिनी है, तुम इसे स्पर्श नहीं करना और श्रीकृष्ण से बोली, हे माधव! तुम भी श्रीराधा की पिचाकारी तुरन्त ही उसे दे दो। यह स्त्रीधन है, उसे स्पर्श नहीं करना। कुन्दलता के इस बचन पर दोनों ही वैसा करने को उद्यत हुये ॥५०॥

तब श्रीकृष्ण ने दक्षिण हस्त से श्रीराधा को पिचकारी अर्पण करने और बाम हस्त से श्रीराधा प्रदत्ता मुरली ग्रहण करने में प्रवृत्त हो अपने दोनों हस्तों द्वारा आदान-प्रदान के छल से जलयंत्र व वंशीयुक्त श्रीराधा के दोनों कर कमलों को धारण कर लिया ॥५१॥

हिन्दोल-मध्यं प्रियया गतेऽच्युते
गायन्त्य उच्चैर्मुदितास्तदालयः ।
पश्चाद्गताः काश्चिदथाग्रतः परा
हिन्दोलिकान्दोलनमुद्वितेनिरे ॥५३॥
हिन्दोलिकायां सहसालिवृन्दैरान्दोलितायां बलवच्चलन्त्याम् ।
उद्वेलिताङ्गी किल चञ्चलाक्षी सालिङ्ग्य कान्तं ललना ललम्बे ॥५४॥
तयोर्भ्रश्यत् कैश्यं मिथ इह चलत्कुण्डल-युगे
तथा चञ्चत्काञ्ची-स्तवक-पटलं तत्समुदये ।
परिम्लायन्माल्यद्वयमपि चलत्कङ्कण-बरे
द्रढं दोलान्दोले सति सपदि सन्दानितमभूत् ॥५५॥

---

तब हिन्दोला (झूला) में चढ़ने में अनिच्छावती श्रीराधा को कुन्दलता और वृन्दा ने नीचे से उठा लिया और श्रीकृष्ण ने दोनों कर कमल पकड़े ऊपर को खींच झूले पर चढ़ा लिया ॥५२॥

इस प्रकार श्रीराधा-कृष्ण दोनों हिन्दोला के मध्य में विराजमान होने पर सखियाँ मुदित हो उच्च गान करती हुई कोई आगे और कोई पीछे खड़ी होकर झुलाने लगीं ॥५३॥

सखियों द्वारा सहसा (एक दम) वेगपूर्वक झोका देने के कारण हिन्डोला बड़े वेग से चलने लगा, तब तो भय से काँपती और घबड़ाती हुई श्रीराधा अपने प्राणकान्त से लिपट उनका ही अवलम्बन (सहारा) लिया ॥५४॥

तब तो हिन्डोला इतने बेग से चलाये जाने लगा कि श्रीराधा-कृष्ण के केशपाश खुल कर एक दूसरे के हिलते हुए कुण्डलों में उलझ गये, कटि के कौंधनी के सुमन-स्तवक (गुच्छे) कौंधनी में ही अटक गये और दोनों की मालाएँ भी चंचल

दोलयामतिलोलायां राधा चञ्चल-लोचना ।
सखी-साहाय्यमिच्छन्ती व्यतर्कि ताभिरिङ्गितैः ॥५६॥
ताभिर्लोलित-दोलामीशान्तामतिलोला-
माप्तात्मेप्सितशस्तां गाढान्दोल- विहस्ताम् ।
स्वालीनां परिचर्य्यां वाञ्छन्तीं हृदि वर्य्यां
प्रेङ्खोलीञ्च मुहुस्तामाज्ञायारुरुहुस्ताः ॥५७॥
ताम्बूलवीटीर्ललिता विशाखया चम्पालिका सा व्यजने च चित्रया ।
श्रीतुङ्गविद्या सहितेन्दुलेखया पानीय-जाम्बूनद-झर्झरीयुगम् ॥५८
सार्द्धं सुदेव्या किल रङ्गदेवी सुगन्ध-पङ्कान् पटवासकांश्च ।
प्रेम्णा समुत्कातिमुदा गृहीत्वा हिन्दोलिकां तूर्णमथारुरोह ॥५९॥

---

कंकणों में फँस गयीं ॥५५॥

हिन्दोला अत्यन्त वेग से झूलते समय श्रीराधा ने चंचल नेत्रों द्वारा सखियों से सहायता की इच्छा की तो सखियाँ परस्पर में इंगित द्वारा इस प्रकार वितर्क करने लगीं ॥५६

वितर्कः—सखियों द्वारा हिंडोला वेग से झुलाने के कारण जो अत्यन्त चंचल हो गई हैं, अपनी वाँछित वस्तु की प्राप्ति से जो प्रसन्न हैं, झोकाओं के वेग से जो अधीर हैं, वह हमारी ईश्वरी मन ही मन में अपनी सखियों की सेवा की अभिलाषा कर रही हैं। श्रीराधा के ऐसे अभिप्राय को समझ सखियों ने हिन्डोला पर आरोहण किया ॥५७॥

कौन क्या सेवा सामग्री लिये हुई हैं सो वर्णन करते हैं यथा-ललिता-विशाखा पान बीड़ी ले, चित्रा-चम्पकलता बीजना ले, इन्दुलेखा सहित तुङ्गविद्या जल पूर्ण दो स्वर्ण झारी ले और सुदेवी सहित रंगदेवी सुगन्धित पंक व चूर्ण ले ले उत्कण्ठा पूर्वक आनन्द-हृदय से हिन्डोला पर चढ़ गयीं ॥५८-५९॥

ताभिः सेवितयोस्तैस्तै प्रेष्ठयोर्नयनेङ्गितैः ।
क्रमात् पूर्व्वादि-दलगा विरेजुर्ललितादयः ॥६०॥
तत्राश्चर्य्यमभूदेकं राधाकृष्णौ पुरः स्थितौ ।
युगपद्ददृशुः सर्व्वाः स्वस्वाभिमुखतां गतौ ॥६१॥
पुनरान्दोलनात्ताभिर्वृन्दा-कुन्दलतादिभिः ।
दोलायामतिलोलायां चित्रमासीदिदं परम् ॥६२॥
तासां दलाल्यां परितः स्थितानां पार्श्वे हरिः स्वप्रतिविम्ब-दम्भात् ।
तिष्ठन्नमूभिः सहसोपगूढः श्रीराधयान्याभिरपि व्यलोकि ॥६३॥
अनाच्छन्ने ऽम्भोदैर्दिवसकर-विम्बोपरि स चे-
न्नवाम्भोदव्यूहः प्रकट-चपलाभिः सुवलितः ।

---

फिर सखियों ने उन सब सेवा-सामग्रियों के द्वारा प्रियतम श्रीराधा-कृष्ण की सेवा की और श्रीराधा-कृष्ण के इंगित द्वारा आदेश पाकर ललिता बिशाखादि सखीगण उस अष्टदल पद्माकार हिन्डोला की चारों ओर पूर्वादि दल में यथा क्रम से विराज गयीं ॥६०॥

तब उस हिन्डोला में यह एक बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि सभी सखियाँ एक ही समय अपने अपने सन्मुख ही श्रीराधा-कृष्ण को देखने लगीं ॥६१॥

तब वृन्दा और कुन्दलता आदि सखियाँ फिर दुबारा उस हिंडोला को झुलाने लगीं तो उसमें एक आश्चर्य प्रकट हुआ कि उन अष्टदलों में स्थित सखियों के पार्श्व श्रीकृष्ण स्वप्रतिबिम्ब के छल से विराजमान हुये और उन सखियों के द्वारा आलिंगित हुये। यह दर्शन कर श्रीराधा और अन्यान्य सखियाँ इक टक श्रीकृष्ण का अवलोकन करने लगीं ॥६२-६३॥

इस समय श्रीकृष्ण की कैसी विलक्षण शोभा हो रही है

महावात्योद्भ्रान्तः सततमभविष्यत्तत इत-
स्तदा तस्यावारेरुपमितिमलप्स्यन्त कवयः ॥६४॥
राधाहगिङ्गितनयाल्ललितामघारि-
राकृष्य दक्षिणभुजं विनिधाय तस्याः ।
कण्ठे परं भुजमसौ दयितांस-देशे
मध्ये तयोः स विबभौ तडितोरिवाब्दः ॥६५॥
कौन्दृयब्रवीत् पश्यताल्यो ज्योतिश्चक्रे चले पुरः ।
राधानुराधयोर्मध्ये पूर्णोऽयमुदितो विधुः ॥६६॥
एवं विशाखिकाद्यास्ताः क्रमादाकृष्य माधवः ।
आलिङ्ग्य दक्षिणांसेऽमूर्हिन्दोलसुखमन्वभूत् ॥६७॥

---

कि सूर्यबिम्ब का यदि ऊपर वाला भाग मेघमाला से आच्छादित होवे, और स्थिर सौदामिनी समूह यदि नवीन-जलधर मंडल से युक्त होकर महावायु समूह के द्वारा उद्भ्रान्त हो इधर उधर निरन्तर चालित हो रहा हो, तो तब ही पंडित-गण उसके द्वारा सखीगण-वेष्टित हिन्डोलिका स्थित इस अघरिपु श्रीकृष्ण की उपमा प्राप्त कर सकते हैं, ॥६४॥

तब श्रीराधा के इंगित से आघारि श्रीकृष्ण ने ललिता को आकर्षण कर उसके स्कन्ध पर दक्षिण बाहु और श्रीराधा के स्कन्ध पर वाम बाहु अर्पण कर उनके मध्य में स्थित हो गये-उस समय वे विद्युत् द्वय के मध्य स्थित मेघ की भाँति शोभित हुये ॥

तब कुन्दलता बोली—देखो देखो सखियो ! सामने ज्योतिश्चक्र में राधा व अनुराधा (ललिता) के मध्य में यह अखिल-कला पूर्ण चन्द्रमा (श्रीकृष्ण) उदय हुआ है ॥६६॥

इसी प्रकार श्रीकृष्ण क्रम क्रम से विशाखा चित्रा आदि सखियों के दक्षिण-स्कंध धारण पूर्वक उन्हें आलिंगन करते हुये

अथावरुह्य हिन्दोलाद्द्वाभ्यां द्वाभ्यां विराजितम् ।
विशाखा-ललितादिभ्यां श्रीराधान्दोलयत् प्रियम् ॥६८॥
ततोऽवरूढा ललितादयस्तदा
राधेङ्गितैः काञ्चन-वल्लिकाः ।
आरोहयामासुरधः स्थिताः सखी-
हिन्दोलिकां तां क्रमशो बलाच्छलैः ॥६९॥
तासां द्वयी-द्वयी-पूर्ण-पार्श्वं तं क्रमशो मुदा ।
गोविन्दं दोलयामासुर्गायन्त्यस्ताः सराधिकाः ॥७०॥
राधायाः श्रुति-लग्नायां ललितायां हसन्त्यसौ ।
आरुह्य दोलामालीनां चकार बहुमण्डलीः ॥७१॥
तस्यां स्थितायां प्रियवाम-पार्श्वे प्रान्दोलयन्तीषु सखीषु दोलाम् ।
एकं पुनश्चित्रमभूदमूषां द्वयोर्द्वयोरास हरिः स मध्ये ॥७२॥

---

हिन्दोला-लीला का सुखानुभव करने लगे ॥६७॥

अब श्रीराधा हिंडोला से उतर पड़ीं और हिंडोला के ऊपर विशाखा व ललितादि दो दो सखियों के मध्य में श्रीकृष्ण को बिराजित करके उन्हें झुलाने लगीं ॥६८॥

तब श्रीराधा के इंगित पर ललितादि सखियाँ हिंडोला से उतर पड़ीं और कंचनलतादि सखियों को नीचे खड़ी देख अपनी अपनी सामर्थ्य दिखाने के छल से उनको उठा उठा कर हिंडोला पर चढ़ाने लगीं ॥६९॥

अब तो कांचनलतादि दो दो सखियों द्वारा श्रीकृष्ण के दक्षिण व बाम भाग को पूर्ण करके गीत गाती हुई श्रीराधा ललितादिक सखियाँ उन्हें झुलाने लगीं ॥७०॥

तब ललिता ने श्रीराधा के कर्ण में कुछ संकेत किया औ श्रीराधा मुस्कराती हुई हिंडोले पर चढ़ गयीं और सखियों क बहुत सी मंडलियों की रचना की ॥७१॥

तापिञ्छश्चेत् खचर-कनकक्ष्माभृदुत्थोऽभविष्यत्
प्रोत्फुल्लाङ्ग्या पुरट-लतया वेष्टिताङ्गः परीतः ।
तापिञ्छानां कनक-कदली-संयुजां मण्डलीभिः
साम्यं शौरेर्जगति स तदा तादृशस्याप्यवाप्स्यत् ॥७३॥
अथावरूढासु विशाखिकेङ्गितैः सखीषु सख्यो ललितादयो मुदा ।
राधाच्युतौ संभ्रमयन्त्य उच्चकैः प्रेङ्खोलिकान्दोलनमाचाक्रिरे ॥७४॥
व्याकुलां राधिकां प्रेक्ष्य गाढालिङ्गित-वल्लभाम् ।
स्वैरास्वालीषु गूढं स्तां हसन्नवरुरोह सः ॥७५॥

---

फिर श्रीराधा श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व में जा बिराजी और सखियों ने झुलाना आरम्भ किया। उस समय एक आश्चर्य घटना घटी कि दो दो सखियों के मध्य में एक एक श्रीकृष्ण बिराजमान थे ॥७२॥

उस समय श्रीकृष्ण कैसे शोभायमान हुये उसके लिये दृष्टान्त देते हैं, यथाः—लोक में यदि प्रफुल्ल स्वर्णलता द्वारा वेष्टित तमाल-वृक्ष कहीं कोई गगनगामी स्वर्ण पर्वत के ऊपर उत्पन्न हो और फिर ऐसे तमालवृक्ष के चारों ओर सुवर्ण कदली संयुक्त तमालतरु की मण्डली होवे तो वह दोलारूढ़ श्रीकृष्ण के सदृश हो सकता है। इस रूपक में हिंडोला तो गगन-चारी सुवर्ण पर्वत है, राधा ही स्वर्णलता है, श्रीकृष्ण तमाल वृक्ष हैं, और सखियाँ सुवर्ण कदली हैं ॥७३॥

तब बिशाखा के इंगित से सखियाँ हिंडोले से नीचे उतर पड़ीं और ललिता आदि सखियों ने श्रीराधा-कृष्ण को हिंडोले में घुमा कर बड़े आनन्द से झुलाने लगी ॥७४॥

उन चक्करदार झोंकों से श्रीराधा तो व्याकुल होकर श्रीकृष्ण से कसकर लिपट गयीं और सखियाँ मन्द मन्द मुस्कराने लगीं ।

आभीरीभिः सच्छम्पाभिः सम्वीताङ्गः कृष्णाब्दः
कौन्दी-वृन्दादीनां चक्षुर्वापीहाली-तृष्णाहृत् ।
लीला-कीलालाली-धारापातैः सिञ्चन् विश्वं श्री-
वृन्दारण्येऽसौ जीयादेवं दोला-लीलाखेलः ॥७६॥
अथ ताभिः समं कृष्णो माध्वीकपान-कुट्टिमे ।
निविष्टः शीतलच्छाये विश्रामसुखमन्वभूत् ॥७७॥
गोपीनामरविन्द-सुन्दर-दृशां श्रीकृष्ण-पार्श्वद्वया-
दारभ्याग्रत एव मण्डलतया तत्रोपवेशस्थितिम् ।
लब्धानां पुरतः स राजति धृतालङ्कार-पीताम्बरो
रत्नाली-खचितो यथा हरिमणिः सौवर्ण-हारान्तरे ॥७८॥

---

तब श्रीकृष्ण ने प्रिया को व्याकुल देख हँसते हँसते उनको पकड़ कर हिंडोले से नीचे उतारा ॥७५॥

इस प्रकार हिन्डोल-लीला परायण श्रीकृष्ण रूपी जलधर गोपांगना रूपा सौदामिनी गण द्वारा वेष्टित होकर, कुन्दलता, वृन्दा आदि के नेत्र रूपी चातकी समूह की तृष्णा को हरते हुये, लीला रूप सलिल की वर्षाधारा से विश्व को सींचते हुये वृन्दा-बन में जय युक्त हो रहे हैं ॥७६॥

तब श्रीकृष्ण उन रमणियों सहित सुशीतल छायायुक्त मधुपान वेदिका में प्रवेश कर बिश्राम सुख का अनुभव करने लगे ॥७७॥

सुवर्ण-हार में बिविध रत्नावलीजटित-इन्द्रनीलमणि की जैसी शोभा होती है, वैसी ही शोभा उस समय श्रीकृष्ण की हो रही थी जो बाम और दक्षिण दोनों पार्श्व से अग्र-भाग पर्यन्त मण्डलाकार में अवस्थित कमल-नयन ब्रजसुन्दरियों के मध्य में नानालंकार व पीताम्बर धारण कर बिराजमान थे ॥७८

अथालयः स्वके करे सरोज-मञ्चयाद्वरे
निधाय पञ्चचामरं चिता भरैर्मुदामरम् ।
निविष्टमत्र कान्तया नितान्त-केलितान्तया
न्यवीजयन्निजं प्रियं रुचा जितस्मरश्रियम् ॥७९॥
गतश्रमेऽस्मिन् सगणे सखीभिः पदाब्ज-सम्वाहन-वीजनाद्यैः ।
माध्वीक-पूर्णं चषकं पुरस्ता-त्तयोः समानीय दधार वृन्दा ॥८०॥
विकसितमनु नृत्यत्खञ्जनाभ्यां विराजत्
कनक-कमलमेकं नीलराजीवमन्यत् ।
वरतनु-बकशत्र्वोः प्रादुरासी-
दधिचषकमकस्मात् पद्मयुग्मं विचित्रम् ॥८१॥
नयनमधुपयुग्मं राधिकायाः प्रलुब्धं
झटिति पतितमासीन्नीलपद्मेऽथ तस्मात् ।

---

तब सखियाँ कमलकुल श्रेष्ठ अपने अपने करों में शीघ्र बड़े बड़े चँवर ले ले कर वेदिका पर बिहार से श्रान्त प्रियतमा श्रीराधा सहित विराजमान निज कान्ति से मदनजयी श्रीकृष्ण को आनन्द पूर्वक बीजना करने लगीं ॥७९॥

सखियों ने पादसंबाहन व चामरव्यजन द्वारा श्रीकृष्ण और उनके परिकर का श्रम दूर किया। तब वृन्दादेवी ने मधुपूर्ण पान पात्र लाकर श्रीराधा-कृष्ण के सन्मुख रख दिया ॥८०॥

तब वरतनु श्रीराधा व श्रीकृष्ण दोनों ने उस पानपात्र प्रति एक ही समय में दृष्टि-पात किया, तो दोनों के मुख उसमें प्रतिबिम्बित हुये ऐसा बोध हुआ कि उसमें दो कमल उदय हो आये हैं-एक नील-कमल (कृष्णमुख) और दूसरा कनककमल (राधामुख) जिन पर दो दो खंजन (नयन) नृत्य कर रहे हैं ॥८१॥

द्युतिभर-मधुपूर्णान्नालमुत्थातुमासीत्
कनक-कमलमध्ये तद्वदेवाच्युतस्य ॥८२॥
सौन्दर्य्यं मधुतां मुखं चषकतां माध्वीकमादर्शतां
नेत्रद्वन्द्वमवाप सन्मधुपतां सर्व्वेन्द्रियं नेत्रताम्।
अन्याङ्गं जड़तां तयोः सपुलकं चित्तं स्मरोन्मत्ततां
सामग्र्येव तदेतरेत्थमभवत् पानक्रियाप्तोन्नतिम् ॥८३॥
कौन्दयब्रवीत् पेयमिदं स्वचक्षुषा पीतं युवाभ्यां मधु पङ्कजाननौ।
नेत्रोत्पलास्याब्ज-सुवासितं द्वयो-रसज्ञया पेयमिदं निपीयताम् ॥८४

---

उस समय श्रीराधा के नयन रूप भ्रमर युगल झट नीलपद्म पर जा पड़े। वह कृष्णवदन का प्रतिबिम्ब नीलपद्म अपने अतिशय कान्ति रूप मधु से परिपूर्ण था—उस पर पड़ श्रीराधा के नेत्र-भ्रमर गड़ गये, वहाँ से निकलने में असमर्थ हो गये। उसी प्रकार श्रीराधा—मुख के प्रतिबिम्ब रूप स्वर्ण—कमल पर श्रीकृष्ण के नेत्र-भ्रमर पड़ कर निकलने में असमर्थ हो गये ॥८२॥

तब तो श्रीराधा कृष्ण का सौन्दर्य्य ही पेय मधु बन गया, मुख ही चसक (प्याला) बन गया, मधु ही दर्पण बन गया, नयन युगल ही सद् भ्रमर बन गये, सब इन्द्रियाँ ही नेत्र बन गयीं, और अन्य अंग पुलक सहित जड़ता को और चित्त ही मदनोन्माद को प्राप्त हो गये, इस प्रकार मधुपान करने से जो उन्नति अर्थात् भ्रमादिक दशाएँ होती हैं मधुपान सामग्री ही वह पृथक् पृथक् हो गयीं ॥८३॥

तब कुन्दलता ने श्रीराधा-कृष्ण से कहा—हे कमलनयनी राधे! हे कमलनयन कृष्ण! यह मधु पहले तुम दोनों ने अपने अपने नेत्रों द्वारा पान किया था, अब नयन—कमल व वदन—कमल से सुवासित इस मधु को तुम दोनों रसना द्वारा पान करो

आदाय निन्ये चषकं बलानुजः पिबेति कान्ता-वदनाब्जसन्निधिम् ।
तिर्य्यङ्मुखी तद्दयितापि लज्जया करेण जग्राह निजेन तत्करात् ॥
आवृत्य वक्त्रं वसनाञ्चलेन सा माध्वीकमाघ्राय सकृत् सुधामुखी ।
निजाधर-स्पर्श-सुवासितीकृतं समर्पयामास करे प्रियस्य सा ॥८६॥
प्रियाटवी-वृक्षलतोद्भवं प्रियं प्रियाधर-स्पर्श-सुसौरभं मधु ।
निज-प्रियाली-परिहास-वासितं प्रियार्पितं सस्पृहमापपौ प्रियः ॥८७
दयिता गुण-मेदुरेण तद्दयिता-पाणितलेऽमुनार्पितम् ।
दयिताधरवासितं पपौ दयिताप्यंशुक-संवृताननः ॥८८॥

---

तब रामानुज श्रीकृष्ण ने पान-पात्र ग्रहण कर "हे प्रिये पान करो" कहते हुए प्रियतमा के मुख-कमल के समीप ले गये तो श्रीराधा ने लज्जा से नतमुखी हो कर पान-पात्र श्रीकृष्ण के हस्त से अपने हस्त में ले लिया ॥८५॥

फिर सुधावदनी श्रीराधा ने अंचल से अपना मुँह ढक मधु को एक बार घ्राण (सूँघ) करके उसे अपने अधर स्पर्श से सुवासित करके उसे प्रियतम के हस्त में अर्पण किया ॥८६॥

इस मधु को श्रीकृष्ण ने अति स्पृहा-(अत्यन्तचाव) के साथ पान किया। अति स्पृहा के चार कारण हैं:-(१) यह "प्रियाटवी" अर्थात् प्रिय वृन्दावन के वृक्षलताओं से उत्पन्न होने से प्रिय है। (२) प्रिया के अधर-स्पर्श से सुवासित है (३) अपने प्रियागण के परिहास से भी सुरभित है तथा (४) स्वयं प्रियतमा श्रीराधा के कर कमलों द्वारा अर्पित है॥८७॥

तब श्रीकृष्ण ने प्रियतमा श्रीराधा के गुण से अतिशय स्निग्ध (अति कोमल) होकर अपने अधर -कमल से सुवासित मधु को प्रियतमा के कर-कमल में अर्पण किया, श्रीराधा ने भी

तद्वक्त्रशेषामृत-मिश्रितासवैः पूर्णानि कृत्वा चषकाणि सादरम् ।
वृन्दा सवृन्दा सह कुन्दवल्लिका न्यधात् सखीनां पुरतः प्रमोदतः ॥
ताभिः सखीनां चषकेष्वथाग्रतो न्यस्तेषु कृष्णः स्वविचित्र-विद्यया ।
पार्श्वे ऽखिलानां युगपत्स दक्षिणे नालोकि केनापि परिस्फुरन्नपि ॥९०
सख्यस्ताः केवलं स्वस्य स्वस्यैव पार्श्वमागतम् ।
पाययन्तं पिबन्तञ्च मधु तं ददृशुः प्रियम ॥९१॥
कादम्बरीमद-विघूर्णित-शोणकोण-
प्रोत्फुल्ललोचन-सरोज-बिराजितानि ।

---

वस्त्र से वदन ढककर प्रियतम के अधर सुवासित मधु का पान किया ॥८८॥

फिर वृन्दादेवी ने श्रीराधा कृष्ण के पानावशिष्ट मधु से पान पात्रों को भर भर कुन्दलता के साथ उन्हें सखियों के आगे सादर समर्पण किया ॥८९॥

इस प्रकार वृन्दा, कुन्दलता आदि समस्त सखियों के द्वारा ललिता, बिशाखा-आदि सखियों के आगे मधु-पान-पात्र अर्पण किये जाने पर श्रीकृष्ण अपनी बिचित्र बिद्या द्वारा उन सब सखियों के दक्षिण-भाग में प्रकाशित हो जाने पर भी किसी को उनके दर्शन न हुए ॥९०॥

किन्तु सुधापान कारिणी उन सब सखियों को केवल इतना ही दर्शन होता था कि वे अपने अपने श्रीकृष्ण को मधुपान करा रही हैं और आप भी कर रही हैं ॥९१॥

अब तो श्रीकृष्ण की मधु-पान करने की तृष्णा को परितृप्त करने के लिये सखियों के वे मुख ही पान-पात्र बन गये। कैसे थे वे मुख-मंडल ? उनमें कादम्बरी (कदम्ब-पुष्प का रस पान के मद से मतवाले घुम घुमारे, अरुण कोने वाले प्रफुल्ल

आमोद-मोदित-निमन्त्रित-षट्पदानि
हासेन्दुकान्ति-बलिताधरपल्लवानि ॥६२॥
कृष्णस्य नेत्ररसनास्वदनीय-भूरि-
सौन्दर्य्य-सल्लवणिमासव-पूरितानि ।
तस्यातिपानमनु तृट् परिपूरणाय
वक्त्राण्ययुश्चषकतां सुदृशाममूषाम् ॥६३॥
खरयुजां सरकाय मृगीदृशां सरकपान-मदोन्मद-चेतसः ।
सरकतामयिते मुखपङ्कजे सरकतां समगादधरो हरेः ॥६४॥
माध्वीकभेदान् विविधान् सवृन्दा वृन्दाथ वृन्दावन-नाथयोः सा ।
नानाविदंशैः सहितान् पुरस्तात् समर्पयामास तथा सखीनाम् । ६५
तांस्तान् प्रपिबतां तेषां पानपायनमाधुरी ।
नेत्रोन्मादाय वृन्दादेश्चिराय मदिरायते ॥६६॥

---

लोचन समूह थे, उनके सौरभ से अलिकुल आहूत व आमोदित हो रहे थे, उन पर हास्य-चन्द्रिका युक्त अधर पल्लव सुशोभित थे, तथा उनमें श्रीकृष्ण के नयन-युगल व जिह्वा द्वारा आस्वादनीय प्रचुर लावण्य व आसव परिपूर्ण था ॥६२-६३

इस प्रकार मधु के मद से मतवाले चित्तवाले श्रीकृष्ण के मधुपान के लिये काम-मदवाली मृगलोचनी ब्रजकामिनियों के वदन कमल ही पान-पात्र बन जाने पर श्रीकृष्ण के अधर भी उन मृगनयनियों के लिये पान-पात्र बन गया अर्थात् श्रीकृष्ण और सखियाँ परस्पर का अधरामृत पान करने लगे ॥६४॥

तब वृन्दादेवी ने अपनी सेविकागण सहित वृन्दाबन-नाथ श्रीराधा-कृष्ण व सखियों के सन्मुख नाना विध विदंश (मधु-पान के बाद की भोज्य वस्तु) के साथ नानाविध मधुरस भी समर्पण किये ॥६५॥

अविरत–मधुपाने स्वादु-कान्ताधरोष्ठं
सततमधरपाने मध्वभूत्ताद्विदंशः ।
मदन–मधुमदाभ्यां तृष्णया पानभाजां
मिथ इह मिथुनानां निश्चयो नास पाने ॥९७॥
माधवागत्यनङ्गोत्थैर्मदैर्माधव-पानजैः ।
माधव-स्पर्शजैश्चासन् व्याकुलास्ताः वराङ्गनाः ॥९८॥
स्खलित–-बसन–-भूषाङ्गाद्यसम्भालनं यत्
स्फुटहसितमकाण्डेऽश्रनपूर्व्वोत्तरञ्च ।

---

उस बिदंश और मधुरस को श्रीकृष्ण और सखीगण परस्पर को पान कराने और स्वयं करने लगे। उस समय जो एक 'पानपायन' माधुरी (पीते-पिलाते समय की माधुरी) का उदय हुआ वह वृन्दा आदि परिचारिकागण के नेत्रों को चिरकाल तक उन्मत्त करने के लिये एक अपूर्व मदिरा तुल्य था ॥९६॥

तब एक बिभ्राट-हुआ! जो निरन्तर मधुपान करने के कारण कान्ता के सुस्वादु अधरोष्ठ तो विदंश (मधुपानानन्तर भोज्य वस्तु) बन गये-जिनका निरन्तर पान करने से मदन मद व मधुमद से अधिक मतवाले बनते गये तो मद-पान की तृष्णा बढ़ती गयी और परस्पर मद-पान भी बढ़ता गया यहाँ तक कि अधर-पान और मधु-पान का निश्चय भी न हो सका अर्थात् क्या मधु है और क्या अधर (बिदंश) है, कौन कान्त है और कौन कान्ता है—इन सब का ज्ञान लोप हो गया! ॥९७॥

उस समय एक तो बसन्त के समागम से मदनजनित मद, दूसरा मधु-पान का मद और तीसरा कृष्ण स्पर्श-जनित मद, इन त्रिविध मदों से बरांगनाएँ अत्यन्त व्याकुल हो पड़ीं। ९८॥

उनके अंग-प्रत्यंगों से बसन-भूषण खिसल रहे हैं, फिर भी

प्रलपितमनिदानं चोत्थितं बल्लवीनां
प्रथयति मदमन्तर्वारुणी-पानजं तत् ॥६६॥
निधुवनमनु पूर्वं यत् प्रियेण प्रियाणां-
स्खलनमयनवासःकेश-वाचां विधेयम् ।
मधुमद इह कुर्व्वन् तद्यथूलाममुषा-
मकुरुत मुरशत्रोः प्रीति-साहाय्यमस्य ॥१००॥
उक्तौ लोहलता गतौ स्खलितता केशांशुके स्रस्तता
नेत्रान्तेऽरुणता मुखे सुरभिता नेत्रे तथोद्घूर्णता ।
नर्म्मोक्तौ स्फुटता दृशि भ्रमितता तत्राक्लौ धृष्टता
या यासीत् सुदृशां तदा त्रिसरकोत्पन्नाधिनोत् सा प्रियम् ॥१०१

---

सुधि नहीं कि देखें, सम्हालें; हँसी का कारण न होने पर भी असमय पर उच्च हास्य कर रही हैं; बिना प्रश्न के ही उत्तर दे रही हैं, अकारण ही प्रलाप कथन कर रही हैं ऐसे ऐसे वारुणी-पान के लक्षण व्रजांगनाओं में प्रकट हो रहे हैं ॥६६॥

निधुवन में रहस्य क्रीड़ा में प्रिय के साथ पहले प्रियतमा का गमन, (गति,)बसन, केश और वाणी का स्खलनः-मधुपान-कारण पूर्वोक्त कार्यों के घटने से इसने श्रीकृष्ण की प्रीति में सहायता ही किया था। (बाधा नहीं दी थी) ॥१००॥

और भी वर्णन करते हैं:— वाणी का गद्गद् हो जाना, गति में स्खलन, केश व बसन की अस्त-व्यस्तता, नेत्रकोणों में लालिमा, वदन से सुबास निकलना, नेत्रों का घूमना, परिहास में स्पष्टता, दृष्टि में भ्रम का भाव एवं तत्रात् लीला, चेष्टा आदि कार्य्यों में धृष्टता—ऐसी ऐसी चेष्टाएँ जो वृक्षज, गुड़ज व पुष्पज इन तीन प्रकार के मधुपान से सुलोचना व्रजांगनाओं में उत्पन्न हुई थी, उन्होंने श्रीकृष्ण के मन को प्रसन्न ही किया था ॥१०१

कृष्णे व्रजाम्बुज-दृशां हृदि गाढ़रागो
नारी स्वभावज-ह्रिया विनिगूहितो यः।
आडम्बरं मधुमदस्य न सोढुमीशो
नेत्रोत्पलेषु बहिरेत्य चकार वासम् ॥१०२॥
नवेन मधुपानेन काचिन्नवकिशोरिका।
मदोद्रेकाद् भ्रान्तनेत्रा प्रललापातिविह्वला ॥१०३॥
ल ल ल ललिते प प प पश्य राधाच्युतौ
स स स सह वो म म म मण्डलैर्भ्राम्यतः।
वि वि वि पि विपिनं म म म मही च ताभ्यां समं
ग ग ग गगनं ल ल ल लम्बते हा कथम् ॥१०४॥
विसृत्वरामोदविकृष्ट--भृङ्ग-विकस्वराम्भोज-विनिन्दिवक्त्रः।
मध्वासवेष्टाधर-सीधुपान--प्रोद्भूद्ध-कन्दर्प-मदातिलोलः ॥१०५॥

---

व्रजकमल-नयनियों का श्रीकृष्ण के प्रति जो गाढ़ अनुराग है वह स्त्रीस्वभावजन्य लज्जा के कारण हृदय में ही गूढ़-भाव से वर्तमान रहता है, किन्तु वही लज्जा मधुमद के आडम्बर को सहन करने में असमर्थ हो हृदय से बाहर निकल उन नयन कमलों में बास करने लगी ॥१०२॥

कोई एक नवीना किशोरी नया नया मधुपान करने के कारण नेत्रों को घुमाती, मद में माती, अति बिह्वल हो प्रलाप कथन करने लगी ॥१०३॥

प्रलाप, यथा:— ल ल ल ललिते ! दे-दे-दे देखो श्रीराधा कृष्ण तुम लोगों के म-म-म मण्डल के साथ चारों ओर भ्रमण कर रहे हैं और बि-बि-बि विपिन और म-म-म मही (पृथिवी) भी श्रीराधाकृष्ण के साथ आकाश में गमन कर रहे हैं। हाय ! ये सब कैसे हो गया ? ॥१०४॥

अन्तर्विलोलालि-समीरवेल्लत् प्रोत्फुल्ल-रक्तोत्पल-जैत्र-नेत्रः ।
ललास लोलल्ललनासुघृष्णक् कृष्णः सतृष्णालिरिवाब्जिनीषु ॥१०६
मदेरिताभ्यामथ तौ सखीभ्यां रिरंसयान्तश्च सुषुप्सया च ।
निषेवितावासतुरालि-पालिः सुषुप्सया केवलयाञ्चितासीत् ॥१०७
तयोर्मदोत्पन्न-निगूढ़-लीला-स्पहाविदः प्रेरणयाथ कौन्द्याः ।
कान्तावतंसार्थमशोक-पुष्प-गुच्छाय गच्छत्यरबिन्दनेत्रे ॥१०८॥
कान्तापि घूर्णा-परिपूर्णिताक्षा सेवापरालीतति-सेव्यमाना ।
निकुञ्ज-कुञ्जाभिध-कुञ्जराजे सुष्वाप पुष्पावलितल्पभाजि ॥१०९॥

---

तब पद्मिनी समूह में तृषातुर भ्रमर की भाँति गोपांगनाओ के साथ अति घृष्ट श्रीकृष्ण बिलास करने लगे। अहा! कैसा है श्रीकृष्ण की शोभामाधुरी कि अपने सौरभ से दूरगामी अलि-कुल को आकृष्ट करने वाले प्रफुल्ल-पंकज से भी अधिक शोभायुक्त है, उनका मुखकमल। बांछित मध्वासव अर्थात् अधरामृत के पान से कन्दर्प के अतिशय जागृत हो जाने से व अत्यन्त चंचल हैं, और मध्य में भ्रमर बैठे हुये और वायु से हिलते हुये प्रफुल्ल रक्तकमल के बिजयकारी है उनके नेत्र कमल ॥१०५-१०६॥

अब श्रीराधाकृष्ण मदमाती रमणेच्छा और शयनेच्छा रूप वाली दो सखियों के द्वारा सेवित होने लगे अर्थात् लीला बिलास करके निद्रित हो गये। अन्यान्य सखियाँ केवल शयनेच्छा सखी के बश में हो निद्रा से बिबश हो सो गयीं ॥१०७॥

तब श्रीराधाकृष्ण के मदपान से उत्पन्न होने वाली रहस्य-लीला-विषयक स्पृहा को भली भाँति जानने वाली वृन्दलत की प्रेरणा से कमल-नयन श्रीकृष्ण श्रीराधा के कर्णभूषण के लिये अशोक पुष्प का गुच्छ ढूँढने के लिये चले गये औ

गन्धोत्तमाः परिमलाधिक-वासितोद्य-
ज्जृम्भोद्गमास्य-कमला गलदम्बराङ्क्यः ।
घूर्णायमान-नयनाः शयनाभिलाषाः
सख्योऽप्ययुस्तत इतः स्खलिताङ्घ्रिपाताः ॥११०॥
तल्पोपकल्पन-गृहीत-दलालिकञ्ज-
किञ्जल्क-धूलि-परिपिञ्जरितान्तरेषु ।
सम्वर्चिताब्जदल-पल्लव-पुष्पतल्प-
पुञ्जेषु चञ्चदलि-गुञ्जित-मञ्जुलेषु ॥१११॥
गुञ्जावली-कुसुम-मञ्जरि-चित्रितेषु
ताम्बूल-गन्धजलभाजन-राजितेषु
कुञ्जेषु कञ्जवदना मदखञ्जनाक्ष्यः
सर्वाः पृथक् पृथगिताः सुषुपुर्वयस्याः ॥११२॥ युग्मकम्

---

तब श्रीराधा भी मद-मतवाली नयन वाली सेवापरा सखियों द्वारा सेवित होती हुईं नाना कुसुम युत ललिता-कुञ्ज नामक कुञ्जराज में गमन कर शयन करने लगीं ॥१०८-१०९॥

तदनन्तर अन्यान्य सखीगण भी कि जिनके अंग के अत्युत्तम मनोहर परिमल से उनकी जम्हाइयाँ वासित हो हो कर उनके मुखको और भी अधिक सुवासित कर रहीं थीं और निद्रा से भरे हुये जिनके नेत्र घूम रहे थे, वे भी इधर से उधर चरण बिन्यास करती हुईं स्खलित गति से शयन की अभिलाषा से अन्यान्य कुञ्जों में गमन करने लगीं ॥११०॥

वे सब कुञ्ज कैसी हैं कि जिन के मध्य-भाग शय्या-रचन के लिये लाये गये सुकोमल पल्लवों कमल-केसर व उनकी रेणु से व्याप्त हो रहे हैं, नवीन नवीन कमल एवं अन्य फूल जहाँ बिछे पड़े हैं, भ्रमरों का जहाँ मनोहर गुञ्जार हो रहा है, गुञ्जा-

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽगाद्गणितश्चतुर्दशतया मध्याह्नलीलामनु ।।११३।। ( १४ )

## (÷०):: अथ पञ्चदशः सर्गः ::(०÷)

कङ्केल्लि-पल्लवक-तल्लज-कर्णपूरः
कङ्केल्लिवल्लि-नवक-स्तवकाञ्चिपाणिः ।
तत्रागतोऽथ स हरिः प्रविवेश तूर्णं
वृन्दा-दृशोदित-निकुञ्ज-सरोजमुत्कः ।।१।।

---

बली और पुष्पमञ्जरियों द्वारा जो चित्रित है एवं ताम्बूल व सुगन्धित जलपूर्ण पात्र जहाँ सजाये हुये रखे हैं, ऐसे सुशोभित कुञ्ज मध्य ऐसी सुरम्य शय्याओं में कमलमुखी खञ्जनाक्षी सखीगण शयन करने लगीं ।।१११-११२।।

यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृत महाकाव्य के मध्याह्न लीला का चतुर्दश सर्ग सम्पूर्ण हुआ । यह श्रीगोविन्दलीलामृत श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूप-गोस्वामी की सेवा फल है, श्रीरघुनाथगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीमज्जीवगोस्वामी के संग से उदय हुआ है तथा श्रीरघुनाथ-भट्टगोस्वामी के बरदान से प्रादुर्भूत हुआ ।।११३।।

राधा–सुरधुनीं प्राप्ते कृष्ण–मत्तमतङ्गजे ।
उड्डीयापससाराली – मराली–पालिरञ्जसा ॥२॥
पिबन्नसौ लोचन-पुष्करेण लावण्य-रूपामृतमम्बुजाक्ष्याः ।
व्यदालयत् कञ्चुक-शैवलं श्री- करेण नीवी-नलिनीञ्च लोलः ॥३॥
कान्तापि तन्द्रा-विनिमीलिताक्षी स्वप्ने ददर्श प्रियमन्तिकाप्तम् ।
नीवी-कुचाकर्षण-यत्नवन्तं तं वारयन्ती प्रललाप वाम्यात् ॥४॥
म म म-मा पि पि पि स्पृश मां हरे
कि कि कि किं नि विधातुमिहेच्छसि ।

---

अनन्तर वे श्रीकृष्ण अशोक तरु के सुन्दर पल्लव रूप कर्ण-भूषण व अशोक वृक्ष का नवीन कुसुम – गुच्छ हस्त में धारण किये हुए उत्सुक चित्त से वहाँ आये तो वृन्दादेवी के इंगित से पूर्वोक्त सरोज नामक निकुञ्ज में पधारे ॥१॥

श्रीराधारूपा सुरधुनी (गंगा) में श्रीकृष्ण रूप मतंगज (हस्ती) के आ मिलने पर सखी रूपा हँस श्रेणी सब उड़ कर चली गयीं अर्थात् श्रीकृष्ण का आगमन दर्शन कर सखियाँ अन्यत्र चली गयीं ॥२॥

तब जैसे प्यासा हाथी नदी में उतर कर पहले चंचल हो सूँड़ से शैवाल (काई) और कमलों को हटा देता है, वैसे ही श्रीकृष्ण ने नयन कमलों से श्रीराधा का लावण्यामृत पान कर चंचल होकर अपने श्रीहस्त द्वारा उनकी कंचुकी रूपी शैवाल और नीवी रूपा नलिनी को दूर कर दिया ॥३॥

इधर कान्ता श्रीराधा ने भी तन्द्रा से मुँदे नयनों से स्वप्न में कान्त को समीप आते देखा और उनको नीवी-मोचन कुचाकर्षण में यत्न करते जान निवारण करती हुई प्रलाप उच्चारण करने लगीं ॥४॥

श शयितुं द द देहि मम क्षणं
क कलिताक्षि-युगास्मि घु-घूर्णना ॥५॥
स्मित-रुदित-विमिश्रं गद्गदास्पष्टवर्णं
रमणमनु तदेति व्याहरन्ती कराभ्याम् ।
प्रियकरमतिलोलं वारयन्ती प्रबुद्धा
प्रियमथ तमपश्यत् स्वञ्च तादृक्क्रियं सा ॥६॥
मीलितोन्मीलिताक्षी सा स्मर-माध्वीक-मादिता ।
स्वप्न-जागरयोरासीत् समवाक्चेष्टितादिका ॥७॥
विषमेषुरणाद्वाम्य-ह्रीभ्यां तां विमुखीमपि ।
बलादाक्रम्य निर्जेतुमारब्धेऽत्युन्मदेऽच्युते ॥८॥

---

प्रलापः— म-म-म मुझे मत स्पर्श करो, कृष्ण ! तुम क-क-क-क्या करया चाहते हो, सो-सो-सोने दो, अ-अ-अभी तो नींद से आँखें लगी हैं ॥५॥

श्रीराधा निद्रावस्था में ही मृदु हास्य, रोदन, गद्गद व अस्फुट शब्दों में दोनों हस्त हिलाती हुई निषेध करने लगी और प्रियतम के अति चंचल हस्त को अपने हस्त द्वारा हटाने लगीं। इतने में वे जाग पड़ी, तथापि प्रियतम को वैसी चेष्टा करते हुये और अपने को भी वैसी क्रियाएँ करती देखने लगीं ॥६॥

निद्राभंग के उपरान्त श्रीराधा के दोनों नेत्र तो खुल गये परन्तु मदन व मधुपान की उन्मत्तता के कारण स्वप्न व जागरण— दोनों अवस्थाओं में ही, उनके बचन व चेष्टाएँ समान ही रही अर्थात् स्वप्न में जैसे हस्त से निवारण किया था वैसे ही अब भी करने लगीं ॥७॥

श्रीराधा के कन्दर्प-युद्ध में प्रतिकूल व लज्जा वशात: विमुखी होने पर श्रीकृष्ण ने अतिशय उन्मत्त हो बलपूर्वक उनको पराजय

काञ्ची वीक्ष्याक्रमान्मूकां भयादिव नभोगतम् ।
मञ्जीर-युगलं तस्याः फुत्करोतीव निस्वनत् ॥९॥ युग्मकम्
ग्रीवा-ग्रहणतो व्यग्रः कण्ठः कुण्ठोऽपि सुभ्रुवः ।
विचित्रैः कूजितैश्चक्रे सकाकु प्रार्थनं हरौ ॥१०॥
पृथुल-भुजगदाभ्यां वाम्य-दुर्गं बिभिद्या-
धर-नख-दशनोरः-पाणि-दोराननाद्यैः ।
द्रुतमथ स निजैस्तैः प्रेष्ठ-सामन्त-बीरैः
सुतनु-तनु-पुरीं तां लुण्ठयामास कृष्णः ॥११॥
निखात-गूढ़-रत्नज्ञैरुत्खातात् खनकैर्नखैः ।
तारुण्य-रत्नं जगृहे पाणिभ्यां स्तन-कुम्भतः ॥१२॥

---

करने के लिये आक्रमण किया । उस आक्रमण से कौंधनी को मूक देखकर श्रीराधा के नूपुर भयभीत हो आकाश में चढ़ कर चीत्कार करने लगे ॥८–९॥

तब श्रीकृष्ण के सुभ्रू श्रीराधा के ग्रीवा धारण करने पर उनका कण्ठ कुण्ठित होने पर भी आश्चर्य शब्द करता हुआ बिनयपूर्वक श्रीकृष्ण के समीप प्रार्थना करने लगा ॥१०॥

अब निगूढ़ युगल–बिहार को बीररस के रूपक में बर्णन करते हैं, यथाः— तब श्रीकृष्ण अधर, नख, दशन, बक्षःस्थल, हस्त-युगल, भुज-युगल व मुखादि निज प्रियतम सामन्त बीरों की सहायता से तथा अपने बिशाल बाहुरूप दो गदाओं के द्वारा बाम्य रूप गढ़ अर्थात् पुरीरक्षक प्राचीर का भेदन करके परम-सुन्दरी श्रीराधा की देह रूपा पुरी को लूटने लगे ॥११॥

किस अंग से क्या लूटा, सो कहते हैं:— भूमि खोदकर उसमें छिपे हुये गूढ़ रत्नों के जानकार खननकार नखों के द्वार

अधराद्दशनैः खाताद्वदनेनाधरामृतम् ।
बाहुभ्यां पीडितादङ्गात् स्पर्शरत्नं तु वक्षसा ॥१३॥
कराभ्यां कुन्तल-ग्राहं तत्तत्स्थानेषु गूहितम् ।
चुम्बकाख्यं वरं रत्नमधरेनाधवैरिणः ॥१४॥ सन्दानितकम्
त्रपादंशे च्छिन्नेऽमृतमुखधने तैर्विमुषिते
चमूनाथं धाष्ट्र्यं च नख-दशन-सामन्त-सहितम् ।
पुरःकृत्वा व्यक्तीकृत-निजमहापौरुषमसौ
महामारारम्भं व्यदधदथ कान्ताप्यसहना ॥१५॥

---

श्रीकृष्ण के हस्त-युगल ने श्रीराधा के कुचकुम्भ में से यौवनरत्न का अपहरण किया ॥१२॥

श्रीकृष्ण के मुख ने दशनावलि द्वारा खनन करके श्रीराधा के अधर से अधरामृत एवं श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल ने दोनों बाहुओं द्वारा श्रीराधाङ्ग को प्रपीड़ित करके स्पर्शरत्न हरण कर लिया ॥१३॥

श्रीकृष्ण के कर युगल ने श्रीराधा के केश कलाप को ग्रहण किया तो श्रीकृष्ण के अधर ने श्रीराधा के अधरोष्ठ, कपोल-युगल व ललाट-इन पाँच स्थानों में छिपाये हुये चुम्बन नामक श्रेष्ठरत्न का हरण कर लिया ॥१४॥

अब श्रीराधा के लज्जा रूप कवच के छिन्नभिन्न हो जाने से और श्रीकृष्ण के अधरादि द्वारा अपना मुख धन रूप अमृत बलपूर्वक हरन हो जाने से कान्ता श्रीराधा भी अधिक सहने में समर्था न हो अपने नख व दशन रूप सब सामन्तों के साथ धृष्टता नामक सेनपति को आगे कर अग्रसर हुईं और निज पराक्रम प्रकट करती हुई महान् कन्दर्प-युद्ध आरम्भ कर दिया ॥१५॥

आक्रम्य कान्तं निज-पौरुषं तत् प्रदर्शयन्त्यां हरि-वल्लभायाम् ।
काञ्ची-ध्वनिर्दुन्दुभिशब्द उच्चैः शीत्कार आसीद्वर-सिंहनादः ॥१६
तं कान्तयाक्रान्तमवेक्ष्य चञ्चलं कान्तावतंसोद्भट-नर्त्तकद्वयम् ।
मत्वाथ केनाप्यजितं जितं मुदा मुक्तावली लासिकया ननर्त्त तत् ॥
हृदधरगतरत्नं यद्यदाहृत्य तस्या
निभृतमघभिदा स्वे गोपितं रत्नवृन्दे ।
रदनख-खनकैस्तत्सर्व्वमस्या गृहीतं
हृतमिह परवित्तं स्वार्थनाशीति सत्यम् ॥१८॥
मुख-कमल-रथस्थौ सुभ्रुवौ नेत्रवीरौ
वदन-नलिन-कोषात् श्रीहरेर्भो-मरन्दम् ।

---

तब कृष्ण कान्ता श्रीराधा के कान्त पर आक्रमण कर अपना पौरुष प्रदर्शन करने पर कांचीध्वनि के रूप में उनकी दुन्दुभि बजने लगी और उच्च शीत्कार के रूप में सिंहनाद होने लगा ॥१६
कान्ता द्वारा चंचल कान्त को आक्रान्त होते दर्शन कर और अजित को पराजित मानकर अति मुदित हो कान्ता के कर्ण-कुण्डल रूप दो उद्भट नर्तक ने श्रीराधा की मुक्तावली रूपा नर्तकी के साथ नृत्य आरम्भ कर दिया ॥१७॥

अघहन्ता श्रीकृष्ण ने श्रीराधा के हृदय व अधर पर जो जो भी रत्न थे उन्हें हरण कर अपने रत्नों के मध्य में रख लिया था। अब उन्हीं सब रत्नों को श्रीकृष्ण के रत्नों के साथ श्रीराधा के दशन व नख रूपी खनकों ने पुनः ग्रहण कर लिया। यह लोक-रीति सत्य ही है कि हरने किया हुआ पराया धन अपनी कमाई को भी ले बैठता है ॥१८॥

ऐसी धृष्टता प्रकाश करने पर भी श्रीराधा में लज्जा, सौकुमार्यादि स्वाभाविक गुणों का प्रकाश हुआ था-सो कहते हैं:—श्री-

नयन-मधुकराभ्यां रक्षिताल्लुण्ठतो यौ
द्रुतमपसृतवन्तौ तौ तयोः सम्मुखस्थे ॥१६॥
श्रीकृष्ण-नेत्रद्वय-वीरवर्ये-प्रदर्शनादेव भयादिवास्याः ।
अग्रेसरे नेत्रभटेऽपयाते सर्व्वाङ्ग-सैन्येऽपि बभूव भङ्गः ॥२०॥
तदास्याः श्रीभालं श्रमसलिल-लोलालकवृतं
नितम्बो निष्पन्दः स्तनयुगलमुच्छ्वास-चपलम् ।
भुजद्वन्द्वं मन्दं नयन-युगमामीलितमभूत्
पराभूतेतीयं समिति दयितानन्दमतनोत् ॥२१॥

---

राधा के मुख कमल रूप रथ पर चढ़े हुये थे सुन्दर भृकुटी वाले नयन रूपी दो बीर पुरुष। वे श्रीकृष्णके मुखकमल रूप सुरक्षित भंडार में से शोभा रूपी मकरन्द (पुष्परस) रत्न को लूटने में लगे हुए थे कि इतने ही में श्रीकृष्ण के नेत्रभृंग रूपी दो जन रक्षक आ कर ज्यों ही सामने हुए कि राधा के नयन रूपी दो बीर पुरुष भाग खड़े हुए। तात्पर्य—श्रीराधा के नयन युगल श्रीकृष्ण वदनारविन्द के अवलोकन में अत्यन्त आसक्त थे पर श्रीकृष्ण के उनके प्रति दृष्टिपात करते ही वे लज्जित हो कर मुद्रित हो गये ॥१६॥

तब श्रीकृष्ण के नयन रूपी-दो बीर पुरुषों की दृष्टि पड़ते ही भयभीत होकर अग्रसर श्रीराधा के नेत्र रूपी दो भट भाग खड़े हुये तब तो श्रीराधा के अंग प्रत्यंग रूप समस्त सैनिकाओं में भी महान् रणभंग हो गया अर्थात् शिथिलता आ गयी ॥२०

ललाट में श्रम जल छा गया और वह अलकों द्वारा ढक गया, नितम्ब स्पन्द – हीन हो गये, कुच युगल उच्छ्वास हेतु चपल हो गये, दोनों भुजाएँ शिथिल पड़ गयीं और दोनों नेत्र कुछ मुँद गये। तब तो श्रीराधा कन्दर्पयुद्ध में पराजित हो श्रीकृष्ण को परमानन्दित करने लगीं ॥२१॥

स्मरनृपति-निदिष्टा कृष्णमाक्रम्य राधा
निजमतिशय-यत्नात् पौरुषं दर्शयन्ती।
स्वयमभवदकस्माद्यच्छ्रमाद्विश्लथाङ्गी
तदिह न हि विचित्रं याबला साबलैव ॥२२॥
श्रमजल-कणदिग्धस्निग्ध-निष्पन्द-मूर्त्ति-
र्गलित-बसन-भूषा कल्पतल्प-प्रजल्पा।
प्रिय-हृदि पतिताङ्गी राधिका मीलिताक्षी
स्थिर-तड़िदिव नव्याम्भोधरे सा रराज ॥२३॥
अस्याः स्वासोच्चलत्तुन्दं मुहुः कृष्णोदरं स्पृशत्।
किमानन्दजडं तस्याः सेवार्थे चेतयत्यमुम् ॥२४॥

---

श्रीराधा ने प्रथम तो कन्दर्प नृपति के आदेश से श्रीकृष्ण पर अपना आक्रमण कर बड़े यत्न से अपना पराक्रम दर्शाया था तथापि स्वयं अकस्मात् ही युद्ध के श्रम से शिथिल पड़ गयीं तो इसमें आश्चर्य ही क्या- जिनका नाम अबला है, वे तो स्वभावतः दुर्बल ही हुआ करती हैं ॥२२॥

उस समय वे जलधर पर स्थिर सौदामिनी की भाँति शोभा पाने लगीं। युद्ध श्रमजन्य स्वेदबिन्दु से लिप्त, स्निग्ध, स्पन्दन-विहीन उनकी श्रीमूर्ति है। उनके अंग से बस्त्र,भूषण व अन्यान्य शृंगार खिसल पड़े हैं, और वे बार बार जल्पना बाक्य बोलती हुई प्राणबल्लभ के अंग पर अपना अंग बिन्यस्त कर अधखुले नेत्रों से किंचित् निद्रिता हैं ॥२३॥

श्रीराधा का उदर श्वासोच्छ्वास से उठ उठ कर बार बार श्रीकृष्ण के उदर को स्पर्श करने लगा। क्या वह उदर श्रीराधा की सेवा के निमित्त आनन्द से जड़ बने हुये श्रीकृष्ण को चेतन कर रहा है ठीक जैसे निद्रित पुरुष को जगाने के लिये हाथ

दीव्यत्तदात्वोदित-माधुरीणां स्पर्शक्षणेच्छा दयिताङ्गकानाम् ।
समागतालीव हरेर्मृगाक्ष्या ग्लानिस्तदेका तनु-सेविकासीत् ॥२५॥
ताभ्यान्तु सन्धौ विहिते तदा तयोः
प्रेम्णा प्रियायाः स्वकराम्बुजन्मना ।
उत्थाय चक्रे श्रमतोय--मार्ज्जनं
केश्यालकाल्यम्बर--संवृतिञ्च सः ॥२६॥
संप्रार्थितो वपुरलङ्कृतये तया तां
नैच्छत् स तां विहसितुं पुरतः सखीनाम् ।
आम्रेडितः पुनरिमां विदधन्निषिद्ध-
स्तत्स्पर्श--सम्मदज--विभ्रमयानयोचे ॥२७॥

---

से धीरे धीरे सहलाया जाता है ॥२४॥

श्रीराधा की उस समय की जो मनोहारिणी माधुरी प्रकाशमान हो रही थी, उन माधुर्यमय अंगप्रत्यंगों के स्पर्शन व दर्शन के निमित्त श्रीकृष्ण के हृदय में जो अभिलाषा हुई थी वह तो श्रीराधा की अंग सेविका बन गयी परन्तु मृगनयनी श्रीराधा की ओर से तो उनकी अंग-ग्लानि ही केवल एक उनकी अंग सेविका हुई ॥२५॥

तब श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधा के अंगप्रत्यंग स्पर्श व दर्शनेच्छा रूप सेविका और श्रीराधा की अंग-ग्लानि रूप सेविका—इन दोनों के द्वारा श्रीकृष्ण की अभिलाषा—सिद्धि होने पर अर्थात् श्रीकृष्ण की अभिलाषा में श्रीराधा की अंग-शिथिलता सहायक होने पर—श्रीकृष्ण उठे और उठ कर अपने करकमलों से प्रेम पूर्वक प्रिया के श्रमजल को पोंछने और केश-कलाप व अलकावली को वस्त्र द्वारा पोंछने और सँवारने लगे ॥२६॥

श्रीराधा ने अपने अंगों से विगलित अलंकारों को पुनः

मया किं भूषायै त्वमसि रमण प्रार्थित इह
त्यज व्यर्थां भ्रान्तिं विरम नहि भूषा मम मुदे ।
न चाहं शक्ताऽलङ्करणचय-भारस्य वहने
ढुनोत्युद्घूर्णा मां क्षणमवसरं देहि शयितुम् ॥२८॥
इति गदित-मरन्दं प्रेयसी-वक्त्र-पद्मात्
स्मित-रुदित-सुरम्यान्मीलिताक्षात्सतृष्णः ।
हरिरथ स निपीयास्पष्टवर्णात्तदासी-
दुदित-मदन-मत्तः सस्मितो विस्मितश्च ॥२९॥ युग्मकम्
तावत्तयोः सेवनमात्र-सौख्याः प्रतीक्षमाणाः समयं बहिष्ठाः ।
सेवोपचारान्वित-पाणि-पद्माः कुञ्जालयं ता विविशुः प्रियाल्यः ॥

---

धारण करा देने के लिये श्रीकृष्ण से प्रार्थना की परन्तु उन्होंने शृंगार कर देना न चाहा कारण कि वे सखियों के आगे श्री-राधा का परिहास करना चाहते थे। परन्तु श्रीराधा के दो-तीन बार कहने पर वे उनकी वेश रचना करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण के स्पर्श से हर्षजनित विभ्रम (वसनादिकों का उलट पुलट धारण) नामक भाव उदय होने से श्रीराधा निषेध करती हुई बोलीं ॥२७॥

हे रमण! मैंने क्या तुम से शृंगार कर देने के लिये प्रार्थना की थी? कभी नहीं! वेश-रचना का व्यर्थ भ्रम छोड़ो! शान्त हो ओ! शृंगार से मुझे सुख नहीं होगा। क्यों कि मैं अलंकारों का भार उठाने में समर्थ नहीं हूँ। मेरा मस्तक घूम रहा है, नेक सोने को समय तो दो ॥ २८ ॥

इस प्रकार प्रेयसी के हास्य व रोदन युक्त सुरम्य वदन-कमल से अस्पष्ट अक्षर युत वाक्य-रूपी मधु को सतृष्ण पान कर श्रीकृष्ण मदन से उन्मत्त, स्मितयुक्त व विस्मित हुए ॥ २९ ॥

ताम्बूल-शीतल-जलामल-गन्धमाल्यैः
पादाम्बुजादि-मृदुमर्द्दन-बीजनाद्यैः ।
ताभिर्निषेवित-पादौ प्रणयोन्मदाभि-
रामोदमापतुरलं विगत-श्रमौ तौ ॥३१॥
साकूत-सस्मित-दृशा प्रियमीरयन्ती
कान्ताब्रवीत् प्रिय न शर्म्म लभे विना याः।
कुञ्जेषु कञ्जवदना मद-विह्वलाङ्ग्यः
सख्यः स्वपन्ति रमणानय ताः प्रबोध्य ॥३२॥
तदनिच्छन्नमर्स्यासौ प्रियया मुहुरर्थितः ।
निर्ययौ ता रमयितुं मत्तेभ इव पद्मिनीः ॥३३॥

---

उधर श्रीराधाकृष्ण की सेवा में ही जिनका सब सुख है वे सेवापरा प्रिय सखियाँ कुंज के बाहर प्रतिक्षा में खड़ी थीं। अब उन्होंने राधा-कृष्ण के सेवोपयोगी ताम्बूलादि वस्तु हस्त में ग्रहण पूर्वक कुंजभवन में प्रवेश किया ॥ ३० ॥

उन सखियों ने श्रीराधाकृष्ण के प्रेम में पागल होकर ताम्बूल, शीतल जल, निर्मल गन्ध, माल्य, चरण-कमलों के मृदु मृदु मार्जन, चँवर-बीजन आदि कार्यों द्वारा उनकी सेवा करने पर श्रीराधाकृष्ण विगतश्रम हो परमानन्द को प्राप्त हुये ॥३१॥

तब श्रीराधा अपनी कोई एक अभिप्राय से मुस्कराती और नयनों से इंगित करती हुई अपने प्राणनाथ से बोलीं- " हे प्रियतम ! मैं जिनके बिना सुखी नहीं हो सकती वे सब कमल - नैनी सखियाँ मधुपान से विह्वल हो कुंज-गृहों में शयन कर रही हैं। हे रमण ! तुम उन को जगा कर ला तो दो ॥३२॥

यद्यपि श्रीराधा को त्याग कर सखियों के साथ रमण करने की अभिलाषा श्रीकृष्ण की नहीं है, तथापि प्रियतमा

कृष्णश्चक्रे मनसि ललितां यामि किम्वा विशाखा-
मादौ चित्रामिति स निखिला भावयंस्ताः प्रियालीः।
गच्छन् हर्षाद्युगपदखिले प्राविशत् कुञ्ज-वृन्दे
आत्मानं ते निज-विरचिते जीवदेहे यथैकः ॥३४॥
तासां कुञ्जेषु सर्व्वासां तेन लीला मनोहरा।
स्वप्न-जागरयोरासीद्यूथेशाया यथा पुरा ॥३५॥
आली-मल्ली-मतल्लीस्ता दोर्युद्धे तल्कृते मिथः।
जिगाय युगपत् सर्व्वाः श्रीकृष्णो मल्ल-तल्लजः ॥३६॥

---

के परिहास पूर्वक बार बार प्रार्थना करने पर मदमत्त हस्ती जैसी पद्मिनियों के साथ रमण करने के लिये गमन करता है वैसे ही श्रीकृष्ण भी उन सब सखियों को रमण कराने के लिये पधारे॥ ३३ ॥

श्रीराधा के कुंज से निकल श्रीकृष्ण सोचने लगे कि पहले किसके निकट जाऊँ, ललिता के या विशाखा के या चित्रा के इत्यादि इस प्रकार प्रत्येक सखी की भावना करते करते जैसे अखिल जीव देहों में एक आत्मा एक ही समय में प्रवेश कर गया था, वैसे ही एक ही श्रीकृष्ण एक ही समय में समस्त कुंजों में उतने ही रूपों में प्रवेश कर गये ॥३४॥

तब तो जैसे यूथेश्वरी राधा की स्वप्नावस्था में श्रीकृष्णा-गमनादि तथा जाग्रतावस्था में कृष्णागमन विलासादि लीलाएँ हुई थीं वैसे ही श्रीकृष्ण के साथ उन सब सखियों के कुञ्जों में वही मनोमुग्ध-कारिणी लीला होने लगी ॥३५॥

वह लीला यहाँ भी पूर्ववत् वीररस की भाषा में वर्णन करते हैं, यथाः—श्रीकृष्ण रूपी प्रसस्त मल्ल ने सखी रूपिणी प्रसस्त मल्लियों (श्लेषार्थः मल्लिकापुष्पों) को सुखप्रदान करने

तावच्छ्रीराधिका कुञ्जे सेविताऽलीजनैः क्षणम् ।
विश्रम्य तैः समायाता स्वसर-स्तीर्थ-कुट्टिमम् ॥३७॥
स्वाधीनकान्त-कर-कारित-भूरिभूषा-
संछादिताङ्ग-रतिलक्षण-सञ्चयापि ।
प्रौढ़-स्मराहव-बिमर्द्दन-सूचकाङ्गी
भूयोऽभिमार्जित-समाप्त-मखस्थलीव ॥३८॥
स्वालीं प्रति प्रणयरोष-बिभङ्गुरभ्रू-
लज्जा-बिनम्रवदना स्खलिताङ्घ्रिपाता ।
आयास-बिश्लथभुजद्वय-निमीलिताक्षी
सालितिस्तत इतो मिलिताभ्युपेत्य ॥३९॥ युग्मकम्

के लिये परस्पर बाहुयुद्ध द्वारा सबको एक ही समय में पराजित कर दिया ॥३६॥

इतने ही में सखियाँ द्वारा सेविता श्रीराधा क्षणकाल कुञ्ज में बिश्राम कर फिर उनके साथ अपने राधाकुण्ड के तट पर स्थित वेदिका पर आ बिराजी ॥३७॥

जिस स्थान में यज्ञ होता है उस स्थान को बार बार धोने-पोंछने पर भी जैसे वह यज्ञस्थान तैसा ही प्रतीत होता है, वैसे ही बिलास के अन्त में श्रीकृष्ण ने अपने कर युगल से भली भाँति सब सखियों के आभूषणों को यथा स्थान धारण कर देने और उनके अंगों से रति के चिन्हों को ढक देने पर भी सखियाँ के अंग प्रत्यंग प्रगाढ़ कन्दर्प संग्राम में प्राप्त विमर्दन को सूचित कर ही देते थे। ऐसी वे सखियाँ अपनी सखी श्री-राधा के प्रति प्रणय कोप से भौंह टेढ़ी किये, लज्जा से अधो-वदन हो, श्रम से शिथिलतभुजाओं व स्खलित चरणों से, अध-खुले नेत्रों से, इधर-उधर से आ आ कर श्रीराधा के साथ मिलित होने लगीं ॥३८-३९॥

कृष्णोऽपि निर्गत्य निकुञ्जवृन्दाग्मिलन्नथैको मधुमङ्गलाद्यैः।
स्मेराननां वीक्ष्य हसन् स कान्तां तदन्तिकं तैः सहितः समायात् ॥
नर्म्मद्यूतं दयित-सभिकं धूर्त्तया कुन्दवल्ल्या
तासां लज्जा-वितरणपणं भोगचिह्नाविताने: ।
वृन्दादीनां सदसि बलवद्वल्लवीनां तदासीद्
यस्मिन् सर्व्वाः सपदि विजिता ह्रेपितास्तास्तयासन् ॥४१॥
मधुरिपु-रतिलीलागाध-पीयूषसिन्धुः
सतत-दुरवगाहः प्रेमतीर्थावगाहैः ।

---

तब श्रीकृष्ण अकेले कुञ्जों में से निकल मधुमंगलादि प्रिय नर्म सखाओं से जा मिले और फिर हास्यमुखी श्रीराधा के दर्शन करते हुये हँसते हँसते सखाओं के साथ प्रियतमा के समीप आ उपस्थित हुए ॥४०॥

उस समय वृन्दा आदि की सभा में धूर्त-स्वभाव-वाली कुन्दलता के साथ सखियों का परिहास रूप द्यूतक्रीड़ा आरम्भ हुआ जिसके सभापति हुये श्रीकृष्ण । लज्जा-वितरण ही उस द्यूतक्रीड़ा का पान (दाँव) ठहरा ! उस द्यूत क्रीड़ा में धूर्त्ततमा कुन्दलता ने सखियों के सम्भोग-चिन्हों को भली भाँति प्रकट कर दिया जिससे वे सब पराजित और लज्जित हो गयीं ॥४१॥

अब ग्रन्थकर्ता इस लीला के परमोत्कर्ष वर्णन के आवेश में उस लीला का स्पर्श अपने हृदय में होने से अपने सौभाग्य की सूचना करते हुए कहते हैं:— मधुसूदन श्रीकृष्ण की यह मधुर रतिलीला अगाध अमृतसागर है, जो सर्वत्र ही दुःखगाह है अर्थात् जिसमें कदापि किसी विद्या-बुद्धि या साधन के बल से प्रवेश सम्भव नहीं है । जो प्रेम – तीर्थ में अवगाहन करने वाले हैं उन दास्य, सख्य, वात्सल्य-प्रेम वालों में भी जो कोई

प्रणयि-विरललोकैः स्वाद्यतेऽसौ यदन्यैः
कविभिरपि तटस्थैः स्पृश्यते भाग्यमेतत् ॥४२॥
अथ विविध-विलास-श्रान्तितः क्लान्ति-पूर्णा
अवसर-निज-सेवाभिज्ञयोपेत्य तूर्णम् ।
जलमनु जललीला-वाञ्छयाल्या तदान्त-
र्हरि-हरिदयिताल्यश्चाल्यमाना बभूवुः ॥४३॥
ग्रीवान्त-संयमित केलि-विमुक्तकेशाः
संवञ्चिताभिनव-शुक्ल-सुचीन-चेलाः ।
सेवापरालि-निचयैरवतारितातिं-
भाराङ्ग-भूषणचयाः सुदृशो बभुस्ताः ॥४४॥

---

विरले मधुर रस के प्रेमी रसिक हैं वे ही इस रस का आस्वादन किया करते हैं। तथापि जो अन्य कविजनमुक्त जैसे-भी इसका स्पर्श करते हैं वह केवल अरसज्ञ तटस्थ व्यक्ति की भाँति हैं यह भी हमारा सौभाग्य है-(अपने को 'तटस्थ' कहना ग्रन्थकार की दैन्योक्ति है ) ॥४२॥

अनन्तर विविध – विलास – श्रम से श्रान्त होने पर भी सखियाँ सेवा का अवसर प्राप्त होने पर अपनी अपनी सेवा की कामना से शीघ्र ही वहाँ आ उपस्थित हुई और तब श्रीकृष्ण श्रीराधा और सखियाँ जल विहार करने के लिये सरोवर को चले ॥४३॥

अब जलक्रीडा के उपयोगी गोपियों की वेश रचना का वर्णन करते हैं:—रतिकेलि के समय सखियों के खुले केश पास ग्रीवा के पीछे बँधे हुये थे। सबने अति सूक्ष्म व नवीन शुक्ल वस्त्र धारण कर लिये, और सेवापरा सखियों ने भारी भारी

उद्यत्सुधांशु-शत-पुष्करनिन्दि-कान्तिः
प्रोद्यद्विभाकर-विकस्वर-पुष्कराद्यः ।
कन्दर्प-सौमनस-पुष्करजित्कटाक्षः
श्रान्ति-प्रशान्तिकर-पुष्करकेलि-लोलः ॥४५॥
सम्वेष्टितः सकल-पुष्करिणीभिराभिः
कृष्णः प्रियादयित-पुष्करिणीं जगाहे ।
श्रान्तः श्रमाकुलित-पुष्करिणी-घटाभिः
स्वैरी वनेचर-मदोत्कट-पुष्करीव ॥४६॥ युग्मकम्
नेत्रोत्पलास्यकमलाऽलककोल-भृङ्गा-
वक्षोज-कोकयुगला तनुदोर्मृणाला ।

---

भूषणों को उनके अंगों से उतार दिया। तब वे सुलोचनी गोपांगनाएँ अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुईं ॥४४॥

अब उनके सरोवर में प्रवेश करने की विधि वर्णन करते हैं:— जिनकी अंगकान्ति समुदित शत शत शशधर व पद्म को तिरस्कार करती है, जिनके नेत्रकमल उदयमान प्रभाकर के किरणों के स्पर्श से बिकसित कमल के समान हैं, जिनके कटाक्ष-पात मदन के पुष्पबाण स्वरूप कमल श्रेणी के विजयी हैं, श्रम-हारी जलकेलि के लिये जो लालायित हैं, ऐसे श्रीकृष्ण रूपी पुष्कर (गज) ने पुष्करिणी (हस्तिनी) रूपिणी गोपांगनाओं द्वारा चारों ओर से मस्त और कन्दर्प मद से उन्मत्त होकर पद्मिनी-जातीय प्रिया समूह के अवगाहन (मज्जन) किया, ठीक जिस प्रकार परिश्रान्त स्वेच्छाचारी बनचरी मदमत्त गजराज परि-श्रान्त करिणियों द्वारा समावृत कमल श्रेणियुत सरोवर में प्रवेश करता है ॥४५–४६॥

जलकेलि में प्रथम तो श्रीकृष्ण के नयन – युगल रूप मदमर

कृष्णाक्षि-मत्तगजयोर्जलकेलि-तुष्ट्यै
गोपीततिः प्रथनतः सरसी तदासीत् ॥४७॥
भीरुस्वभावादजलावगाहाः काश्चित्तटस्थाः सलिलैर्निषिच्य।
बलाद्गृहीत्वा वसनेऽपयान्ती निन्युर्हसन्त्यः सलिलान्तरन्याः ॥४८
काश्चित् स्वजानुद्वयसे स्थिता जले
भीत्योरुदघ्ने प्रिय-सेकतो पराः ।
स्वनाभिमात्रे सलिले स्थितो हरिः
सर्वान्यसिञ्चद्विहसन् बलाज्जलैः ॥४९॥
क्लिन्नातिसूक्ष्मवसनान्तरुदीर्ण-तत्त-
दङ्गालि-सौष्ठव-सरित्सुषमाप्सु तासाम् ।

---

दो गजराजों को जलक्रीड़ा का सुख प्रदान करने के लिये गोपी-कुल ही सरोवर की भाँति शोभा पाने लगा कारण कि इनमें भी कमल की भाँति नयन व मुख कमल, भ्रमर कुल की भाँत अलकावली, चक्रवाक् की भाँति स्तन युगल और मृणाल की भाँति देहलता व भुजलता शोभा पा रही थीं ॥४७॥

भीरु-स्वभाव वाली कुछ व्रजसुन्दरियाँ सरोवर के जल में न उतर, तीर पर खड़ी थीं। उन्हें जल में स्थित कुछ व्रज-बालाएँ जल से भिगाने लगीं तो वे भागने लगीं। तब तो जल मे रहने वाली गोपियाँ हँसती हँसती उनके वस्त्र को पकड़ उन्हें बल पूर्वक खींच कर जल में ले जाने लगीं ॥४८॥

कुछ गोपियाँ घुटने घुटने जल में खड़ी थीं; दूसरी कुछ प्रियतम के जल सेंचन के भय से उरु पर्यन्त जल में खड़ी हो गयीं। श्रीकृष्ण नाभि मात्र जल में खड़े हो हँस हँस कर उन सब प्रियाओं को बलपूर्वक जल से सिंचने लगे ॥४९॥

तब तो गोपसुन्दरियों के भीगे अति झीने वस्त्र के भीतर

मग्नं हरेर्लसति नेत्र-मदेभयुग्मं
तस्यापि तासु दयिताद्दगिभी-घटापि ॥५०॥
उद्भ्राम्यादनबतितीर्षवोऽपि सर्वाः
शीतार्त्ता इव रुदित-स्मिताद्र्र-वक्त्राः ।
आकृष्टा युगपदनेन नाभिदघ्ने
तोयेऽमूरमुमभितः स्थिता विरेजुः ॥५१॥
राजीव-रक्तोत्पल-पुण्डरीक-कह्लार-नीलोत्पलकैरवाणाम् ।
स्रवन्मरन्दैश्च पतत्परागैः सौरभ्यभाज्यम्भसि ता विजह्रुः ॥५२॥
नान्दी-वृन्दा-धनिष्ठाद्याः स्थितास्तीर्थैककुट्टिमे ।
जयशब्दैः पुष्पवर्षैं राधादीनां जयेप्सवः ॥५३॥

---

स्पष्ट दिखायी देने वाली अंग-सौन्दर्य की सरिताओं के शोभा रूपी जल में श्रीकृष्ण के नयन-रूपी दो मतवाले हस्ती आनन्द से डूब गये और वैसे ही श्रीकृष्ण के अंग पर भीगे वस्त्र सट जाने से उसके भीतर से निकलती हुई देह-कान्ति रूपिणी नदी के शोभा-रूपी जल में गोपियों की दृष्टि रूपिणी करिणी डूब कर आश्चर्य शोभा को प्राप्त हो गयीं। तात्पर्य:-परस्पर परस्पर के जल-सिक्त देह के सौन्दर्य का दर्शन करने लगे ॥५०

सखियाँ स्वभाव से ही बड़ी बामा हैं। वे गहरे जल में उतरना नहीं चाहती हैं। वे शीत से काँपती हुई रोने सी लगीं। तथापि श्रीकृष्ण उनको नाभि पर्यन्त जल में खींच कर ले ही तो गये। तब वे भीगे मुख पर मन्द मन्द मुस्कराती हुई श्री-कृष्ण को मध्य में रख चारों ओर खड़ी हो शोभा पाने लगीं ॥५
तब तो गोपियाँ जल बिहार करने लगीं। वह जल कमल, रक्त-कमल, श्वेतकमल, कह्लार, नील-कमल व कैरव ( कुमुद ) से झरे हुये मकरंद रस व गिरे हुये कुसुमों के पराग से सुर-भित था ॥५२॥

बटुः सुबल-कौन्दीभ्यां स्थितस्तीर्थान्यकुट्टिमे ।
कृष्णस्य बिजयं वाञ्छन् पुष्पबर्षादिकं व्यधात् ॥५४॥
व्यात्युक्षी-प्रधनं तदा समभवत्ताभिः समं श्रीहरे-
र्यत्रासां मृदुसेचनैः स बिदधे प्रोत्साहवृद्धिं क्षणम् ।
सिञ्चन्त्यः परितो निरन्तर-जलासारैरमुं ता व्यधु-
र्भीत्याऽधोवदनं कराङ्गुलि-दलैरुद्धाक्षिनासाश्रुतिम् ॥५५॥
उरीचकारेव सहस्रनेत्रतां तासां स सौन्दर्य्य-बिलोकने हरिः ।
सहस्रपादत्वमथान्तिके गतौ सहस्रबाहुत्वमिहोपगूहने ॥५६॥

---

उस समय नान्दीमुखी, वृन्दा, धनिष्ठा प्रभृति सखियाँ सरोबर के एक बुर्ज पर बैठ कर श्रीराधा आदि सखियों की जय की आकांक्षा करती हुई जय जय कार व पुष्प वृष्टि करने लगीं तथा सुबल व कुन्दलता के साथ मधुमंगल-सरोवर के दूसरे बुर्ज पर बैठ श्रीकृष्ण की विजयाभिलाषा से जयजयकार व पुष्प बृष्टि करने लगे ॥५३—५४॥

तब तो प्रियाओं के साथ श्रीकृष्ण का घोर जलयुद्ध छिड़ गया। कभी तो कान्ताओं के मृदु मृदु जल सेंचन से श्रीकृष्ण का उत्साह बढ़ जाता और कभी श्रीकृष्ण अपने मृदु मृदु जल-सेचन से उनका उत्साह बढ़ा देते। पीछे जब प्रियाओं ने निरन्तर जल धारा छोड़ना आरम्भ किया तो श्रीकृष्ण ने भी उन्हें निरन्तर जलधारा से अभिसिक्त कर दिया। तब तो उन्होंने भय के मारे अपने अपने अंगुली रूपी दलों से आँखें, नासिका व कर्णों सहित बदन को ढक कर नीचे शिर कर लिया ॥५५॥

इस जलक्रीड़ा में ऐसा प्रतीत होता था कि श्रीकृष्ण के कान्ताओं के सौन्दर्य दर्शन के लिये मानो तो सहस्रलोचन हो

एणीदृशामुदरदघ्नजले स्थितानां
सेकेऽम्बुभिर्वदन-पद्मविकाशने च ।
बक्षोज-कोक-मिथुनावलि-लालनेऽपि
कृष्णः सहस्रकरतामुररीचकार ॥५७॥
सहस्रपात् सहस्राक्षः सहस्रबाहुरीश्वरः ।
इति श्रुत्यर्थमपठत् कृष्णं बीक्ष्य मुदा बटुः ॥५८॥
सर्व्वतः पाणिपादं तत् सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
हसन्तीति स्मृतिं नान्दीमुखी तीरस्थितापठत् ॥५९॥
उद्वर्षन्ती दिशि दिशि तिर्य्यक् पातान्
तोयासारान् ब्रजरमणीवल्लीनाम् ।

---

गये, उनके समीप गमन के लिये सहस्रपाद हो गये और उनके आलिंगन के लिये सहस्रबाहु हो गये ॥५६॥

सूर्य जैसे जल की बर्षा करना कमल का बिकास करना व चक्रवाक को आनन्द प्रदान करता है उसी प्रकार उदर पर्यन्त जल में अवस्थित मृगाक्षी ब्रजांगनाओं के ऊपर जल-वर्षा करने, उनके मुख-कमल को बिकसित करने तथा उनके स्तन रूपी चक्रबाकों का लालन करने के लिये श्रीकृष्ण ने भी सहस्र करत्व स्वीकार किया- (कर-बाहुः सूर्य किरण) ॥५७

तब तो मधुमंगल श्रीकृष्ण की इस अवस्था का दर्शन करके आनन्दित हो "सहस्रपात् सहस्राक्षः सहस्रबाहुरीश्वरः" अर्थात् ईश्वर के सहस्र पाद, सहस्र नयन और सहस्र बाहु हैं- इस श्रुति बचन का पाठ करने लगा ॥५८॥

इस पर तीर पर स्थित नान्दीमुखी ने हँसते हँसते "सर्वत पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्" अर्थात् उसके हस्त पाद, नयन, मस्तक व मुख समस्त दिशाओं में व्याप्त हैं, इस स्मृति बचन का पाठ किया ॥५९॥

व्यालोलानामविरत-सेके केलौ
कार्ष्णीमूर्तिर्जलधरमाला सासीत् ॥६०॥
पादप्रान्तेऽत्यरुणतया किं तासां यावैश्चेत्थं चिरजलवासैर्यत्नात् ।
कृत्वा वर्णद्वयहतिमासामुच्चै- र्मत्तेवासीज्जलधरमालाप्येषा ॥६१॥
प्रियकर-मिलिताम्बु-स्पर्श-हृष्टापि पर्य्यक्
सतत-निपतदम्भोधारयोद्विग्न-चित्ता ।
शिथिलित-भुजवल्ली-श्रस्त-केशाम्बरस्रग्
जलयुधि विमुखी सा सुन्दरी-पालिरासीत् ॥६२॥

---

उस समय श्रीकृष्ण की मूर्त्ति दिशाओं में आड़ी–टेढ़ी जलधारा बरसाती हुई, ब्रजांगना रूपी लताओं के प्रति निरन्तर सींचन की लीला करती हुई मेघमाला के सदृश प्रतीत होती थी ॥६०॥

"इन ब्रजबालाओं के चरण प्रान्त तो स्वतः ही अति अरुण हैं— इनमें महावर लगाने की क्या आवश्यकता ?" यह विचार कर बड़ा प्रयत्न करके इस जलधर माला श्रीकृष्ण ने उन दोनों वर्णों को (१. स्वतः सिद्ध लालिमा २. महावर कृत लालिमा) दीर्घकाल तक जल में बास करा नष्ट कर गोपियों को उन्मत्त कर दिया। तात्पर्य-अधिक समय तक गोपियों के जल में खड़ी रहने के कारण उनके चरणों के महावर तो धुले ही, उनकी स्वा-भाविक लालिमा भी शुक्ल प्राय हो गयी ॥६१॥

ब्रजसुन्दरियाँ श्रीकृष्ण के करमिलित जल के स्पर्श से आन-न्दित तो हुईं परन्तु चारों ओर से सतत बरसती धाराओं से घबड़ा भी गयीं। उनकी भुजलताएं शिथिल हो गयीं, केश खुल गये और बस्त्र व मालाएँ अंग से खिसल चलीं– अतएव वे जलयुद्ध से विरत हो गयीं ॥६२॥

जले बलाद्‌स्यमलेऽबलानां निरुद्धय कान्तेन हृताम्बराणाम् ।
दलालि-दानेन तरङ्ग-हस्तै-र्व्यधायि सख्यं द्रुतमब्जिनीभिः ॥६३॥
इह राधिका प्रतिपदं पराभवै-र्मुखवर्णयुग्मविरहात् सखीततेः ।
दयितं विजेतुमपि मञ्जुभाषिणी जलसेचने मुहुरथोद्धताऽभवत् ॥
निवारित-सखीपाल्योर्मिथः संस्पर्द्धिनोस्तयोः ।
ईशयोर्द्वन्द्वयुद्धञ्चाभवदादौ जलाजलि ॥६५॥
सखीपाल्यावृतौ सत्यां कराकरि भुजाभुजि ।
नखानखि च तत्पश्चान्मुखामुखि रदारदि ॥६६॥
अन्योन्यमङ्ग-संहर्षात् कृष्णमानन्दमन्थरम् ।
राधां भावोद्‌गमैर्लोलां वीक्ष्याम्‌ ललिताब्रवीत् ॥६७॥

---

तब कान्त श्रीकृष्ण ने उस निर्मल जल में कान्ताओं को रोक करके उनका बस्त्र-हरन करने लगे तो कमलनियों ने तत्क्षण अपने तरंग रूपी हस्तों द्वारा अपने पत्र अर्पण करके उनके साथ सख्यता कर ली अर्थात् पद्म-पत्रों के द्वारा उन्होंने अपने अंग ढक लिये ॥६३॥

जलक्रीड़ा में क्षण क्षण में श्रीकृष्ण के जल प्रहार से सखियों के मुख के दो बर्ण (१. ताम्बूल की लालिमा, २. स्वतः सिद्ध लालिमा) दोनों धुल गये तब तो मञ्जुभाषिणी श्रीराधा प्रियतम को पराजय करने के लिये बार बार उद्धत हो उठीं ॥६४॥

अतएव श्रीराधा – कृष्ण ने सखियों को निवारण कर दिया और दोनों परस्पर को जय करने की स्पर्द्धा से प्रथम जलाजली (परस्पर पर जल डालना) रूप युद्ध में प्रवृत्त हुये ॥६५॥

तब सखियाँ आकर श्रीराधाकृष्ण के चारों ओर आवरण (पर्दा) के रूप में स्थित हो गयीं। सो अब जलाजली से आगे पहिले हस्ताहस्ती, फिर भुजाभुजी, फिर नखानखी, फिर मुखामुखी और अन्त में दन्तादन्ती युद्ध होने लगा ॥६६॥

चूडा पश्चादपसृतवती कौस्तुभो बिम्बदम्भाद्
गण्डे तेऽसौ शरणमभजत् कुण्डले कम्पलोले ।
लीनश्चाप्यौ तिलकमलिके छिन्नभिन्नास्य माला
तस्माद्युद्धाद्विरम सखि ! मा कातरं पीडयामुम् ॥६८॥
व्यात्युक्ष्यां सलिले यद्वन्मुहुर्ज्जय-पराजयौ ।
तेषां जातौ व्यावहास्यां तीरे तौ सुहृदां तथा ॥६९॥
आकृष्य राधां सबलान्मुकुन्दः स्वकण्ठदघ्नेऽम्भसि तां निनाय ।
मग्नामिवैनां पुनरुद्धार तरङ्गलोलां नलिनीमिवेभः ॥७०॥

---

परस्पर के संग के कारण पूर्ण हर्षोदय से श्रीकृष्ण आनन्द से विवश हो गये हैं और भावोदय के कारण श्रीराधा चंचल हो गयी हैं—यह देख ललिता ने श्रीराधा से कहा ॥६७॥

हे राधे ! — युद्ध से निवृत्त होओ ! वह देखो, श्रीकृष्ण का चूड़ा पीछे ढुलक पड़ा है, कौस्तुभमणि ने प्रतिबिम्ब के मिस से तुम्हारे कपोल का आश्रय लिया है अर्थात् कपोल पर उसकी परछांई पड़ रही है । दोनों कर्णों के कुण्डल देहकम्प के कारण हिल रहे हैं, ललाट का तिलक ललाट में ही लीन हो गया है और कण्ठ की माला भी छिन्न-भिन्न हो गयी है । अतएव हे सखि ! श्रीकृष्ण अत्यन्त कातर हो गये हैं, इन्हें और पीड़ित मत करो ॥६८॥

जैसे व्यात्युक्षी— अर्थात् परस्पर के जल-युद्ध में श्रीकृष्ण और सखियों का क्षण में जय, क्षण में पराजय हुआ, वैसे ही व्याहास्य अर्थात् परस्पर के हास-परिहास में तीरस्थित सखा-सखियों का भी जय-पराजय हुआ ॥६९॥

इतने में श्रीकृष्ण बलपूर्वक श्रीराधा को खींच कर अपने कण्ठ पर्यन्त जल में ले गये और उनको जल में डुबाकर फिर

तत्कण्ठदेशार्पित-दोर्मृणाला केशालि-शैवाल-वृताननाब्जी ।
कृष्णेभ-हस्तोत्कलितातिलोला राधाब्जिनीवाम्भसि सन्ततार ॥७१

तावत् प्रफुल्ल-कनकाब्जवने प्रमोदा-
ल्लीनासु तासु गलदघ्नजले सखीषु ।
कान्ता जगाद दयितं प्रिय मे वयस्या
याता द्रुतं क नु गवेषय तूर्णमेताः ॥७२॥

निधाय तां तद्गलमात्र-पुष्करे श्रीपुष्कराक्षे प्रविशत्यथालिकाः ।
अन्वेष्टुमस्मिन् स्फुट-पुष्कराटवीं राधास लीना वर-पुष्करानना ॥

---

ऊपर उठा लिया ठीक जैसे हस्ती अपनी सूँड से तरंगों से हिलती हुई कमलिनी को जल में डुबाकर फिर बाहर उठा लेता है ॥७०॥

फिर जैसे कमलिनी हस्ती के सूँड द्वारा डुबायी जाकर उठाई जाने पर ऊपर तैरती रहती है वैसे ही हस्ती रूपी श्री-कृष्ण के हस्त में पद्मिनी रूपिणी राधा जल से ऊपर निकल जल पर इधर उधर तैरने लगीं और तैरते समय श्रीकृष्ण के कण्ठ में अपनी भुजा रूपी मृणाल (डंडी) को अर्पण कर दिया तथा उनके बिथुरे हुये लम्बे लम्बे केश रूपी शैवालों से उनका मुख कमल ढक गया ॥७१॥

इधर सखियाँ कण्ठ पर्यन्त जल में निमग्न हो गयीं तो उनके मुख-कमलों और जल के स्वर्ण - कमलों में कोई भेद नहीं रह गया । तब तो श्रीराधा यह समझ बैठीं कि सखियाँ कहीं चली गयीं और श्रीकृष्ण से बोलीं— "हे प्रिय ! मेरी सखियाँ कहाँ चली गयीं ? तुम उन्हें ढूंढो तो सही" ॥७२॥

तब तो कमललोचन श्रीकृष्ण ने कण्ठ परिमाण जल में श्रीराधा को स्थित कर विकसित कमलवन में सखियों को ढढ़ने

तान्युत्थितानि जलतः कनकाम्बुजानि
फुल्लासितोत्पलयुगातिविराजितानि ।
दृष्ट्वा तरङ्गचल--शैवल--संयुतानि
तत्पान--चञ्चलमतिर्मधुसूदनोऽभूत् ॥७४॥
मुखेषु तासां कनकारविन्द-वृन्दायमानेषु मरन्द-पानम् ।
चक्रे हरिः प्रत्यरविन्दमञ्चन् तृषार्त्त-रोलम्बकदम्बकं वा ॥७५॥
द्रुतमुपनयतास्यं स्वस्व-वक्त्रान्तिके स्वं
क्षणमिह दयितेन द्वन्द्वयुद्धं समृद्धम् ।
निभृत-मिलितया श्रीराधयाप्यन्वितानां
युगपदभवदासामाननाब्जाननाब्जि ॥७६॥
गोपीस्तनास्फालनजैस्तरङ्गैः लीलाम्बुजान्युल्लल-षट्पदान्यलम् ।
तासां मुखानीव ददर्श चुम्बने वैभ्रत्य-लोलानि चलेक्षणानि सः ॥७७

---

के लिये प्रवेश किया । इधर श्रेष्ठ कमलाननी श्रीराधा जल में लीन हो रहीं ॥ ७३ ॥

उधर श्रीकृष्ण ऊपर उठी हुई स्वर्ण कमल श्रेणी के दर्शन कर सखियों के मुख – कमल पान के लिये चंचल हो उठे । उन स्वर्ण कमलों में प्रफुल्लित हो हो नील–कमल ( नेत्र ) शोभा दे रहे थे और वे शैवाल-जाल ( केश ) से मुक्त थे जो तरंगों के वेग से हिला रहे थे ॥ ७४ ॥

तृषातुर भ्रमर जैसे प्रत्येक कमल का पान करता फिरता है वैसे ही श्रीकृष्ण भी तृषातुर हो सुवर्ण कमल सदृश ब्रज–सुन्दरियों के मुखकमलों का रस पान व चुम्बन करने लगे ॥ ७५ ॥

तब सखियाँ भी गुप्तरूप से श्रीराधा से जा मिली और प्रियतम श्रीकृष्ण ने सखियों के वदन के समीप अपना मुख ले ले जाकर क्षणभर के लिये मुखपद्म मुखपद्मों में युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ७६ ॥

तासां प्रियेण वलयावलि-पार्श्वयुग्मे
प्रेम्णा मृणालकृत-कङ्कण-सन्निवेशः ।
नाना-विलास-विततिश्रमजाङ्गकार्श्यात्
पातोन्मुखान् स वलयान् परितो रुरोध ॥७८॥

कुसुम-बिस-मरालाम्भोज-चक्रोत्पलानि
स्मित-भुजगति-वक्त्रारोज-नेत्रैर्विजित्य ।
निविड़-कुच-नितम्बास्फालनैः कम्पयित्वा
जलमपि सरसी सा क्षोभितासीद्वधूभिः ॥७९॥

लीलाक्षुभ्यत्सलिलोत्थैस्तरङ्गै र्वातोर्म्मीणां मिलिताः पुरस्तात् ।
सङ्कष्टोऽभून्मिथुनं यत्र वीनां स्थातुं गन्तुं क्षममासीन्न लोलम् ॥८०

---

गोपियों के स्तनों के आघात से उत्पन्न तरंग – मालाओं से कमल समूह हिलते रहने के कारण भ्रमरगण उस पर स्थित हो कर बैठ नहीं पाते थे और इधर उधर उड़ रहे थे। वे कमल चुम्बन के समय अनिच्छा प्रकट करते हुए चंचल-नेत्रों से शोभित ब्रजरामाओं के मुखकमल के सदृश प्रतीत होते थे ऐसी कमल – श्रेणी का श्रीकृष्णदर्शन करने लगे ॥ ७७ ॥

ब्रजांगनाएं नाना प्रकार के विलास से क्लान्त हो गयी, उनके अंग प्रत्यंग अतिशय कृश हो गये और उनकी भुजाओं के वलय खिसल खिसल कर गिरने को हो गये। तब श्रीकृष्ण ने प्रेमपूर्वक उन वलयों के समीप मृणाल के बने कंकण धारण करा दिये जिनसे गिरती हुई वलयावली रुक गयी ॥ ७८ ॥

तब ब्रजबधुओं ने अपने मन्द मुसकान के द्वारा कुमुद, बदन द्वारा पद्म, भुजाओं द्वारा मृणाल, स्तनों द्वारा चक्रवाक एवं नयनों द्वारा उत्पल व गमन द्वारा हंस पर जय प्राप्त करके अपने स्तन व विशाल नितम्बों के आस्फालन से जल को भी कँपा कर सरोवर को क्षुब्ध कर दिया ॥ ७९ ॥

तासां मुखामृतरुचामुदयेऽपि नापु-
र्विश्लेष-दुःखमिह कोक-युगानि किन्तु ।
तत्सन्निधौ प्रविलसत्स्तन-कोकयुग्मा-
न्यालोक्य विभ्रमितधीर्न्यतिमोदमापुः ॥८१॥
राधा-मुखेन्दोरुदयात् सरोवरे फुल्लेषु नीलोत्पल-कैरवेष्वपि ।
निश्यह्नि यद्वन्मधुपानजं सुखं तत्रादिद्विरेफाः समकालमापुः ॥८२॥
इन्दिन्दिराणां युगपद्विलासं कुमुद्वतीष्वप्यरविन्दिनीषु ।
सखीचये पश्यति सोऽतिचित्रं लीलाब्जषण्डे हरिरास लीनः ॥८३

---

उस समय केलि द्वारा विक्षुब्ध सलिल से उत्पन्न तरंगमालाओं के साथ सन्मुख की वायु प्रवाह के मिलने से जो एक प्रवल टकराव हुआ उससे पक्षियों के जोड़े चंचल हो न स्थिर बैठ ही सके न उड़ कर जा ही सके ॥ ८० ॥

व्रजांगनाओं के मुखरूपी चन्द्रमाओं के उदय होने पर भी चक्रवाक दम्पति को विरह-दुःख नहीं भोगना पड़ा अर्थात् रात्रि समझ बिछुड़ना नहीं पड़ा, अपितु उनको आनन्द ही हुआ कारण कि उन्होंने मुख चन्द्रमाओं के समीप ही निश्चिन्त रूप से स्तन रूपी चक्रवाक-दम्पतियों को बिरह करते देखा अतएव सूर्य भी उदित है, रात्रि की आशंका से बिरह का दुःख नहीं हुआ ॥ ८१ ॥

और भी एक आश्चर्य हुआ—श्रीराधिका के मुखचन्द्र के उदय के कारण भ्रमरकुल रात्रि में खिलने वाली नीलोत्पल व श्वेतोत्पल के मधुपान का सुख और दिन में खिलने वाले रक्त-कमल के मधुपान का सुख दोनों एक ही समय प्राप्त हो गये ॥ ८२ ॥

रात्रि में खिलने वाले कुमुदों व दिन में खिलने वाले कमलों

अन्वेषणायाम्या गतास्तदाल्यो नीलाम्बुजान्यस्य मुखानि मत्वा ।
आनन्द-मग्नाः परिचुम्ब्य हीणाः परस्परालोकनतो बभूवुः ॥८४॥
राधान्तु दैवात् प्रिय-वक्त्रपार्श्व-मासादयन्तीं प्रविलोक्य चित्रा ।
सखीः समाभाषत पश्यतालयः पुरोऽब्जषण्डे महदद्भुतं नः ॥८५॥
प्रलम्ब-शैवाल-कदम्ब-सम्वृतं मध्ये नटत्खञ्जनयुग्ममद्भुतम् ।
लोलालिमालं चल-हेम-पङ्कजं तथाविधं चञ्चति नीलपङ्कजम ॥८६
लसद् तनुतरङ्गैश्चाल्यमानं पुरस्तात्
कनक--कमलमेतन्नीलपद्मो ललाग ।

---

में भ्रमर एक ही समय बिहार कर रहे हैं – इस आश्चर्य को जब सखियाँ देखने लगीं, तो श्रीकृष्ण नीलकमल श्रेणी में जा छिपे ॥ ८३ ॥

तब श्रीकृष्ण का पता लगाने के लिये सखियाँ नीलकमलों को श्रीकृष्ण का मुख कमल समझ चुम्बन करने लगीं और अपने भ्रम (भूल) का ज्ञान होने पर एक दूसरे को देख लज्जित होने लगीं ॥ ८४ ॥

तब चित्रा ने देखा कि (ढूढते ढूढते) श्रीकृष्ण के मुखकमल के पार्श्व में ही श्रीराधा पहुँच गयीं अर्थात् उनका मुखकमल निकट हो गया तब वह सखियों से कहने लगीं–"अरी सखियों! हमारे सन्मुख के पद्मखण्ड में एक महान् आश्चर्य के दर्शन करो" ॥८५॥

वह आश्चर्य यह है कि एक बड़ा अद्भुत चंचल स्वर्णकमल (श्रीराधामुख) है, वह लहराते हुये लम्बे लम्बे शैवालों (केश) से वेष्टित है, उसके मध्य में दो खंजन नृत्य कर रहे हैं और भ्रमर-कुल उस पर चंचल हो रहे हैं। ऐसे स्वर्ण कमल के प्रति एक नील कमल (श्रीकृष्णमुख) गमन कर रहा है। वह नील – कमल भी वैसे ही शैवाल, भ्रमरादि करके युक्त था ॥८६॥

विरलितमपि तस्मात् प्रेरितं तैस्तदस्मि-
न्मुहुरतिचलमासीत् संयुतं चायुतञ्च ॥८७॥
क्वचिदिह जलमध्यादुत्थितौ चक्रबाकौ
तत उदितमकस्मादावृणोत् पद्मयुग्मम ।
तदपि समुदितं श्रीहल्लक-द्वन्द्वमस्मा-
दिति तदतिशयोक्त्या लेभिरे मोदमाल्यः ॥८८॥
तामादायागते कृष्णे तासां मध्येऽथ तन्मुखम् ।
बभौ हेमाब्ज-मण्डल्या वेष्टितं नीलपद्मवत् ॥८९॥

---

और देखो—सुन्दर बृहत तरंगों से चालित होकर वह स्वर्ण-कमल (श्रीराधामुख) नीलकमल (श्रीकृष्णमुख) से जा लगा। स्वर्ण - कमल नीलकमल से पृथक रहते हुए भी बृहत् तरंग-मालाओं के द्वारा इधर उधर संचालित होने के कारण वह कभी नीलकमल (श्रीकृष्णमुख) से अत्यन्त चंचल हो आ मिलता है और कभी प्रथक् हो जाता है ॥८७॥

और भी देखो, कहीं पर जल के मध्य में से दो चक्रवाक (स्तन) ऊपर उठ आये तो अकस्मात् दो पद्मों (श्रीकृष्णहस्त) ने बढ़ कर उनको ढक लिया, तब तो दो रक्तवर्ण कह्लार (श्री-राधाहस्त) ने जल में से निकल करके चक्रवाकों पर से दो पद्मों (श्रीकृष्ण के कर युगल) को दूर कर दिया। इस अतिशयोक्ति-लंकार द्वारा वर्णित घटना के दर्शन करके ललितादि सखियों को अत्यन्त आनन्द लाभ हुआ ॥८८॥

तब श्रीकृष्ण श्रीराधा को धारण किये हुये सखियों के मध्य में आये, उस समय कनक - कमल मण्डली द्वारा परिमण्डित नीलकमल की भाँति श्रीकृष्ण सखियों के मध्य में शोभा को प्राप्त हुये ॥८९॥

जलमण्डुक-वाद्यानि कृष्णस्ताभिरवादयत् ।
पटह-ध्वनिवत् क्वापि दुन्दुभि-ध्वनिवत् क्वचित् ॥६०॥
हरि-हरिदयितानां गात्र-सौरभ्य-शैत्यै-
रधिक-सुरभि-शीतं तोयमासीत् सरस्याः ।
असित-सित-पिशङ्गैः कर्व्वुरं चाङ्गरागै-
र्भवति हि गुणि-सङ्गान्निम्मलानां गुणाप्तिः ॥६१॥
प्रोद्भिन्न-पद्मीव स पद्मिनीगणैः संसिच्यमानः कर-पुष्करेण तान् ।
सिञ्चन् हरिः प्रस्फुट-पद्मिनीवना-दुत्तीर्य्य तोयादथ तीर्थमागमत् ॥

अब श्रीकृष्ण सखियों के साथ जलमण्डूक वाद्य बजाने लगे, (एक हाथ में जल ले दूसरे हाथ से उस पर चोट करने का नाम जलमण्डूक है)। वह वाद्य कभी डफ और कभी नगाड़े के समान ध्वनि करता है ॥६०॥

श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णप्रियाओं के अंग के सौरभ व शैत्य-गुणों से सरोवर का जल भी सुरभित और शीतल हो गया तथा मनोहर श्यामवर्ण मृगमद, शुक्लवर्ण चन्दन व पीलेवर्ण के कुंकुम- इन त्रिविध अंगरागों के द्वारा वह जल भी कर्वुर (विविध वर्णवाला) वर्ण का हो गया ठीक जैसे गुणियों के संग से निर्गुणियों में भी गुण आ जाता है, निर्मल स्फटिक मणी भी रक्तवर्ण के संसर्ग से लाल हो जाता है ॥६१॥

पद्मिनियों (हस्तिनियों) द्वारा सूँड़ों से अभिसिक्त होकर जैसे पद्मीगण (हस्तीगण) भी अपने सूँड़ों से उनका अभिषेक करते हुये तीर पर आ निकलते हैं, उसी प्रकार पद्मिनी-बालाओं के कर कमलों द्वारा अभिसिक्त होकर उनको अपने करकमल से अभिसेक करते हुये पद्मी श्रीकृष्ण बिकसित पद्म वाला सरोवर के घाट पह आ उठे ॥६२॥

सेवालीभिः कृष्ण-कृष्णप्रियास्ता स्तैलैर्गन्धोद्वर्त्तनैः सेविताङ्गाः ।
प्रेमणाऽन्योन्यं स्नापयित्वा प्रहर्षात् स्नात्वोत्तस्थुर्नीरतस्तीर्थतीरे ॥
गौराङ्गीणामङ्गलग्नाम्बरान्ताद्धारां धारा निष्पतन्त्यो विरेजुः ।
यद्वत् सौवर्णाचल-क्षुद्र-शृङ्ग-श्रेणीलग्नाच्छारदाम्भोद-वृन्दात् ॥६
विस्रस्त-कुन्तलततेः शिखराद्गलन्त-
स्तासां गुणग्रथित-मौक्तिक-पालितुल्याः ।
अन्तर्हृदीशितुरलं जलबिन्दवोऽमी
एकावली-निचयतामुपलभ्य रेजुः ॥६५॥
स्वप्नेऽपि दुर्लभ-विलोकलवस्य तस्य
दृष्ट्यास्न--विघ्नरहितेष्ट--सुसङ्गमस्य ।
चित्रं चिरान्मधुरिमामृतमापिबन्त्य-
स्तृष्णाभिवृद्धिमगमन् द्विगुणां मृगाक्ष्यः ॥६६॥

---

यहाँ सेवा – परायण सखियों ने श्रीकृष्ण और कृष्णप्रियाओं के अंगों में सुगन्ध तैल, चुर्णादिक का उबटन किया और तब वे प्रेमपूर्वक परस्पर को स्नान करा कर आनन्द से तीर पर निकल आये ॥६३॥

गौरांगी व्रजांगनाओं के सुवर्ण अंगों से संलग्न शुभ्र वस्त्रो से टपकती हुई जलधाराओं की शोभा ऐसी ही थी जैसी कि सुवर्णपर्वत के क्षुद्र शिखरों से संलग्न शारदीय शुभ्र मेघों से झरती हुई जलधाराओं की शोभा होती है ॥६४॥

और जो व्रजवालाओं के आलुलायित (विथुरे हुये) केशों के अग्रभाग से सूत्र में ग्रथित मुक्ताश्रेणी सदृश जल विन्दु विन्दु करके टपक रहे थे वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो तो वे श्री-कृष्ण के हृदय की इकलड़ हार के समान शोभा दे रहे हों ॥६५॥
कैसे आश्चर्य की बात है कि स्वप्न में भी जिस श्रीकृष्ण का

तासामसम्भावित-दर्शनानां द्विष्ट्याप्त-रत्यादिक-शर्म्मणोऽपि ।
किन्नाम्बराम्भः समुदीर्णतत्तादङ्गालि-सन्दर्शनजा मुदो याः ॥६७

दामानि मात्रा निहितानि यस्यां
बाल्येऽप्यनन्तान्यगमन् समन्तात् ।
बितस्ति—मात्रत्वमघद्विषोऽस्यां
तनौ ममुस्ता नहि चित्रमेतत् ॥६८॥ युग्मकम्

आलीचयेन परिमार्ज्जित—देह—केश—
क्षीनांशुकैः परिहितोद्गमनीयचेलः ।

---

लेशमात्र दर्शन भी दुर्लभ हो जाता था आज भाग्यवश उसी श्रीकृष्ण का निर्विघ्न वांछित संग प्राप्त हो रहा है, अतएव मृगनयनी रमणीगण श्रीकृष्ण के माधुर्यामृत को निरन्तर पान कर रही हैं तथापि उनकी तृष्णा दुगुनी दुगुनी-बढ़ती जा रही है ॥६६॥

बाल्यकाल में भी जब अघरिपु श्रीकृष्ण के शरीर पर माँ यशोदा ने असंख्य दीर्घ रज्जुओं को लपेटा था तो वे अनन्त रज्जुएँ भी बितस्ति (बिलाँत) परिमाण मात्र की हो गयीं थीं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कारण कि श्रीकृष्ण विग्रह में बहू को स्वल्प कर देने की शक्ति है। परन्तु आश्चर्यतम तो यह है कि जिन ब्रजांगनाओं का दर्शन भी असम्भव है उन्हीं के भीगे वस्त्रों के भीतर से प्रकाशमान अंग-प्रत्यंग के दर्शन कर प्राप्त रति किशोर श्रीकृष्ण के हृदय में जो आनन्द उदित हुआ उसका कोई परिमाण प्राप्त नहीं मिला कि वह कितना था ! इसके द्वारा उनके अंगदर्शन जनित आनन्द की परमावधित्व, गुरुत्व व बहुत्व का निर्देश किया गया है ॥६७-६८॥

तब सखियों ने सूक्ष्म वस्त्र से श्रीकृष्ण और ब्रजसुन्दरियों

कृष्णश्च कृष्णरमणी—निचयः ससभ्यः
श्रीपद्ममन्दिरमितो द्रुतमारुरोह ॥९९॥
अनल्पैराकल्पैः कुसुम—रचितैर्भूषणचयै-
र्निविष्टं तं याम्ये कमलगृह—सत्कुट्टिमवरे ।
निज-प्राणप्रेष्ठं प्रणय-परिपाटी-घटनया
स्वयं श्रीराधाली-निचय-सहिता मण्डयति सा ॥१००॥
धूपैरागुरवैर्विशुष्क-सुरभीन् श्रीकङ्कती-शोधितान्
मल्लीगर्भक-वेष्टितान् स्वदयितस्योद्यम्य बद्ध्वा कचान् ।
जाती-रङ्गण-यूथिका-बकुल-सद्गाङ्गेय-यूथीकृतै-
र्गुच्छोत्पल्लव-केतकीदल-लसच्चाम्पेय-बर्हान्वितैः ॥१०१॥
गुञ्जा-मौक्तिक-माल्ययुग्मविलसत्पार्श्वद्वयैर्माल्यकै-
रुद्‌ध्वोर्द्ध्वक्रम-वेष्टितां स्तबकयुक्पिञ्छैर्लसत्शेखराम् ।
मूले स्थूलतमां सुसूक्ष्मशिखरां कृष्णालिवृन्दां व्यधात्
चूडां चामरडामरीमलिकगां राधा जगन्मोहिनीम् ॥१०२॥

---

के देह व केशों को पोंछा तथा उन्हें परिधेय व उत्तरीय वस्त्र धारण कराया। फिर श्रीकृष्ण व प्रियावृन्द वृन्दादि सभ्यों के साथ श्रीकुण्ड के तट से नैऋत कोण में स्थित श्रीपद्म नामक कुञ्ज-मन्दिर में आगमन कर ऊपर चढ़े ॥९९॥

श्रीकृष्ण दक्षिण दिशा के कमलमन्दिर की सुन्दर वेदी पर जा विराजे। तब सखियों के साथ श्रीराधा प्रीतिपूर्वक विशेष परिपाटी दर्शाती हुई फूलों के अलंकार द्वारा अपने प्राणप्रियतम को अलंकृत करने लगीं ॥१००॥

वह शृङ्गार परिपाटी यह है:— प्रथम तो श्रीराधा ने अपने प्रियतम के केशकलाप को अगुरुधूप द्वारा शुष्क व सुरभित किया और सुन्दर कङ्घी से शोधन किया, फिर मल्लीपुष्प की मालर से

यस्यां लग्ना न दृगलिघटा निर्जिहीतेऽङ्गनानां
या संलग्ना हृदय-कमले जातु नैतज्जहाति ।
यस्याश्छाया भ्रमयति सकृद्दीक्ष्यमाणापि कृष्णं
कार्ष्णी चूडा बिलसति जगत् सा पिबन्ती स्वधाम्ना ॥१०३॥
यत्कौङ्कुमं ललितया तिलकं ललाटे
सृष्टं हरेः शशिनिभं मदविन्दु-मध्यम् ।
श्रीखण्डबिन्दु—निचितं बहिरेतदासां
हृत्खण्डने मदन-हाटकचक्रमासीत् ॥१०४॥

---

मंडित करके केशों को ऊपर उठाकर चूड़ा बन्धन किया । उस चूड़ा में जाही, जूही, मौलसिरी, और सोनजूही के गुच्छे ठौर ठौर पर लगे हुये थे और ऊपर मध्य में केतकीदल सहित चम्पक के गुच्छे का भूषण था और गुञ्जा व मुक्ता की दो दो मालाएं दोनों पार्श्व में लटक रही थी । चूड़े पर दो स्तवक (गुच्छे) और उस पर मोर-पिच्छ शोभा दे रहे थे । चूड़े का मूलभाग स्थूल व अग्रभाग सूक्ष्म था और उसके सौरभ से भ्रमरगण आकर्षित हो रहे थे । वह चूड़ा ऐन-मैन चँवर जैसा शोभा देता हुआ त्रिभुवन मनमोहिनी बन गया था ॥१०१–१०२॥

अहा ! श्रीकृष्ण के जिस चूड़ा पर ब्रजसुन्दरियों की नेत्र—रूपी भ्रमर मालाएँ लिपट कर फिर कभी बाहर नहीं निकलती हैं, जो गोपियों के हृदयों से चिपट उन्हें कदापि नहीं छोड़ता है, अधिक क्या कहें, जिस चूड़ा की छाया—दर्शन करके स्वयं श्रीकृष्ण भी भ्रम में पड़ जाते हैं, श्रीकृष्ण का वह चूड़ा अपनी माधुरी द्वारा जगत् को वशीभूत करके बिलास कर रहा है ॥१०

तब ललिता ने श्रीकृष्ण के ललाट पर कुङ्कुम के तिलक की रचना की—कुङ्कुम के मध्य में केसर की एक बिन्दी और बाहर

भक्तिच्छेदैरन्वितां यां सुचर्चां चित्रा चक्रे कौङ्कुमीं तत्तनौ सा ।
लावण्योर्म्मि-चञ्चलात्स्मारयत्तां दीव्यद्गोपी-कृष्णयुग्माग्नि रासे।
चित्राथ चित्रमकरोन्निज-मित्रगात्रे
मैत्री-पवित्र-चरिताम्बुद-जैत्र-कान्तौ ।
यत्तत्सखी--नयनखञ्जनबन्धनाय
कन्दर्प-शाकुनिक-बिस्तृत-जालमासीत् ॥१०६॥
नानावर्ण-सुगन्ध-पुष्पमुकुलैः पुष्पैः कृतैः पल्लवैः
क्लृप्तैः कुण्डलहार-कङ्कण-लसन्मञ्जीर-काञ्च्यङ्गदैः ।
ताभिर्याभरणैर्मुदा प्रियतनौ श्रीवेशभङ्गीकृता
सैवासां नयनैण-बन्धन-बिधौ कामस्य पाशायते ॥१०७॥

---

चारों ओर चन्दन की बिन्दियाँ सजायीं। वह तिलक-ब्रजांगनाओं के हृदयों को खण्ड खण्ड करने के लिये कन्दर्प का स्वर्णचक्र हो उठा ॥१०४॥

फिर चित्रासखी ने श्रीकृष्ण पर कुङ्कुम द्वारा खौर रचना की। वे कुङ्कुम रेखाएं श्रीकृष्ण की लावण्य-लहरियों में हिलती सी प्रतीत होने पर चित्रा सखी को भी रासलीला में क्रीड़ा करने वाली गोपी-कृष्ण की युगल मूर्त्तियों की स्मृति जगा दी अर्थात् कृष्णांग रेखा से कृष्ण और कुङ्कुम रेखा से गोपी का स्मरण हो आया ॥१०५॥

चित्रासखी ने अपने मित्र श्रीकृष्ण के नवजलधरविजयी कान्ति पर मित्रभाव से जो चित्र-बिचित्र तिलक रचना की-वह तिलक सखी श्रीराधा के नयन खंजनों के बन्धन के निमित्त कन्दर्परूपी व्याध के बिस्तृत जाल के समान हो गया ॥१०६॥

तथा नाना वर्ण के सुगन्धी कुसुमों के मुकुल, पुष्प और पल्लवों से रचित कुण्डल, हार, कंकण, सुन्दर नूपुर, कौंधनी व

पौष्पैश्चाभरणैस्तत्र राधा काण्डपटावृता ।
आलीभिर्भूषितालयश्च सेविका-निचयैः क्रमात् ॥१०८॥
ततोऽसौ वृन्दयानीतस्ताश्च तत् सौम्यकुट्टिमम् ।
ददृशुस्तत्र भक्ष्याणि फलमुख्यान्यनेकशः ॥१०६॥
पलाश-शालपत्राणां रम्भा-वल्कल-पत्रयोः ।
कुण्डी-स्थाल्यादि-पात्रेषु सम्भृतानि पृथक् पृथक् ॥११०॥युग्मकम्
भोक्तुं तान्युपविष्टोऽसौ शुभ्रपुष्पांशुकासने ।
सव्ये श्रीसुबलस्तस्य दक्षिणे मधुमङ्गलः ॥१११॥

---

बलय रूप भूषणों के द्वारा व्रजसुन्दरियों ने प्रियतम के शरीर पर जो सुन्दर बेश रचना की परिपाटी प्रकट की वह परिपाटी ही उनके नयनरूपी हिरनों के बन्धन के लिये कन्दर्प के पाश के समान आचरण करने लगी ॥१०७॥

तब सखियों ने श्रीराधा को समयानुकूल वस्त्र धारण कराये और पुष्पाभूषणों के द्वारा भूषित किया तथा सेवापर सखियों ने अन्यान्य सखियों को भी क्रम से विभूषित किया ॥१०८॥

तब वृन्दादेवी उस पद्ममन्दिर की उत्तर दिशा में वर्तमान वेदिका पर श्रीराधा-कृष्ण आदि सबको ले गयीं। वहाँ वे पलाश, साल व कदली के पत्तों व कदली के बल्कल की कुँडियों और थालों पर सजाये हुये फलादि भोज्य पदार्थों का अवलोकन करने लगे ॥१०६॥

अनन्तर श्रीकृष्ण उनका भोजन करने के लिये शुभ्र पुष्पासन के ऊपर बिछी हुई शुभ्र वस्त्रासन पर बिराजमान हुये और उनके वाम-पार्श्व में सुबल और दक्षिण-पार्श्व में मधुमङ्गल आकर बैठ गये ॥११०॥

तब श्रीराधा सखियों सहित सन्मुख बिराजी और वनाधिष्ठात्री वृन्दादेवी बारम्बार जो जो वस्तुएँ ला कर दीं उन उन

उपविष्टा पुरो राधा तानि सालो वनेशया ।
आनीयानीय दत्तानि तेभ्यः परिविवेश सा ॥११२॥
श्वेत-रक्त-हरित्-पीत-वर्णानि जाति-भेदतः ।
असस्य-श्लथसस्यैवद्रुसस्यान्यनेकशः ॥११३॥
सुकृत्त-वल्कलतया शङ्खवर्णाकृतीनि च ।
नारिकेल-फलान्यादौ तेभ्यः परिविवेश सा ॥११४॥ युग्मकम्
तेषां तैः पीततोयानां भित्त्वा निष्काशितान्यमी ।
सस्यान्यालीयुजा दत्तान्याढुः स्वादूनि राधया ॥११५॥
जाति-वर्णाकृति-स्वादुपाकसंस्कार-भेदतः ।
नानाविधानि चाम्राणि ददौ तेभ्यः क्रमेण सा ॥११६॥

---

को श्रीकृष्ण, सुबल और मधुमंगल को परोस दी ॥१११॥

श्रीराधा ने सब से पहले नारियल परोसे । नारियल अनेक प्रकार के होते हैं-सफेद, लाल, हरे और पीले । उनमें भी जिनके भीतर गिरी पड़ी नहीं है, जिनकी गिरी तरल (पानी) है, और जिनमें गिरी कुछ कुछ बनने लगी है, ऐसे नारियलों के वल्कल को उतार करके शुभ्र शंख के समान फलों को पहले परोसा ॥११२-११३॥

श्रीकृष्ण और सखाओं ने पहले नारियल का जल पान किया, फिर श्रीराधा और सखियों ने जलशून्य नारियलों को तोड़ उनके स्वादिष्ट श्वेत गिरी निकाल निकाल कर उनको दिया और वे भोजन करने लगे ॥११४॥

तब श्रीराधा ने जाति वर्ण - आकार व पाक-संस्कार के भेद से नाना प्रकार के आम उनको क्रमशः अर्पण करने लगीं ॥११५ श्रीकृष्णादि सब उन आमों का आस्वादन करने लगे, उनमें बहुत से फल ईषत् पक्व, कुछ फल खण्ड खण्ड और कुछ छिलके और गुठली बिना थे ॥११६॥

दरपक्वानि शकलीकृतान्याम्राणि कानिचित् ।
निकृत्त-वल्कलाष्ठीनि चर्व्याण्यास्वादयन्त्यमी ॥११७॥
सवल्कल-निकृत्तानि किञ्चिद्घन-रसानि च ।
ओष्ठावलोप्य-लेह्यानि पक्वान्यादन् पराणि ते ॥११८॥
पक्त्रिमाणि रसैः पूर्णान्याच्छिन्नास्यानि कानिचित् ।
सांशानि मधुराण्येते चुष्यन्तो मुदमाययुः ॥११९॥
ते कण्टकि-फलान्निष्काशितान् कोषांश्चरष्टिकान् ।
सौवर्ण्योत्पल-चाम्पेय-कोरकाभानखादिषुः ॥१२०॥
पीलूनि बहुभेदानि द्राक्षा-खर्जूरकाणि च ।
ताल-श्रीफल-जम्बूनि लवली-लकुचानि च ॥१२१॥
कदली-बदरीणाञ्च नानाभेदान् फलोच्चयान् ।
शृङ्गाट-तालबीजानि क्षीरिका-तूलकानि च ॥१२२॥

---

कुछ आम छिले हुये थे, कुछ का रस गाढ़ा था, कुछ पके हुये होठों से चाटने के ही योग्य थे और कुछ चबाने के योग्य थे। इस प्रकार के सब फल उन्होंने भक्षण किये ॥११७॥

कुछ पके हुये, रसभरे आम ऐसे थे जिनके मुख पर से छिलके हटा दिये गये थे। उन सुमधुर फलों को चूस करके उन्होंने आनन्द लाभ किया ॥११८॥

तब वे कटहल फल में से निकाले हुये सुवर्ण कमल और चम्पाकली के समान वर्ण वाले गुठली रहित गुदा का भोजन करने लगे ॥११९॥

अनन्तर अनेक प्रकार के पीलूफल, द्राक्षा, खजूर, ताल, बेल, जामुन, लीची ॥१२०॥

केला, अनेक प्रकार के बेर, सिंघाड़ा, तालबीज, खीरा, शहतूत ॥१२१॥

अङ्गीराण्यमृताङ्कानि नासपाती-फलानि च ।
नारङ्ग-कामरङ्गाणि बिकङ्कत-फलानि च ॥१२३॥
सुषेण-मातुलाङ्गानि कपित्थक-फलानि च ।
नानाभेदानि बीजानि निष्कुलाकृत-दाड़िमान् ॥१२४॥
मायाम्बूनि सुखाशानि कर्कटी-खर्व्वूराणि च ।
गुडालु-केशराजादि मूलानि मूलकानि च ॥१२५॥
शालूकाद्र-पद्मबीज-सस्यानि च बिसानि च ।
पियाल-पीलु-बदाम-बीजसस्यान्यनेकशः ॥१२६॥
सिताभिः क्षीरसारैश्च कृतान् श्रीराधयालये ।
नारङ्ग रुचकाम्रादि-फलाकार बिकारकान् ॥१२७॥
फलपुष्पयुतान् वृक्षान् शर्करा-पाकनिर्म्मितान् ।
बिल्व-दाड़िम-श्रीरुच्याम्र-नारङ्ग-रुचकादिकान् ॥१२८॥

---

अमृत तुल्य अमरूद, नासपाती, नारंगी, कमरख, करौंदा, बिजौरा, कपित्थ (कैथ) और खट्टे, मीठे, व खटमिठ अनारदाने ॥१२२-१२३॥

जो सुख से अर्थात् अनायास खाये जाते हैं और मुँह में जाते हुये माया (जादू) से पानी हो जाते हैं ऐसे ककड़ी और खरबूज और शकरकन्द व केशराल (एक प्रकार का कन्द) और मूली ॥१२४॥

पद्ममूल, कमल-बीज की कोमल कोमल गिरी, मृणाल, अनेक प्रकार के पियाल (चिरौंजी) पीलूफल, बादाम व बीजों की गिरी ॥१२५॥

और श्रीराधा द्वारा अपने भवन में मिश्री व खोवा के बने हुये फल-फूलों से शोभित वेल, दाडिम, आम, नारंगी आदि फलों के वृक्ष अर्थात् वृक्ष, पत्ते, फूल, सब शर्करापाक के बने हुये ॥१२६-१२७॥

कृष्ण-पञ्चेन्द्रियाल्हादि-गुणान् गेहे तया कृतान् ।
लड्डुकानि चन्द्रकान्ति-गङ्गाजल-मुखानि च ॥१२६॥
शर्करेन्दु-लवङ्गैला-मरिचादिभिरन्विताः ।
स्थूल-सन्तानिकाः पिष्टाः कृतानि लड्डुकानि च ॥१३०॥
पनसाम्रादिक-रसान् मधु-चन्द्र-सितान्वितान् ।
कर्पूरामृत-केल्यादीन्यानीतानि प्रियालिभिः ।१३१॥
पर्य्यवेशयदेतानि सर्व्वाणि राधिका क्रमात् ।
ताभ्यां सह हरिस्तानि बुभुजे कमलेक्षणः ॥१३२॥
पत्र पुष्प-फल-स्कन्ध-शाखा-मूलानि भूरुहाम् ।
सैतानां क्षीरसाराणां छेदं छेदमदन्त्यमी ॥१३३॥

---

और श्रीराधा द्वारा अपने गृह में श्रीकृष्ण के पाँचों इन्द्रियों को आनन्दित करने वाले चन्द्रकान्ति व गङ्गाजल आदि नाम के मोदक, तथा शक्कर, कपूर, लौंग व गोल मिर्चादिक युक्त मलाई के लड्डू ॥१२६-१३०॥

मधु, कपूर, व मिश्री मिश्रित कठहल व आम का रस, कर्पूर-केलि व अमृत-केलियें सब पदार्थ सखियाँ ले आईं ॥१३१

उनको श्रीराधा ने यथाक्रम से परोसा और श्रीकृष्ण, सुबल और मधुमङ्गल ने वे सब द्रव्य भक्षण किये ॥१३२॥

तब श्रीकृष्ण सखाओं सहित मिश्री और खोवा के बने हुये वृक्षों के पत्ते, फूल, फल, धड़, शाखा, व जड़ सब तोड़ तोड़ कर भोजन करने लगे ॥१३३॥

और बटु मधुमङ्गल उन भोज्य पदार्थों की और उनके लाने वाली सखियों की और परोसने वाली श्रीराधादिकों की समालोचना करने लगा । यह वस्तु मीठी है, यह फीकी है, यह सखी पाक करने में चतुर है यह कोरी है-इस प्रकार के परिहास वाक्य

बटुर्निन्दन् प्रशंसंश्च भक्ष्याणि च तदर्पिका: ।
सर्व्वास्ता हासयामास सनर्म्म-मुख-वैकृतैः ॥१३४॥
कर्पूर-वासितं तोयं पपुस्तेऽत्र यथासुखम् ।
ततश्चाचचमुस्तोयैः सखीदत्तैः सुवासितैः ॥१३५॥
यातस्ततः स हरिरम्बुजमन्दिरान्तः
शेतेऽत्र सत्कुसुम—कल्पित-तल्पमध्ये ।
ताम्बूलदान-पदलालन-बीजनाद्यै-
स्तत्र प्रियालिभिरमुं तुलसी सिषेवे ॥१३६॥
ताम्बूल-बीटिकामश्नन् तत्पद्मयाम्य-कुट्टिमे ।
शेते शीतल-शय्यायां सुबलेन समं बटुः ॥१३७॥
श्रीराधिकाथ सगणा मुदितोपविष्टा
कान्ताधरामृततया परिवाञ्छितानि ।

---

और घृणा सूचक मुखभंगी द्वारा वह श्रीराधादिक सभीको हँसाने लगा ॥१३४।

तब श्रीकृष्ण और सखाओं ने बड़े सुख के साथ कर्पूरादि से सुवासित जल-पान किया और सखियों द्वारा प्रदत्त वैसे ही सुवासित जल से आचमन किया ॥१३५॥

अनन्तर वहाँ से श्रीकृष्ण ने वायुकोण में स्थित पद्ममन्दिर के भीतर गमन करके कुसुम-रचित शय्या पर शयन किया। वहाँ तुलसी प्रिय सखियों के साथ ताम्बूल दान, पाद-सम्वाहन व चँवर—बीजन आदि द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा करने लगी ॥१३६॥

तब ताम्बूल भोजन कर मधुमङ्गल ने भी सुबल के साथ उस पद्ममन्दिर के दक्षिणवर्त्ती वेदिका पर जा शीतल शय्या पर शयन किया ॥१३७॥

श्रीरूपमञ्जरिकया च वनेशया च
भक्ष्याणि तानि बुभुजे परिवेशितानि ॥१३८॥
तत्र नान्दी-कुन्दवल्ल्योः सखीभिर्नर्म्मविस्तृतिः ।
आलीनामाभूत् सखिसुखस्य परिवेशिका ॥१३९॥
अथाचम्यायमुः सख्यः श्रीपद्ममन्दिरान्तरम् ।
तल्पे राधा सखीपालिः परितः समुपाविशन् ॥१४०॥
ताम्बूल-चर्व्वितं ताभ्यः श्रीहरेस्तुलसी ददौ ।
नान्दीमुख्यै धनिष्ठायै कुन्दवल्ल्यै च वीटिकाः ॥१४१॥
ततः सा तुलसी रूपमञ्जरी च वनेश्वरी ।
भक्ष्याण्युर्व्वरितान्यादुः सेवकालीचयैः समम् ॥१४२॥

---

अब श्रीराधा ललिता-विशाखादि सखियों के साथ भोजन प्रसाद ग्रहण करने को विराजी और रूपमञ्जरी व वृन्दादेवी ने परम वांछनीय श्रीकृष्ण का अधरामृत उनको परोसा और वे सब भोजन करने लगीं ॥१३८॥

वहाँ नान्दीमुखी व कुन्दलता ने जो परिहास का विस्तार किया वह भी मानो एक सखी बन कर श्रीराधा और उनकी सखियों को सहभोजन का सुख परोसने लगी अर्थात् इनका परिहास भी उनके सहभोजनसुख को बढ़ाने लगा ॥१३९॥

तब श्रीराधा और सखियों ने आचमन कर पद्ममन्दिर को गमन किया। श्रीराधा जाकर (श्रीकृष्ण के समीप) शय्या पर विराजी और सखियाँ उनकी चारों ओर बैठ गयीं ॥१४०॥

तब तुलसी ने श्रीराधा और सखियों को श्रीकृष्ण का चर्वित ताम्बूल और नान्दीमुखी, धनिष्ठा व कुन्दलता को ताम्बूल बीटिका प्रदान की ॥१४१॥

तब तुलसी, रूपमञ्जरी व वृन्दादेवी सेवापरायण सखियों के साथ अवशिष्ट भक्ष्य द्रव्य भोजन करने लगीं ॥१४२॥

तासु भुक्त्वागतास्वत्र सख्यस्तत्पूर्व्व-कुट्टिमे ।
निर्गत्य सुषुपुः सर्व्वा नान्दीमुख्यादयश्च ताः ।।१४३।।
ततः श्रीराधिका ताभ्यो ददौ ताम्बूल-चर्व्वितम् ।
वृन्दायै बीटिकां सा च तामदन्ती बहिर्ययौ ।।१४४।।
कृष्णः कान्तां तां समाकृष्य ह्रीणां हासं हासं यत्नतः स्वाननाब्जात् ।
ताम्बूलीयं चर्व्वितं तन्मुखाब्जे न्यस्यन् हृष्यन् शाययामास पार्श्वे ।
श्रीरूपमञ्जरी-मुख्य-सखीभिर्वीजनादिभिः ।
सेवितौ तौ क्षणं तत्र निद्रा-सुखमवापतुः । १४६।।
श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।

---

इस प्रकार सेविका सखियाँ भोजन और आचमन करके जब श्रीराधाकृष्ण के समीप आ गयीं तब नान्दीमुखी, कुन्द-लतादि सखियों ने पद्म मन्दिर से निकल उसके पूर्ववर्ती वेदी पर जा शयन किया ।।१४३।।

श्रीराधा ने रूपमञ्जरी आदि सेविकाओं को चर्वित ताम्बूल व वृन्दादेवी को बीटिका प्रदान की और वह उस पान-बीड़ी को चबाती हुई बाहर चली गयीं ।।१४४।।

तब श्रीकृष्ण ने हँसते हँसते लज्जिता श्रीराधा को सादर आकर्षण करके अपने मुख कमल से चर्वित ताम्बूल उनके मुख-कमल में अर्पण किया और आनन्दपूर्वक उनको अपने पार्श्व में शयन कराया ।।१४५।।

श्रीरूपमञ्जरी आदि प्रधान प्रधान सेवापरा सखियाँ चँवर-बीजन आदि के द्वारा सेवा करने लगीं और वे दोनों उस पद्ममन्मिर में क्षणकाल के लिये निद्रा-सुख को प्राप्त हुये ।।१४६।।

यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृत नामक महाकाव्य के मध्याह्नलीला

ाव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः पञ्चदशाभिधोऽयमगमन्मध्याह्नलीलामनु ॥१५॥

## —:÷॰: षोड़शः सर्गः ॰:÷:—
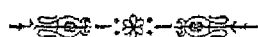
अथ क्षणात्तौ प्रतिलब्धबोधा-वुत्थाय तल्पोपरि सन्निविष्टौ ।
पूर्वं प्रबुद्धाः प्रसमीक्ष्य सख्यो ययुः सखीभ्यां सह तत्समीपम् ॥१
वृन्दाप्ययायात् स्वशिष्यौ सा बालौ विद्याविशारदौ ।
कलोक्तिमञ्जुवाक्-संज्ञौ गृहीत्वा सारिका-शुकौ ॥२॥

---

का पञ्चदश सर्ग सम्पूर्ण हुआ । यह श्रीगोविन्दलीलामृत श्री-कृष्णचैतन्यमहाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूपगोस्वामी की सेवा का फल है, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी के द्वारा प्रेरित है, श्रीमज्जीवगोस्वामी के संग से उदय हुआ है एवं श्रीरघुनाथभट्ट-गोस्वामी के वरदान से प्रादुर्भूत है ॥१५॥

श्रीराधाकृष्ण क्षणकाल में ही जागृत हो शय्या पर विराज-मान हुए। उनसे पहले ही सखियाँ जाग गई थीं । उन्होंने शय्या पर विराजे श्रीराधाकृष्ण को देखा वे सुबल और मधु-मंगल के साथ उनके निकट आ गयीं ॥१॥

तब वृन्दादेवी अपने शिष्य विद्या - विशारद सारिका-शि "कलोक्ति" और शुक-शिशु 'मञ्जुवाक्' को लेकर श्रीराधाकृष्ण के समीप आयीं ॥२॥

ततस्तौ पठतो नम्रौ जय वृन्दाबनेश्वर !
जय वृन्दाबनेशानि ! जयतात्ल्यः ! प्रसीदत । ३॥
राधा-दृगिङ्गिताभिज्ञा वृन्दा विज्ञा समादिशत् ।
पठेति कीरं कीरोऽपि पपाठानन्दयन् सभाम् ॥४॥
गुणैः स्वैर्हीना मे यदपि कविता नातिमधुरा
मता स्वाद्याथाप्यच्युत-गुणयुतत्वेन भविता ।
अयः शस्त्री स्पृष्टा मृगयु-गृहगा स्पर्शमणिना
सुवर्णत्वं प्राप्ता भवति महतां भूषणकृते ॥५॥ दृष्टान्तः
चक्रार्द्धेन्दु-यवाष्टकोण-कलसैश्छत्र-त्रिकोणाम्बरै-
श्चाप-स्वस्तिक-वज्र-गोष्पद-दरैर्मीनोद्ध्वरेखाङ्कुशैः ।

---

वहाँ वे सारिका व शुक अति विनीत भाव से पढ़ने लगे-"वृन्दाबनेश्वर की जय हो ! वृन्दाबनेश्वरी की जय हो सखी-वृन्द की जय हो ! आप सब हमारे ऊपर प्रसन्न होवें" ॥३॥

तब इंगितज्ञ वृन्दादेवी ने श्रीराधा की नयनभंगी को समझ कर अपने शुक को पाठ करने का आदेश किया और शुक भी सखीसभा को आनन्दित करता हुआ पाठ करने लगा ॥४॥

वह बोला:—यद्यपि मेरी कविता अति मधुर नहीं और प्रसाद व लालित्य आदि गुणों से विहीन है तथापि श्रीकृष्ण-गुणगण से युक्त होने के कारण साधुजनों के लिये अवश्य ही आस्वादन के योग्य होगा ठीक जैसे एक लोहे की छुरी-एक तो लोहा जो सब धातुओं में हीन है, दूसरे परिमाण में भी छोटी सी, तीसरे व्याध से छुआ जा कर उसके घर में रहती है, तथापि दैवयोग से कहीं उसका स्पर्श पारसमणि से हो जाय तो वह महत्पुरुषों के भी ग्रहण के योग्य बन जाती है ॥५॥

चक्र, अर्द्धचन्द्र, यव, अष्टकोण, कलश, छत्र, त्रिकोण,

अम्भोज-ध्वज-पक्वजाम्बवफलैः सल्लक्षणैरङ्कितं
जीयाच्छ्रीपुरुषोत्तमत्वगमकैः श्रीकृष्ण-पादद्वयम् ॥६॥स्वभावोक्तिः
श्रीकृष्णाङ्घ्रियुगं सकृच्छ्रुतिगतं सर्व्वान्यतृष्णाहरं
ध्यातं यद्विपदां विलोप-निपुणं सत्सम्पदां दायकम् ।
दृष्टं चारुतया चमत्कृतिपदं सर्व्वेन्द्रियाह्लादकं
स्पृष्टं यत् क्लमहन्तृ निर्वृतिकरं तन्मे क्रियात् काङ्क्षितम् ॥७॥
उदात्त-स्वभावोक्ती
सौभाग्यानां सद्रुचां सद्गुणानां सम्पत्तीनां प्राकृताऽप्राकृतानाम् ।
लीलागारं दातृ च ध्यात-मात्रं सर्व्वस्वं नः कृष्ण-पादाब्जमस्तु
॥८॥ उदात्त-स्वभावोक्ती

---

आकाश, धनुष, स्वस्तिक, बज्र, गोपद, शंख, मीन, उद्र्ध्वरेखा, अंकुश, पद्म, ध्वजा व पक्व जम्बुफल (जामुन) ये उन्नीस लक्षण श्रीपुरुषोत्तमत्व अर्थात् भगवत्ता के परिचायक हैं । —इन लक्षणों से युक्त श्रीकृष्ण के चरणयुगल सर्वोत्कृष्ट रूप से विराज-मान होवें ॥६॥

श्रीकृष्ण के चरण-युगल की जो कथा एक बार कर्णगोचर होने पर श्रीकृष्ण भिन्न अन्यान्य समस्त तृष्णाओं का हरण कर लेती है, जो श्रीचरणयुगल, मन में चिन्तवन करने पर समस्त विप-दाओं को नाश करने में निपुण हैं और सत् सम्पत्ति के दाता है, जो श्रीपदयुगल, नयनगोचर होने पर असीम विस्मय उत्पन्न करते और अखिल इन्द्रियों को आनन्द प्रदान करते हैं और स्पर्श किये जाने पर समस्त दुःखों का हरण कर परम सुख प्रदान करते हैं श्रीकृष्ण के वे ही सर्वसुखप्रदायक चरण-युगल मेरी अभिलाषा को पूर्ण करें ॥७॥

जो चरणकमल ध्यानमात्र से ही, प्राकृत व अप्राकृत अखिल

यस्योपासनयाप्तशक्ति-लवतश्चिन्तामणित्वं शिलाः
काश्चित् कामगवीत्वमेत्य धवलाः काश्चिच्च कल्पागताम् ।
केचिद्भूमिरुहा बभूवुरखिलाभीष्टप्रदाः प्राणिनां
तच्छ्रीकृष्ण-पदारविन्दयुगलं को नाश्रयेत् स्वप्रदम् ॥९॥

पद्गत-काव्यलिङ्गम्

परिमल-वासित-भुवनं स्वरसामोदित-रसज्ञरोलम्बम् ।
गिरिधर-पादाम्भोजं कः खलु रसिकः समीहते हातुम् ॥१०॥
लवणिम-मधुपूर्णं स्वाङ्गुलि-श्रेणिपर्णं
युवति-नयनभृङ्गव्यूहपीत सुशीतम् ।

---

सौभाग्य, सत्कान्ति, सद्गुण व सम्पत्ति को प्रदान करते है, निखिल लीलाओं के भवन स्वरूप वे श्रीकृष्ण के चरणकमल हमारे सर्वस्व धन होवें ॥८॥

जिन चरणकमलों की उपासना से प्राप्त शक्ति के लेशमात्र से कोई शिला चिन्तामणि बन गयी, कोई धेनु कामधेनु बन गई और कोई वृक्ष कल्पवृक्ष बन गया और जो समस्त प्राणियों की सकल कामनाओं की पूर्त्ति किया करते हैं श्रीकृष्ण के उन 'स्वप्रद' चरणकमलयुगल का आश्रय कौन नहीं ग्रहण करता है ? चिन्तामणि आदि केवल अभीष्टप्रद ही हैं, 'स्वप्रद' नहीं है—अपने को नहीं दे देने अथवा अपने समान ही नहीं बना लेते हैं जैसा कि श्रीचरणकमल करते हैं ॥९॥

जिन चरणकमलों का परिमल (सौरभ) त्रिभुवन को सुवासित व अपने रस के रसज्ञ भ्रमरश्रेणी को आमोदित कर रहा है, श्रीकृष्ण के उन चरणयुगल को कौन रसिक पुरुष परित्याग करने की अभिलाषा कर सकता है अर्थात् कोई नहीं कर सकता है ॥१०॥

जिन चरणकमलों में लावण्यामृत ही मधु है, अंगुलियाँ ही

नखर-निकर-रोचिः केशरं सौरभोर्म्मी-
परिमलित-दिगन्तं कृष्णपादाब्जमीडे ॥११॥ रूपकम्

पञ्चेन्द्रियाह्लादिगुणैर्महत्तमै रक्तोत्पलाब्जानि वदान्यतादिभिः।
कल्पद्रुमाणां जितवच्च पल्लवान् केनोपमेयं चरणाम्बुजं हरेः ॥१२॥
व्यतिरेकः

नख-शितिरुचि-गङ्गा कृष्णपाद-प्रयागे
तदुपरि शितिरोचिर्भानुजा सङ्गतासीत्।
अरुण-किरणधारा धातृकन्याप्यधस्ता-
ल्लसति निखिल-सर्व्वाभीष्टदेयं त्रिवेणी ॥१३॥रूपकोत्प्रेक्षे

अपूर्व्वः कंसारेश्चरणयुगलस्यैष महिमा
यदाश्रित्य ध्वान्तं स्वकदनकृते प्राप्तमरुणाम्।

---

जिनमें पत्र स्वरूप हैं, युवतियों के नेत्रभ्रमरों द्वारा पान होने वाले नख की कान्ति ही जिनमें केसर है, और सौरभ लहरियों से जो दिशाओं को सुवासित कर रहे हैं, मैं श्रीकृष्ण के उसी सुशीतल पादारविन्द की स्तुति करता हूँ ॥११॥

जिन चरणकमलों ने पाँचों इन्द्रियों को आनन्दित करने वाले अपने महत्‌गुणों से रक्तोत्पल को जीत लिया है और अपनी उदारता आदि महत्‌गुणों से कल्पतरुओं के पल्लवों को जीत लिया है, श्रीकृष्ण के उन चरणकमलों की उपमा इस त्रिभुवन की कौन सी वस्तु से दी जा सकती है? अर्थात् किसी से भी नहीं ॥१२॥

श्रीकृष्ण के चरण रूप प्रयाग में समस्त जनों की अभीष्ट-दात्री यह त्रिवेणी ही परम शोभा को प्राप्त हो रही है, कारण कि श्रीचरणों के शुभ्रवर्ण की नखकान्ति ही गंगा है, उनके ऊपर के भाग की कृष्णकान्ति ही यमुना है और पदतल (तलुवा) की अरुणकान्ति धारा ही धात्रीकन्या सरस्वती है ॥१३॥

नियुद्धेऽधः कृत्वोपरि लसति यद्वीक्ष्य सभया-
त्पुव्यूहं कुर्वन्नमलमुडुपोऽप्याश्रयदिदम् ॥१४॥
प्रथमातिशयोक्त्युत्प्रेक्षे

कलोक्तिः सा ततः सारी वृन्दया प्रेरिता दृशा।
रसज्ञां वासितां चक्रे कृष्ण-पादाब्जवर्णनैः ॥१५॥

चण्डांशोः सुष्ठवष्मारुण इह किरणैः कृष्णपादाब्जयुग्मं
शीतच्छायं प्रविष्टोऽस्त्यरुणमिदमभूद्वधाप्तमस्यारुणिम्ना।
उत्प्रेक्षेयं कवीनां मम तु मतमिदं कृष्णरागातिरक्तं
राधा-चित्तं ममैवास्पदमिदमिति तद्वयाप्नुत स्वस्य धाम्ना ॥१६॥
उत्प्रेक्षा

---

अहो ! श्रीकृष्ण के चरणयुगल की कैसी अपूर्व महिमा है। अन्धकार को अपने अँधेरपने का बड़ा दुःख था जिसे नाश करने के लिये उसने श्रीकृष्ण के श्रीचरणों का आश्रय लिया और युद्ध करके अरुण ( सूर्यसारथी ) को नीचे कर आप ऊपर हो गया और तब तो अन्धकार द्वारा अरुण का पराजय देख कर पूर्ण-चन्द्रमा को भी भय हो आया और उसने अपना कायव्यूह प्रकट कर अर्थात् एक से अनेक रूप बना कर श्रीचरणनखों का आश्रय ग्रहण किया ॥१४॥

अब कलोक्ति नाम की सारी ( मैना ) भी वृन्दादेवी के नयन इंगित से प्रेरित होकर श्रीकृष्ण के चरणकमलों की वर्णना करती हुई अपनी रसना को सुवासित अर्थात् पवित्र करने लगी ॥१५॥

वह बोली:— कवि कुल उत्प्रेक्षा किया करते हैं कि सूर्यदेव की किरणमालाओं से शरीर जब जलने लगा तो अरुण (सूर्य्य-सारथी ) ने सुशीतल छायावाले श्रीकृष्ण के चरणकमलों का

लीलारबिन्दमरबिन्ददृशां कराब्जे
कङ्केल्लि-पल्लवमुरोज-सुवर्ण-कुम्भे ।
रक्तोत्पलं यदिह हृत्सरसीद्मीडे
पादारबिन्दमरविन्द--बिलोचनस्य ॥१७॥ मालारूपकम्
चन्द्रेन्दीबर-चन्दनेन्दु-नलदाच्छीतं लसत्सौरभं
राधाया स्तनसङ्गलोलुपतमं तत्पाणि-संलालितम् ।
तच्छ्रीकुङ्कुम-चर्चितं सुललितं शोभालि-लीलास्पदं
तच्छ्रीकृष्ण पादाम्बुजं भवतु नः सम्बाहनीयं सदा ॥१८॥
उदात्त-स्वभावोक्ती

---

आश्रय लिया जिसके कारण ही श्रीकृष्ण के चरणकमल भी अरुण ( लाल ) हो गये, परन्तु मेरे मत में तो "श्रीकृष्ण के पादपद्म मेरे ही एक मात्र आश्रय हैं" ऐसा बिचारकर श्रीराधा के चित्त ने अनुरक्त अर्थात् अनुरागयुक्त होकर उन चरण-कमलों का आश्रय लिया है, श्रीराधाके चित्त की अरुणिमा से ही श्रीकृष्ण के पादपद्म भी अरुण हो गये हैं ॥१६॥

श्रीकृष्ण के जो चरणकमल कमलनयन ब्रजसुन्दरियों के कर कमलों में नीलकमल के समान हैं, उनके स्तन रूप स्वर्ण कलशों के लिए अशोक के अरुण पल्लव के सदृश हैं और उनके हृदय सरोबर पर रक्तोत्पल के सदृश हैं, कमलनयन श्रीकृष्ण के उन चरणकमलों की मैं निरन्तर स्तुति करती हूँ ॥१७॥

श्रीकृष्ण के जो चरणकमल चन्द्रमा, नीलकमल, चन्दन, कपूर व नलद (खस) आदि शीतल बस्तुओं से भी शीतल एवं सौरभयुक्त हैं, श्रीराधा के बक्षोज मंडल के संग के लिये अतिशय लोलुप हैं, श्रीराधा के करकमलों द्वारा संलालित हैं, उनके कुचकुंकुम द्वारा चर्चित हैं, अतिशय मनोहर शोभ

सभ्य-कर्णौ सुधा-पूर्णौ रचयन् राधयेरितः ।
ससारिकः शुकोऽन्यानि कृष्णस्याङ्गान्यवर्णयत् ॥१९॥
गुल्फौ वकारेर्लसतोऽतिचिक्कणौ लावण्यभङ्गोच्छलितौ सुवर्त्तुलौ ।
कलिन्दकन्या-तनु-वीचिनिर्भराद्दुद्ध्वद्धितेन्दीवर-कोरकाविव ॥२०

उत्प्रेक्षा

लावण्य धन्य--मधुपूर्ण--तमाल--नव्य
पर्णातिचत्रपुटिके घुटिके मुरारेः ।
आलिह्य नेत्ररसना--शिखया सकृद्ये
मत्ता विघूर्णति सदा ललनालिरारात् ॥२१॥ रूपकानुमाने
श्रीमत्पदाम्बुजयुगोपरि पूतनारे-
र्निह्नुत्य गुल्फयुगलस्य मिषेण धात्रा ।

---

सहित लीलादेवी के विलासस्थान हैं, वे ही सुन्दर और सौरभ-शाली श्रीकृष्ण के चरणकमल सदाकाल के लिए मेरे सेवनीय होवें ॥१८॥

तब श्रीराधा द्वारा प्रेरित हो सारिका सहित शुक सभ्य सखी-वर्ग के कर्णों को सुधा से पूर्ण करते हुए अर्थात आनन्दित करते हुए श्रीकृष्ण के अन्यान्य श्रीअंगों का वर्णन करने लगे ॥१९॥

श्रीकृष्ण की जंघाएँ यमुना की प्रवाह के तुल्य हैं, जिनमें लावण्य-लहरियाँ उमड़ रही हैं, और नीलकमल के दो अध-खिले कलियों की भाँति दो सुन्दर सुन्दर गोल गोल गुल्फ ( घुटी ) उठे हुए शोभा दे रहे हैं ॥२०॥

उन गुल्फों के भ्रमरी हैं ललना श्रेणी । वे अपने नेत्र रूपी रसनाओं द्वारा मुरारि के लावण्य धन्य मधु से पूर्ण तमाल के नवीन पत्रों द्वारा रचित अति विचित्र सम्पुट की भाँति उन गुल्फों का अवलेहन ( चाट ) करती हैं और तत्क्षण उन्मत्त विह्वल हो जाती हैं ॥२१॥

श्रीराधिकानयन--कीरयुगस्य पुष्ट्यै
मन्ये न्यधायि करमर्द्दफले सुपक्के ॥२२॥ उत्प्रेक्षारूपकापह्नुतयः
बभौ हरेः श्रीघुटिका-युगं तत् सुश्लिष्ट पार्श्वं यदवाप शश्वत् ।
राधामनोवृत्ति–कुमारिकालेः कुमारयन्त्या लघुकन्दुकत्वम् ॥२३॥
रूपकोत्प्रेक्षे

गोकुल-कुलयुवतीनां धैर्य्योद्भट-विनश्यैऽस्त्यतनोः ।
हरि-जङ्घायुगदम्भा-लघुपरिघ-युगं तमाल-सारस्य ॥२४॥
रूपकोपह्नुती

मरकत--मणिरम्भास्तम्भ--सम्भेदि धात्रा
भुवन--भवन मूलस्तम्भतां लम्भितं यत् ।

---

पुनः गुल्फों की अन्य उपमा देते हैं:—पूतनारिपु श्रीकृष्ण के दो मनोहर चरणकमलों के ऊपर दो गुल्फों के मिस से विधाता ने मानो तो दो कमरख के फल ही छिपा कर रख दिये हैं जिससे कि श्रीराधा के नेत्र रूपी दो शुक पक्षियों का पोषण हो सके ॥२२॥

पुनश्चः—जिनके दोनों पार्श्व सुडौल हैं श्रीकृष्ण के वे दो गुल्फ दो छोटे छोटे कन्दुक (गेंद) हैं, जिनसे श्रीराधा की मनोवृत्ति रूपिणी गोप कुमारिकाएँ सदा खेला करती हैं अर्थात् श्रीराधा की मनोवृत्तियों में वे गुल्फ सदा स्थित रहते हैं— ऐसे वे गुल्फ विशेष शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥२३॥

अब श्रीकृष्ण की जंघाओं का वर्णन करते हैं:—गोकुल की कुलयुवतियों के धैर्य्य रूप उद्भट्ट सेना का विनाश करने के लिए श्रीकृष्ण की दो जँघाओं के छल से कन्दर्प के दो छोटी छोटी गदाएँ बर्तमान हैं ॥२४॥

दूसरी उपमाः—श्रीकृष्ण की वे जंघाएँ मरकतमणि के बने

युवति--निचय--चेतः पीलु--नीलाश्मकीलं
प्रणयतु हरिजङ्घायुग्ममङ्घोविघातम् ॥२५॥ व्यतिरेक-रूपके

दीव्यतो लवणिमामृतभङ्ग चारु-हंसक-कला-ललितान्ते ।
देहकान्ति-यमुना-लघुधारा सन्निभे मुररिपोः प्रसृते ते ॥२६॥
व्यतिरेक-रूपके

सौन्दर्य्य-सौष्ठव-विलोकनतः प्रलुब्धे
जङ्घे मिथो मिलितुमत्य समुत्सुके ये ।
ते वेणु--वादनकृते स्थिरतां गतेऽस्मिन्
लब्धान्तरेऽनुपरिरभ्य हरौ चिरं स्तः ॥२७॥ उत्प्रेक्षा

माधुर्य्य-लक्ष्म्या रुचिरासनद्वयं लावण्यवल्ल्याशुरूपर्व्वयुग्मकम् ।
शोभा-श्रियोऽलङ्कृति-पेटिकायुगं जानुद्वयं भाति मनोहरं हरेः ॥२८॥
मालारूपकम्

---

हुए कदली-स्तम्भ हैं जिन्हें विधाता ने त्रिभुवन रूप भवन के आधार-स्तम्भ के रूप में स्थापित किया है और जो युवतियों के चित्तरूपी हस्तियों को वशीभूत करने के लिये इन्द्रनीलमणि के अंकुश हैं—श्रीकृष्ण की ऐसी जंघाएँ हमारे पापों का विनाश करें ।२५॥

तीसरी उपमाः—श्रीकृष्ण की अंगकान्ति रूपिणी यमुना की दो लघु धाराओं की भाँति वे दो जंघाएँ शोभा पा रही हैं, जिनमें लावण्यामृत की लहरियाँ खेल रही हैं और नूपुर के रूप में हंस-छौना हैं जिनके कल-कूजन से श्रीचरण के अग्रभाग मनोहर बने हुए हैं ॥२६॥

वे जंघाएँ परस्पर की सुन्दरताई व सुघराई के दर्शन कर मिलने के लिए बड़ी उत्सुक हुईं तो श्रीकृष्ण के वंशी बजाते समय श्रीअंग के स्थिर होने पर उनको अवसर प्राप्त हो गया और तब क्या वे परस्पर लिपट कर स्थिर हो रही हैं ? ॥२७॥

रम्योरुपर्व्वद्वयमद्भुतं हरे—
र्महेन्द्रनीलं लघु सम्पुटद्वयम् ।
असङ्ख्य—गोपाङ्गना—कुलाङ्गनातते—
रत्ते चित्तचिन्तामणयोऽत्र मान्ति यत्॥२६॥रूपकाधिकानुमानानि
प्रसारणे यद्वलिमञ्चिकुञ्चने श्रीपादयोर्निर्वलितं सुमांसलम् ।
श्रीराधिका-श्रीकर-लालितं हरेस्तज्जानु-युग्मं रुचिरं श्रियेऽस्तु नः॥
॥३०॥ स्वभावोक्तिः
ऊरुद्वयं सुवलितं ललितं बकारेः पीनं सुचिक्कणमधःक्रम-कार्श्ययुक्तम् ।
कन्दर्पवृन्दवरनर्त्तकलास्यरङ्ग लावण्यकेलिसदनं हृदि नश्चकास्तु ॥
॥३१॥ रूपकस्वभावोक्ती

---

श्रीकृष्ण के मनोहर घुटने माधुर्य्य-लक्ष्मी के सुन्दर दो आसन, लावण्यलता के परिपुष्ट दो पर्व ( पोर ) तथा शोभा सम्पत्ति के मानो अलंकार-पेटी ( शृङ्गार-दान ) के रूप में शोभा पा रहे हैं ॥२८॥

श्रीकृष्ण के ये दो अद्भुत रमणीय घुटने इन्द्रनीलमणि के दो क्षुद्र सम्पुट ( पिटारी ) हैं। इनकी अद्भुतता यही है कि ये स्वयं तो क्षुद्र हैं परन्तु इनमें असंख्य गोपियों के चित्त समा जाते हैं ॥२६॥

जिन घुटनों में चरण फैलाते समय बलि अर्थात् रेखाएँ पड़ जाती हैं और सिकोड़ते समय वे रेखाएँ मिट जाती हैं और जो घुटने श्रीराधा के कर-कमलों द्वारा सहलाये जाते हैं, श्रीकृष्ण के वे दो मनोहर घुटने हमारा मंगल करें ॥३०॥

बकारि श्रीकृष्ण के जो स्थूल ऊरुयुगल सुडौल हैं, ऊपर स्थूल और नीचे क्रमशः कृश होते गये हैं तथा जो अखिल कन्दर्प

जम्भारि-रत्नघटितं किमजाण्डशाला
स्तम्भद्वयं किमतनोर्मख-यूपयुग्मम् ।
किंवेदमस्ति ललना--हृदयेभबन्धा—
लानद्वयं न तदिदं हरिसक्थि युग्मम् ॥३२॥　　निश्चयान्तसन्देहः

उरूच्छलाच्छ्रोणिवराङ्गनोच्च-स्थलीभवाधोमुखनीलरम्भे ।
एते हरेर्य्ये ललनाक्षिकीर- पुष्ट्यै स्वमाधुर्य-फलैरलं स्तः ॥३३॥
　　रूपकापह्नुती

रम्भालि-गर्व्व-भरदारण-सन्निवेशे
मत्तेभ-हस्त-मदमर्द्दन-मार्द्दवे ये ।
श्रीराधिका--करभ--सन्तत--सेव्यमाने
केनोपमान्तु कवयो हरि-सक्थिनी ते ॥३४॥　　व्यतिरेकः

---

रूप नर्त्तकी की नृत्यस्थली हैं, वे उरुयुगल हमारे हृदय में प्रकाशमान् होवें ॥३१॥

श्रीकृष्ण के ये उरुयुगल क्या इन्द्रनीलमणिनिर्मित ब्रह्माण्ड-भवन के दो स्तम्भ हैं, अथवा कन्दर्प-यज्ञ के दो यूप (पशु बाँधने का काष्ठ) हैं अथवा ललनाओं के हृदय-हस्तियों को बाँधने के लिए दो आलान ( खूँटा या खम्भा ) हैं ॥३२॥

श्रीकृष्ण की श्रोणि ( नितम्ब ) एक उच्चभूमि सदृश है जिसमें नीचे की ओर उरुयुगल रूप दो नीले कदली-वृक्ष शोभा पा रहे हैं जो अपने माधुर्यफल द्वारा ललनाओं के नेत्ररूपी शुक पक्षियों के पोषण करने में अति समर्थ हैं ॥३३॥

पूर्वोक्त उपमाएँ सब अनुमान मात्र ही हैं, वस्तुतः श्रीकृष्ण के उरुद्वय अनुपमेय हैं—निरुपम हैं अतः कहते हैं:—कदली के वृक्ष समीप समीप होते हैं परन्तु कदली-श्रेणी के गर्व का विनाश करने वाले उन उरु युगल का सन्निवेश ( समीप-स्थिति )

विस्तीर्ण--पीनमतिसुन्दर--सन्निवेशं
रासस्थलं सरति काम--नटार्बुदानाम् ।
आभीर--धीर--रमणी--कमनीय-शोभं
श्रीश्रोणिमण्डलमलं विलसत्यघारेः ॥३५॥ रूपकम्

कटीरबिम्बं लसदूर्ध्वकाय-तमाल-नीलाश्मकृतालवालम् ।
कृष्णस्य लावण्य जलालि-खेलत् काञ्ची-मराली वलितं विभाति ॥
॥३६॥ रूपकम्

कृष्णाङ्गसिंहासन-सन्ततोप-विष्टस्य राधा-हृदयस्य राज्ञः ।
धात्रा कृतं श्रोणि-मिषात् सुखाप्त्यै नीलांशुक-स्थूल-विधूपधानम् ॥
॥३७॥ रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षाः

---

है, जिनकी मृदुता मदोन्मत्त गजराज के सूंड के मद को हरने में समर्थ है और जो उरुयुगल श्रीराधा के कराग्रभाग से सदा सेवित हैं, श्रीकृष्ण के उन उरुयुगल की उपमा कविजन कौन सी वस्तु से देंगे अर्थात् किसी वस्तु से भी नहीं ॥३४॥

अब नितम्ब की शोभा वर्णन करते हैं:— जो अतिशय विस्तीर्ण और स्थूल हैं परन्तु सुन्दर रूप से मिले हुए हैं, जो रति सहित अर्बों कामदेवों की विलास-स्थली है अतएव गोपों की धीर रमणियों द्वारा वांछित हैं, श्रीकृष्ण की ऐसी शोभा वाले नितम्ब मंडल विशेष शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥३५॥

अब कटि की शोभा वर्णन करते हैं:-- श्रीकृष्ण की देह का ऊपर का भाग एक तमालवृक्ष है जिसके मूल में जल-रक्षा के लिए नीलमणि का कटि रूपी आलवाल ( पौधे के सींचने के लिये जड़ में बनाया हुआ घेरा--थाल ) है जिसमें श्रीकृष्ण का लावण्य मानो जलक्रीड़ा करता रहता है, जो कौंधनी रूपा हँसिनियों से घिरा रहता है —श्रीकृष्ण का एसा वह कटिमंडल शोभित हो रहा है ॥३६॥

ये गोपिका-दृक्शफरालि-केलये लावण्यवन्यामृत-पूर्ण-पल्वले ।
ये राधिका-चित्त-मृगेन्द्र-कन्दरे ते सुन्दरे नौमि हरेः ककुन्दरे ॥
॥३८॥ रूपकम्

अवस्थितर्य्यग्रेखासरिदुपरि सा नाभि-सरसी
तयोर्मध्ये वस्तिभ्रु वमघरिपोरस्ति पुलिनम् ।
सदा रासक्रीड़ां यदिह निजवृत्त्यद्भुतनटी-
चयैः श्रीराधाया हृदयनटराजः प्रणयति ॥३९॥

रूपकानुमानोत्प्रेक्षाः

श्रीवस्तिरोमावलि-नाभि-दम्भा-न्निपानसद्रज्जु-सुधोदकूपान् ।
तृषार्त्त-गोपीगण-गोगणानां पानाय धाताऽसृजदच्युताङ्गे ॥४०॥

रूपकानुमानापह्नुत्युत्प्रेक्षाः

---

श्रीराधा का हृदयरूपी राजा सदैव श्रीकृष्ण के देहरूप सिंहासन पर विराजमान रहता है अतएव विधाता ने नितम्ब के छल से नीले वस्त्र का एक स्थूल व सुकोमल उपधान (तकिया) राजा के सुख प्राप्ति के लिये बनाया है ॥३७॥

हम श्रीकृष्ण के सुन्दर ककुन्दर ( नितम्ब पर का गड्ढा ) को नमन करते हैं जो व्रजाङ्गनाओं की दृष्टि रूपी शफरियों के विलास के लिये लावण्य रूप जलामृत से पूर्ण एक क्षुद्र सरोवर के समान है और श्रीराधा के चित्त रूपी मृगराज के निवास के लिये पर्वत—गुहा के समान है ॥३८॥

श्रीकृष्ण की नाभी के नीचे का भाग ही पुलिन है, उसके नीचे के भाग में जो टेढ़ी रेखा है वही नदी है और उसके ऊपर नाभी ही सरोवर है । इस पुलिन में श्रीराधा का हृदय रूपी नटराज अपनी मनोवृत्तियाँ रूपी नटिनियों के साथ सदा रासलीला करता रहता है ॥३९॥

गोपीमनोधान्यचयान्यवासना-तुषापहारोत्तर-संस्कृतौ विधिः ।
नीलोपलोलूखलतां निनाय यत् कृष्णावलग्नं हृदि मे चकास्तु तत्
॥४१॥ रूपकम्

कृष्णावलग्नस्य मिषाद्धुमापते-र्विस्पर्द्धयाराधनयार्दिते मुहुः ।
पूर्व्वापर-स्थूल-विभाग-संयुतो धात्रा वितीर्णो डमरुः स्मराय किम्
॥४२॥ उत्प्रेक्षापह्नुती

हरेर्वक्षः ककुद्मत्योर्विसर्गमन्तरास्थितम् ।
मध्यदम्भाद्वयो नव्यं जैह्वा-मूलाक्षरं व्यधात् ॥४३॥ उत्प्रेक्षा

---

पुनश्चः— ब्रजाङ्गनाओं की इन्द्रियाँ ही तृसातुर गौएँ हैं जिन के जल पीने के लिए विधाता ने श्रीकृष्ण के अंग में शोभायुक्त "वस्ति" ( नाभि के नीचे का भाग ) को "निपान" ( कूए के समीप का जलाशय ) बनाया है और इसके ऊपर की रोमावली को डोर बनाया है ॥४०॥

धान के तुष (छिलका) को हटाने के लिये जैसे ऊखल चाहिये वैसे ही विधाता ने ब्रजसुन्दरियों के मनोरूप धान समूह को अन्य वासना रूप तुष से पृथक् करने के लिए श्रीकृष्ण के अंग में 'अवलग्न' ( शरीर का मध्य भाग उदर ) को नीली शिला का एक ऊखल बनाया है । श्रीकृष्ण का वह "अवलग्न" (मध्य-भाग ) हमारे हृदय में निरन्तर प्रकाशमान होवे ॥४१॥

श्रीकृष्ण का पूर्वभाग व अपर भाग युक्त अवलग्न ( मध्य-देश ) क्या डमरू तो नहीं है जिसे उमापति शिव से स्पर्द्धा करके कामदेव द्वारा विधाता की आराधना करने पर विधाता सन्तुष्ट हो कर कामदेव को दे दिया हो ? ॥४२॥

श्रीकृष्ण का नवीन वयस अर्थात् यौवन एक विसर्ग अर्थात् विशेष सृष्टि है जिसे मध्य देश के छल से विधाता ने वक्षः-

दृष्ट्वा बकारेरवलग्न-सौष्ठवं निजावलग्नस्य कुकीर्त्ति-शङ्कया।
दुर्गासु दुर्गाजनकस्य भूभृतो दरीषु धारीन्द्रगणा विलिल्यिरे ॥४४॥
उत्प्रेक्षा

लावण्य-वन्याभ्रम-भङ्गपूर्णे बकीरिपोर्नाभिह्र-दे गभीरे।
तृषार्त्ता-गोपी-हृदयेभ-पालिमग्नैव नोन्मज्जति सा कदापि ॥४५॥
रूपकोत्प्रेक्षे

श्रीकृष्णविग्रह--तमाल--सुरद्रुमेऽस्मिन्
शोभामरन्दभृत-नाभि-सुकोटरोऽस्ति।
लोभाद्वधू-दृगलि-पालिरिह प्रविष्टो
यत् सा पुनर्न हि निरेति रसे निमग्ना ॥४६॥ रूपकानुमाने

---

स्थल और नितम्ब के मध्य में जिह्वामूलीय नामक अर्थात् "×" इस प्रकार के बक्राकृति वर्ण के रूप में विधान किया है। तात्पर्य विसर्ग जैसे बक्राकृति वर्ण "×" रूप होता है वैसे ही श्रीकृष्ण के नितम्ब और वक्षःस्थल को तो स्थूल परन्तु कटि देश को क्षीण बनाया है ॥४३॥

श्रीकृष्ण के उदर देश की शोभा का दर्शन करके क्या सिंह समूह इस आशङ्का से कि हमारे प्रसिद्ध क्षीण कटि की कीर्त्ति में कहीं कलङ्क न लग जाय, भाग कर पार्वति-पिता गिरिराज हिमालय की दुर्गम गुफाओं में जा छिपा है ? ॥४४॥

श्रीकृष्ण का नाभी एक गम्भीर ह्रद है जो लावण्य रूपी जलसमूह की भँवरदार लहरियों से पूर्ण है जिसमें निमग्न हो कर ब्रजाङ्गनाओं का तृषातुर चित्त रूपी गज-समूह कभी निकल ही नहीं पाता है ॥४५॥

पुनश्च:— श्रीकृष्ण की देह एक तमाल तरु सदृश है और शोभारूपी मकरन्द से परिपूर्ण नाभि एक कोटर ( खोंतर )

विष्णोर्गङ्गाजनि बलिनुतान्नीचगाऽग्रेऽङ्घ्रिपद्मात्
तन्मात्सर्य्यात्त्रिवलिमहितादूर्ध्वगा नाभि-पद्मात् ।
शौरेः कृष्णाऽजनि ननुरुहालिच्छलात् पश्यतां या
तस्मिन् प्रीतिं जनयति परां बासनां संविधूय ॥४७॥

अपह्नुत्युत्प्रेक्षा-व्यतिरेकाः

नाभीबिलात् सामि समुत्थिता हरे-
र्या भाति रोमाबलीकृष्ण--पन्नगी ।
स्व पश्यतां सूक्ष्मतमाप्यहर्निशं
चित्तानिलान् सञ्चुलुकीकरोति सा ॥४८॥ रूपकम्

---

सदृश है जिसमें गोपवधुओं के नेत्र रूप अलिमालाएँ प्रवेश कर रस में डूब फिर निकल नहीं पाती हैं ॥४६॥

बलिराज द्वारा स्तुत वामन रूपी श्रीकृष्ण के चरण कमल से जैसे गङ्गा जी की अधोगामिनी धारा प्रकट हुई थी वैसे ही उस मात्सर्य ( ईर्ष्या ) करके श्रीकृष्ण के नाभी कमल से रोमावली रूप उद्र्ध्वगामिनी यमुना प्रकट हुई हैं। वामनभगवान् की स्तुती तो एक बलिराज ने की थी, परन्तु श्रीकृष्ण के अंग में तो त्रिबलि ( उदरपर की तीन रेखाएँ ) रूप तीन तीन बलि राजा नाभि कमल की पूजा कर रहे हैं। यह रोमावली रूप यमुना नदी अपने दर्शक जनों की अन्य सब बासनाओं को धो बहा करके श्रीकृष्ण में ही अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करा देती है ॥४७॥

पुनश्चः—श्रीकृष्ण की नाभि एक बिल के समान है जिसमें से रोमावली रूप कृष्ण वर्ण सर्प आधा ही ऊपर निकला हुआ है। वह सर्प अत्यन्त छोटा होने पर भी अपने दर्शक—

लवणिम--मधु पीत्वा नाभि—पद्मान्मुरारे-
र्व्रज--युवति–जनानां नेत्र-भृङ्गार्भकालिः ।
उदर–नलिन–पत्रे या पपातोच्छलन्ती
तनुरुहतलि-दम्भात् सैव शेते प्रमत्ता ॥४६॥ रूपकापह्नुती
जित–चलदल–नीलाम्भोजिनी–पर्णजालं
मधुरिम-हृत-पश्यल्लोक-नेत्रालिमालम् ।
तिलकितमिव लोमश्रेणि-कालीयकेन
त्रिभुवन-जयलक्ष्म्या भाति गोविन्द-तुन्दम् ॥५०॥
व्यतिरेक-रूपकोत्प्रेक्षाः
कस्तूरिकालिप्त-तमाल-नव्य-दलोघमहृत सौरभ-मार्दवाभम् ।
अनुन्दिलं तुन्दिलिताखिलाक्षि-भृङ्गालि दीव्यत्युदरं बकारेः ॥५१॥
व्यतिरेक-रूपकोत्प्रेक्षाः

---

जनों के चित्तरूपी पवन को अहर्निश पान किया करता है क्यों कि सर्प का आहार ही वायु है ॥४८॥

व्रजसुन्दरियों के नेत्ररूपी भ्रमर—शिशुगण श्रीकृष्ण के नाभि कमल से लावण्य—मधु का पान कर मतवाले बन जब उड़े तो उदर रूपी पद्म–पत्र पर जा गिरे। वेही भ्रमर–शिशुश्रेणी ही रोमावली के छल से शयन कर रहे हैं ॥४६॥

श्रीगोविन्द का उदर, रोमावली रूप तिलक से युक्त हो कर मानो त्रिभुवन विजय—लक्ष्मी की भाँति शोभित हो रहा है। ऐसे सुन्दर उदर ने अश्वत्थ (पीपल) व नीलकमल के पत्र–जाल को पराजय कर दिया है तथा दर्शनकारी जनों को अपने माधुर्य द्वारा आकर्षित कर लिया है ॥ ५० ॥

जिस उदर के सौरभ और मृदुलता युक्त कान्ति ने कस्तूरी लिप्त तमालतरु के नवीन—पत्रों के गर्व का हरण कर लिया है

हृद्य च्छलरानुरुहच्छल--निःसृतश्री-
नाभीहृदानुपतितादि--रसप्रवाहम् ।
अल्पोच--पार्श्व युगलं दरनिम्नमध्यं
मध्ये मनो मम हरेरुदरं चकास्तु ॥५२॥

अपह्नुत्युत्प्रेक्षा-स्वभावोक्तयः

राधाचित्त-मरालदृक्-शफरिका-शश्वद्विलासास्पदं
काञ्ची-सारसपालि-निस्वनि-तटं लोमालि-शैवालकम् ।
लावण्यामृत-पूरितं त्रिवलिका-सूक्ष्मोर्म्मि-विभ्राजितं
श्रीनाभी-नलिनं लसत्यघरिपोः श्रीतुन्द-सत्पल्वलम् ॥५३॥ रूपकम्
श्रीराधिका-पार्श्वमतल्लिका-युग-स्वप्रेयसी-स्पर्श-समुत्सुकौ सदा ।
श्रीपार्श्व-सन्नागर-तल्लजौ हरेः सुवर्त्तुलौ स्निग्ध-मृदू विराजतः ॥
॥५४॥ रूपक-स्वभावोक्ती

---

और जो समस्त जनों के नेत्ररूप भ्रमर श्रेणी को परिपुष्ट करता रहता है; ऐसा अति क्षीण-उदर शोभा को प्राप्त हो रहा है ॥५१॥

जिस उदर पर हृदय से निकली हुई रोमावली के छल से शृङ्गार—रस की धारा नाभी-ह्रद में जा प्रवेश कर रही है और जिस के दोनों पार्श्व कुछ ऊँचे हैं और मध्यभाग कुछ नीचा है, श्रीकृष्ण का वही उदर मेरे मन में प्रकाश मान होवे ॥५२॥

पुनश्चः— श्रीकृष्ण का उदर एक क्षुद्र सुन्दर सरोवर है जो श्रीराधा के मनोरूप हंस व नयन रूपा शफरी की सतत विलास-स्थली है, जहाँ कौंधनी रूप सारस समूहों का मधुर नाद हो रहा है, जो लावण्यरूप अमृत से परिपूर्ण है, त्रिवलि रूप छोटी छोटी लहरियों द्वारा सुशोभित है, तथा शोभमान नाभिकमल द्वारा युक्त है ॥५३॥

श्रीकृष्ण के दो सुडौल पार्श्व (बगल) दो प्रशस्त नागर

रेखास्वरूप--रमयाश्रित--वामभागं
श्रीवत्स-सच्छवि-विराजित-दक्षिणांशम् ।
कण्ठस्थ-कौस्तुभ-गभस्ति-विराजमानं
शश्वद्विलास--ललितं बनमालिकाया: ।।५५।।
श्रीबल्लवीहृदय-दोहद-भाजनं श्री-
राधा-मनोनृप- हरिन्मणि-सिंहपीठम् ।
त्रैलोक्य-यौवत-मनोहर-माधुरीकं
वक्षःस्थलं सुविपुलं विलसत्यघारे: ।।५६।। युग्मकम्

रूपक-स्वभावोक्ती

मुक्तावली--सुरधुनी--तनुरोमराजी
भास्वत्-सुता-तरलकान्ति-सरस्वतीनाम् ।
सङ्गेन मङ्गलकरं त्रिजगज्जनानां
कृष्णस्य नौमि तमुरःस्थल-तीर्थराजम् ।।५७।। रूपकम्

---

हैं जो श्रीराधिका के दो पार्श्व रूपा प्रशस्त प्रेयसियों से मिलने के लिए सदा समुत्कण्ठित हो बिराजते हैं ।।५४।।

अब वक्षःस्थल का वर्णन करते हैं, यथा:—जिसके वाम-भाग में रेखा रूप से लक्ष्मी आश्रित है, दक्षिण—भाग-में श्री-वत्स चिन्ह् शोभा दे रहा है, जहाँ कण्ठस्थ कौस्तुभमणि की किरणमाला बिराजमान है, जो सदा बनमाला द्वारा शोभित रहता है, जो ब्रजसुन्दरियों के हृदय की कामनाओं का आधार है, व श्रीराधा के मनोरूप राजा के लिए नीलमणि का सिंहा-सन है, तथा जिसमें त्रिभुवन को युवतियों की मनोहर माधुरी सदा वर्त्तमान है, श्रीकृष्ण का ऐसा सुन्दर व सुविशाल वक्षः स्थल शोभा दे रहा है ।।५५-५६।।

श्रीकृष्ण के अंग पर मोतियों की माला ही गंगा है, रोमा

दोःस्तम्भयुग्समनु कान्तिवटी-निबद्धा
वक्षःस्थली-लवणिमोच्छ्रलिता मुरारेः ।
अश्रान्त-दोलन-विहारि-रतीश-यूनो-
र्दोलेव जिष्णु-मणि-सङ्घटिता विभाति ॥५८॥ रूपकोत्प्रेक्षे

वक्षो हरेर्मदन-शाकुनिकस्य मन्ये
गोपाङ्गना—नयनखञ्जन-बन्धनाय ।
श्रीवत्स-कुण्डलिकयाञ्चितमङ्ककील-
लावण्यजाल-वितति-स्थलतां प्रपेदे ॥५९॥ रूपकोत्प्रेक्षे

---

वली ही यमुना है तथा हार मध्य जटित मणियों की अरुण-कान्ति ही सरस्वती है। अतएव इन तीन तीर्थों के संगम द्वारा त्रिलोकी के प्राणियों का मंगल करने वाले श्रीकृष्ण के इस वक्षःस्थलरूपी तीर्थराज प्रयाग को मैं वन्दना करता हूँ ॥५७॥

हिंडोले का विहार ही जिनका स्वभाव है ऐसे कामरूप युवक व रतिरूपा युवती के लिए श्रीकृष्ण का वक्षःस्थल इन्द्रनीलमणि का बना हुआ एक हिंडोला है—इसके दो बाहु ही दो खम्भे हैं, कान्तिरूप रस्सी से यह हिंडोला बंधा हुआ है और लावण्य द्वारा उज्ज्वल हो रहा है ॥५८॥

मेरे विचार में श्रीकृष्ण का वक्षःस्थल कन्दर्प रूपी व्याध द्वारा ब्रजबालाओं के नयन रूपी खंजन पक्षियों को फँसा लेने के लिए एक आधार-रूप स्थल बना हुआ है, जहाँ देह का लावण्य रूपी जाल फैला हुआ है और स्तन के चारों ओर जो कुण्डलाकार में श्वेत रोमावली (श्रीवत्स) व स्वर्णरेखाकार-लक्ष्मी चिन्ह से युक्त अंक (दो स्तनों के मध्य का भाग) है वही कील (खूँटा) है जिससे वह जाल बँधा हुआ है ॥५९॥

बक्षश्छलात् सुलघु कीलक--युक् स्तनाख्य-
श्रीचक्रिका-खचित-पार्श्वयुगं बकारेः।
श्रीराधिका-युबतिरत्न-बिराजि-चेतः
कोषालयस्य हरिरत्न-कपाटमस्ति ॥६०॥ रूपकापन्हुत्युत्प्रेक्षाः

गोपालिका--हृदय--बाञ्छित--पूर्त्तये श्री—
तापिञ्छ--कल्पतरु--सुन्दर--कन्दलौ यौ।
साध्वीत्व-गर्व्व-शशघातकृते मतीनां
तापिञ्छसार-परिघौ स्मरलुब्धकस्य ॥६१॥ रूपकम्

गोपाङ्गना--हृदय--तण्डुल--कण्डनाय
माहेन्द्रनील--मुषलौ कुशलार्गले यौ।
राधादि--हृन्निलय--बत्स--कपाटिकायाः
राधादि--चित्तशुक--पञ्जर--दण्डके च ॥६२॥ मालारूपकम्

---

युबतियों में रत्न स्वरूप। श्रीराधा के मनोरूप कोसागार के लिए श्रीकृष्ण का बक्षःस्थल मानों तो एक इन्द्रनीलमणि का बना हुआ एक कपाट है जिसके दो पार्श्व में दो स्तनों (चूर्ची) के रूप में दो चक्र जड़े हुए हैं ॥६०॥

भुजाओं का तीन श्लोकों में बर्णन:—श्रीकृष्ण की जो भुजाएँ ब्रजांगनाओं की मनोबांछा पूर्त्ति के लिए तमाल वृक्ष के सुन्दर नवीन अंकुर सदृश हैं, और सती-साध्वियों के सतीत्व के गर्वरूप मृगियों के बध के लिए कन्दर्पब्याध का तमाल के सारभाग से बना हुआ परिघ (लोहा से मढ़ा हुआ लट्ठ) है, वे भुजाएँ मेरे हृदय में स्फूर्त्ती होवें ॥६१॥

श्रीकृष्ण की जो भुजाएँ ब्रजसुन्दरियों के हृदयरूप तण्डुल के सतीत्वादि गर्वरूप तुस को कूट कर पृथक् करने के लिए इन्द्रनीलमणि के बने हुए दो मूसल हैं, राधादि के हृदय रूप गृह

पीतायतौ लवणिमोच्छलितौ सुवृत्तौ
पद्मादि--विश्वरमणी--कमनीय--शोभौ ।
पीनस्तनी--हृदय--दोहद--भाजनं तौ
श्रीमद्भुजौ मनसि मे स्फुरतामघारेः ॥६३॥ ( सन्दानितकम )

रूपक--स्वभावोक्ती

तरुणिम--मधुफुल्ल--श्रीहरेस्तन्वरण्ये
मधुरिम--मदनाख्यौ किं प्रविष्टौ मदेभौ ।
सुभुज--युगल--शुण्डापाणि--सत्पुष्कराभ्यां
निरवधि चरतस्तौ जानुरुक् पल्लवानि ॥६४॥ रूपकानुमानोत्प्रेक्षाः

---

के वक्षोज रूप कपाट के अर्गला ( बेंड़ा ) तथा मनोरूप शुक के पिंजरा के सींक के समान है, ( वे भुजाएं मेरे हृदय में स्फूर्ति होवें ) ॥६२॥

पुनश्च:—श्रीकृष्ण की जो भुजाएँ स्थूल हैं, दीर्घ हैं, लावण्य से छलछला रही हैं व सुडौल हैं, लक्ष्मी आदि विश्व की समस्त रमणियों की कमनीय शोभा से सम्पन्न हैं तथा पीनस्तनी व्रजांगनाओं के हृदय की वासनाओं के पात्र हैं, वे शोभा-युक्त भुजाएँ हमारे हृदय में स्फूर्त्ती होवें ॥६३॥

अब भुजाओं का आजानु बाहुत्व रूपक द्वारा वर्णन करते है, यथा:—तरुणाई रूपी वसन्त द्वारा प्रफुल्लित श्रीकृष्ण के देह रूप वन में क्या माधुरी और मदन नामक दो मतवाले गजराज ने प्रवेश किया है • जो सुन्दर भुजा रूपी सूंडों के हस्त रूप सुन्दर पुस्कर ( अग्रभाग ) के द्वारा घुटनों के कान्तिरूप पल्लवों का सदा भक्षण करते हैं अर्थात् भुजाएं इतनी लम्बी है कि कर कमल सदा घुटनों को स्पर्श करते रहते हैं ॥६४॥

श्रीकृष्ण-दोर्युग्म-मिषेण वेधसा तन्माधुरीदोलिकया समन्वितौ ।
रमादि-योषिन्मति-दोलनाय किं स्तम्भौ विचित्रौ हरिरत्नजौ कृतौ ॥
॥६५॥ रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षा:

स्मरनृपकृत--गोपी--धैर्य्यनाशाभिचार--
क्रतु-हरिमणि-यूपौ दोर्मिषात् कृष्ण--देहे ।
लसत इह कवीनां काव्यमेतन्मतं मे
प्रणय-शुचि-रसाब्धेर्निर्गतौ सत्प्रवाहौ ॥६६॥उत्प्रेक्षा-रूपकाह्नुतयः

शङ्खार्द्धेन्दु---यवाङ्कुशैररिगदाच्छत्र-ध्वज-स्वस्तिकै--
र्यूपाब्जासि--हलैर्धनुःपरिघकैः श्रीवृक्ष-मीनेषुभिः ।
नन्द्यावर्त्तचयैस्तथाङ्गुलिगतैरेतैर्निजैर्लक्षणै--
र्भातः श्रीपुरुषोत्तमत्व-गमकैः पाणी हरेरङ्कितौ ॥६७॥ स्वभावोक्तिः

---

अथवा तो क्या विधाता ने लक्ष्मी आदि वनिताओं की मति को झुलाने के लिये श्रीकृष्ण की युगल भुजाओं के छल से एक हिंडोला बनाया है सो भुजाएँ तो इन्द्रनीलमणि के दो मनोहर खम्भे हैं, और झूलती हुई भुजाओं की माधुरी ही हिंडोला है अर्थात् भुजाएं क्या झूल रही हैं, माधुर्य का हिंडोला झूल रहा है जिसमें बैठी अबलाओं की मति (बुद्धि) झूल रही है ॥६५॥

कवियों की यह केवल कविता मात्र है, कोरी कल्पना ही है कि गोपियों के धैर्य का विनाश करने के लिए कन्दर्प ने एक मारणयज्ञ किया उसमें श्रीकृष्ण की दो भुजाएं इन्द्रनीलमणि के बने हुए यूप ( बलि को बाँधने का काठ या खम्भा ) के समान शोभा दे रहे हैं। परन्तु मेरा मत तो यह है कि दो भुजाओं के रूप में प्रीति से उत्पन्न शृङ्गार रससागर की दो धाराएँ निकल चली हैं ॥६६॥

हस्तौ स्वभाव-मृदुलावपि कर्कशौ तौ
शौरेर्महापुरुष-लक्ष्मतयोचुरेके ।
तत्रानृतं यदि तदा कमठी—कठोर-
गोपीस्तनानिश-विमर्द्दनमत्र हेतुः ॥६८॥ काव्यलिङ्गोत्प्रेक्षे
अनङ्गशर-जर्ज्जर-व्रजनवीनरामालिहृ—
द्विशल्यकरणौषधि-प्रथमपल्लवौ सन्तमौ ।
रसोच्छलित-राधिकोरसिज-हेमकुम्भद्वयी—
विभूषण-नवाम्बुजे व्रजविधोः करौ दीव्यतः । ६६॥ रूपकम्

---

अब करकमलों का वर्णन करते हैं:—पुरुषोत्तमत्व अर्थात् परम भगवत्ता के सूचक इन उन्निम चिन्हों द्वारा अंकित श्री-कृष्ण के करतल (हथेली) युगल शोभित हैं:—शंख, अर्द्ध-चन्द्र, यव, अंकुश, चक्र, गदा, छत्र, ध्वजा, स्वस्तिक, यूप, कमल, खड्ग, हल, धनुष, परिघ, श्रीवृक्ष, मीन, बाण, तथा अंगुलियों के अग्रभाग पर चक्र समूह ॥६७॥

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि श्रीकृष्ण के कर युगल स्वभावतः कोमल होने पर भी महापुरुष के चिन्हों के होने के कारण कठोर हैं—यह बात मिथ्या तो नहीं है परन्तु इसमें कारण यह है कि कच्छपी की पीठ से भी अधिक कठोर गोपियों के स्तनों का निरन्तर विशेष मर्दन करते रहने से वे हस्त कमल कठोर पड़ गए हैं ॥६८॥

श्रीव्रजचन्द्र के हस्त युगल कन्दर्प–शर से जर्जरित व्रजयुव-तियों के हृदय के लिए विशल्यकरणी नामक प्रसिद्ध औषधि के पल्लव सदृश तथा नानाविध रस से तरंगायित श्रीराधा के स्वर्ण कुच-कुम्भों के भूषण स्वरूप नवीन दो कमल सदृश शोभा पा रहे हैं ॥६६॥

श्रीकामाङ्कुशतीक्ष्ण-शुद्ध-मुकुटैः पूर्णेन्दु-सन्मण्डलैः
श्लिष्टाऽन्योन्य-मिलद्दलावलि-शिरःपश्चाद्विभागे क्वचित् ।
अब्जे चेद्भविष्यतां विकसित-श्यामाम्बुजान्तर्गते
श्रीपाण्योरुपमां तदात्र कवयोऽदास्यन्नमूभ्यां हरेः ॥७०॥

तृतीयातिशयोक्तिः

वृषभ-ककुद--निन्दि-स्कन्धयोस्तुङ्गतां सत्-
पुरुषवरतयैवेत्याहुरेके यकारैः ।
मम तु मतमिदं श्रीराधिका--दोर्मृणाली-
सतत-मिलन-मोद्रात्फुल्लतैवात्र हेतुः ॥७१॥ काव्यलिङ्ग-रूपके

---

अब दो असम्भव कमलों के द्वारा हस्तकमल का वर्णन करते हैं:—श्रीकृष्ण के हस्त का बाहरी भाग श्यामवर्ण का और भीतरी भाग ( हथेली ) रक्तवर्ण का है, उस पर अंगुलियाँ और अंगुलियों के अग्रभाग पर नख हैं। अब इनके लिए असम्भव उपमा की कल्पना करते हैं कि एक रक्त—कमल ( हथेली ) ऐसा हो कि जिसके दल ( अंगुलियाँ ) एक पूर्ण चन्द्रमण्डल ( नखचन्द्रावली ) द्वारा परस्पर मिले हुए हों और जिसकी छोरों ( सिरों ) का पिछला भाग जुड़ा हुआ हो। ऐसे कमलदल रूपी शोभायुक्त कामांकुशों के तीक्ष्ण श्रृङ्गरूप मुकुट होवें ( दल = अंगुलियाँ नख = अंकुश; नखाग्र भाग = शृंग )। इस प्रकार का रक्तकमल फिर कहीं एक खिले हुए नीलकमल ( = हस्त का बाहरी भाग ) के मध्य में होवे तब कदाचित् इन दो कमलों के द्वारा कविजन श्रीकृष्ण के करकमलों की उपमा दे सकें ॥७०॥

वृषभ के ककुद ( कूबँ, डील ) के उठे हुए माँसपिण्ड को भी तुच्छ करने वाले श्रीकृष्ण के स्कन्ध को कोई कोई महापुरुष

अंसौ हरेरुल्लसतः समुन्नतौ मन्ये लसत्कौस्तुभ-कण्ठमाधुरीम् ।
द्रष्टुं सदोद्ग्रीविकयोत्सुकेन तां पार्श्वद्वयेनोन्नमितौ स्वमस्तकौ ॥
॥७२॥ उत्प्रेक्षा

ऊर्द्ध्वे सुविस्तृतमधः क्रमकार्श्ययुक्तं
माधुर्य्य-भूमिभुज आसनमैन्द्रनीलम् ।
लावण्यपूर--वहनाद्दर--निम्नमध्य—
मिष्टं दृशां मृगदृशां हरि-पृष्ठमीडे ॥७३॥

स्वभावोक्ति-रूपकोत्प्रेक्षाः

सुस्थुलमूलाद्लकार्श्य-मञ्जुला स्वमाधुरी-सिंह-शिरोधिदर्पहृत् ।
श्रीकशाजुटस्य विलास-खट्टिका सुवर्त्तुला भाति मुकुन्द-कन्धरा ॥
॥७४॥ स्वभावोक्ति-रूपक-व्यतिरेकाः

---

का लक्षण ही कहते हैं परन्तु हमारा मत तो यह है कि श्री-राधा की भुजारूपी कमलनाल के निरन्तर सम्मिलन के आनन्द से उत्फुल्ल ( अति फूलने ) होने के कारण ही श्रीकृष्ण के स्कन्ध उत्तुङ्ग ( ऊँचे ) हैं ॥७१॥

श्रीकृष्ण के दोनों कन्धों के उठे हुए होने से मैं तो समझता हूँ कि श्रीकृष्ण के कौस्तुभमणियुक्त कण्ठ की प्रसिद्ध माधुरी के दर्शन के लिए दोनों पार्श्व ही उत्कण्ठित हो ग्रीवा उठा कर अपने मस्तकों को ऊँचे किये हुए स्थित हैं—इसी कारण ये स्कन्ध उच्च हैं ॥७२॥

मैं कमलनयनी ब्रजसुन्दरियों के नयन सुखकर श्रीकृष्ण के पृष्ठ ( पीठ ) की स्तुति करता हूँ जिसका ऊपर का भाग विस्तृत और नीचे का भाग क्रमशः कृश होता हुआ माधुर्यराज *के लिए इन्द्रनीलमणि का आसन-बन गया है और जो लावण्य के अतिशय भार के वहन करने से मध्य में कुछ नीचा हो, शोभा दे रहा है ॥७३॥

पिक--तत--शुषिरालीनादनिन्दि-स्वरोर्म्मि—
स्त्रिभुवन--जन--नेत्रानन्दि-रेखात्रयश्रीः ।
नवनव-निज-कान्त्या भूषित-श्रीमणीन्द्रो
विलसति बकशत्रोः कण्ठनीलाश्म-कम्बुः ।।७५।। रूपकम्
कण्ठा हरेर्लसति कौस्तुभ-राजहंस—
लीलामृताक्षयसरः सततं यतोऽस्मात् ।
लावण्य-नर्म्म-कविता-वरगान-सम्प—
द्दिव्यापगाः प्रतिदिशं किल निःसरन्ति ।।७६।। रूपकानुमाने
नासा-हन्वधरोष्ठ-गण्ड-चिवुक श्रोत्रादि-दिव्यदलं
श्रीदन्तावलि-केशरं स्मित-मधु श्राव्युल्लसत्सौरभम् ।

---

श्रीकृष्ण की ग्रीवा मूल में स्थूल हो ऊपर कुछ कृश होती हुई बड़ी सुडौल और मनोहारिणी है और अपनी माधुरी द्वारा सिंह–ग्रीवा की भी दर्पहारिणी है । तथा श्रीकेशकलाप के विलास के लिए खट्वा (खटिया) सदृश शोभा दे रही हैं ।।७४।।

बकारि श्रीकृष्ण का कण्ठ इन्द्रनीलमणि के शंख सदृश शोभा दे रहा है जिसने अपनी नव नव कान्ति द्वारा श्रीयुक्त कौस्तुभ-मणिराज की भी शोभा बढ़ा दी है, जिसका स्वर कोकिल, वीणा व वंशी आदि के शब्द व भ्रमरों की गुञ्जन को तुच्छ करने वाला है, और जो त्रिभुवन के जनों के नयनानन्दकारी त्रिवलि ( तीन रेखाएँ ) की शोभा से सम्पन्न है ।।७५।।

श्रीकृष्ण का कण्ठ अमृत के अक्षय सरोवर के समान शोभा दे रहा है जिसमें कौस्तुभमणि रूपी हंसराज क्रीड़ा करता रहता है, और जहाँ से लावण्यमयी परिहास वाक्य, गद्यपद्य-मयी वाणी व श्रेष्ठ गान सम्पत्ति रूप दिव्य नदियाँ निरन्तर निकलती रहती हैं ।।७६।।

श्रीनेत्रद्वय-खञ्जनं भ्रमरिकैभ्रू भृङ्गिकाल्यावृतं
श्रीजिह्वाद्भुत-कर्णिकं विजयते श्रीकृष्ण-वक्त्राम्बुजम् ।।७७।।रूपकम्
अघरिपु-मुख-राकानायको निष्कलङ्कः
समजनि निजलक्ष्म न्यस्य गोपी-कुले किम् ।
इति तु कुकवि-वाक्यं मन्मतं शृणवकार्षीत्
सहज-विमल एष स्वाश्रितं तत्स्वतुल्यम् ।।७८।। उत्प्रेक्षा-रूपके
बन्धूके मुकुरौ मुकुन्द-कलिका-पाल्यौ नटत्खञ्जना—
बद्धेन्दुं तिलपुष्पकं स्मरधनुर्लोलालिमालामपि ।

---

श्रीकृष्ण के मुख-कमल में नासिका, हनु ( ठोड़ी ), अधरोष्ठ, कपोल, चिबुक व कर्णादि दिव्य पत्र हैं, दन्तसमूह केसर है, स्मित रूप मधु द्वारा उसका सहज सौरभ उल्लसित हो रहा है, शोभापूर्ण नेत्रयुगल ही जहाँ खंजन पक्षी हैं, भौंह रूप भौंरों के साथ भौंरियों अर्थात् अलकावलि द्वारा समावृत सुन्दर रसना ही जिसकी कर्णिका है—इस प्रकार श्रीकृष्ण का मुखकमल सर्वोपरि विजय को प्राप्त हो रहा है ।।७७।।

"अघारि श्रीकृष्ण का मुख रूपी पूर्णचन्द्र क्या गोपियों के कुल में अपना कलंक डाल कर आप निष्कलंक हो गया है"—यह कुकवियों की कल्पना है। परन्तु मेरा जो मत है उसे श्रवण करो। श्रीकृष्ण का मुखचन्द्र स्वतः स्वभाव से ही निर्मल है, इसी कारण वह अपने आश्रितों के कलंक को भी अपने उज्ज्वल गुणराशि द्वारा विमल बना कर अपने समान बना लेता है ।।७८।।

अब एक असम्भव उपमा द्वारा श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र की श्रेष्ठता प्रतिपादन करते हैं:—विधाता यदि पहले तो पूर्णचन्द्र के कलंक को हटा देता और फिर उसपर बन्धुक, ( दुपहरिया फूल )

पूर्णेन्दौ यदि तत्कलङ्कमुदपास्यैतान्यधास्यद्विधिः
श्रीकृष्णस्य कवीश्वरा मुखमुपामास्यंस्तदैवामुना ॥७६॥

तृतीयातिशयोक्तिः

बाल्ये जनन्याङ्गुलि-लालने यदङ्गुष्ठमङ्कादरनिम्नमध्यम् ।
अधोऽङ्गुलिद्वन्द्व-कृतोन्नतेश्च स्वल्पोन्नताग्रांशममेयशोभम् ॥८०॥
नीलोत्पलस्योदयदिन्दुकान्ति-फुल्लैकपौरस्त्यदलोपमर्दि ।
लावण्यबन्योच्छलितं मनोज्ञं तच्छ्रीहरेः श्रीचिबुकं चकास्ति ॥८१

काव्यालिङ्ग-स्वभावोक्त्युत्प्रेक्षा-व्यतिरेकाः

श्रवणचिबुकमूलस्पर्शि सत्सन्निवेशं
जननयन-विहङ्गाकर्षि-माधुर्य-जालम् ।

---

दर्पण, सुन्दर कुन्दकलिकाएँ, नृत्यकारी खंजन, अर्द्धचन्द्र, तिलपुष्प, कामधनुष व चंचल भ्रमर श्रेणी की स्थापना करता तब ही इन बस्तुओं से श्रेष्ठ कविजन श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र की उपमा दे पाते—चन्द्रमा से मुख की, बन्धुक से अधरोष्ठ की, दर्पण से कपोलों की, कुन्दकलियों से दन्तावली की, खंजन से नेत्रों की, अर्द्धचन्द्र से ललाट की, तिलपुष्प से नासिका की, कामधनुष से भौंहों की, और चंचल अलिमाला से अलकावली की उपमा दे सकते ॥७६॥

अब श्रीचिबुक का वर्णन करते हैं:—बाल्यकाल में माँ यशोदा के अंगुलियों से पकड़ने के कारण जिस चिबुक का मध्यभाग कुछ दब गया है और दो अंगुलियों से उठाने के कारण आगे का भाग कुछ-ऊँचा हो गया है अतएव जिसकी शोभा अपरिमेय ( बिना माप के ) है, और जो चिबुक उदयमान चन्द्रमा की कान्ति से नीलकमल के पूर्व के एक खिले हुए दल को भी तिरस्कार करता है श्रीकृष्ण का ऐसा वह अपूर्व चिबुक शोभा पा रहा है ॥८०-८१॥

विलसति हनु-युग्मं श्रीहरेः स्तोकदीर्घं
प्रवितत-मुखबिम्बस्यानुकूल्य-प्रवीणम् ।।८२।। स्वभावोक्ति-रूपके
स्वाकार-मार्दव-विनिर्जित-शष्कुलीकं
स्वाङ्गातिचित्र-घटनाजित--विष्टराभम् ।
स्वीयांशुजाल-गिलिताखिल-लोकनेत्र--
चित्तोल्लसन्मकरकुण्डल-मण्डलश्रि ।।८३ व्यतिरेकः
श्रीकर्णभूषण--भराढ्र--दीर्घरन्ध्रं
विश्वाङ्गना-नयनमीन-मनोज-जालम् ।
गोपी-मनोहरिण--बन्धन--वागुरा यत्
श्रीराधिका-नयन-खञ्जनबन्धपाशः ।।८४।। मालारूपक-स्वभावोक्ती

---

चिवुक और कर्ण के मध्यभाग का नाम 'हनु' है-वे हनु चिवुक के और कर्ण के मूल को स्पर्श करते हुए सुन्दर रूप से स्थित हैं और उनका माधुर्य रूप जाल जनों के नयनरूप पक्षियों को आकर्षण करने वाला है और किंचित् दीर्घ भी हैं अतएव मुखमंडल के प्रसारण ( खुलने ) में अनुकूल सहायता करने में प्रवीण हैं। ( क्यों कि हनु की सहायता से ही मुख खुलता है )। श्रीकृष्ण के ऐसे दो हनु शोभा दे रहे हैं ।।८२।।

अब तीन श्लोकों में कर्ण का वर्णन करते हैं:—जो कर्ण-युगल अपने आकार की कोमलता से शष्कुली ( मालपुआ ) को पराजित करते हैं, अपनी विचित्र रचना से कुशमुष्टि को पराजित करते हैं और अपनी किरणमाला से समस्त लोगों के नयन व मन को वशीभूत कर लेते हैं, जिनमें मकराकृत कुंडलों की लहराती हुई शोभा विद्यमान है— वे कर्णयुगल मेरे हृदय-में स्फूर्त्ति होवें ।।८३।।

शोभमान कुंडलों के भार से जिनके छिद्र बड़े हो गए हैं,

गान्धर्व्विका-सपरिहास-सगर्व्व-निन्दा-
स्वञ्चद्वचोऽमृत-रसायन-पान-लोलम् ।
शोणान्तरं सुरुचिरं सम-सन्निवेशं
तन्मे हृदि स्फुरतु माधव-कर्ण-युग्मम् ॥८५॥ (सन्दानितकम् )

स्वभावोक्तिः

कृष्णस्य पूर्णविधु-मण्डल-सन्निवेशं
राधाधरामृत-रसायन-सेकपुष्टम् ।
गण्डद्वयं मकर-कुण्डल-नृत्यरङ्ग
भातीन्द्रमणिदर्पण-दर्पहारि ॥८६॥ व्यतिरेक-रूपक-स्वभावोक्तयः

पश्युच्छलन्मधुरिमामृत-निम्नगाया
आवर्त्त-गर्त्तनिभ-सृक्क-युगातिरम्यम् ।

---

जो विश्व की नारियों के नयन रूपी मीन समूह को फँसाने मे कामदेव के जाल सदृश हैं, गोपियों के मन-मृगों के बन्धन के लिए जो रज्जु सदृश हैं तथा श्रीराधा के नयनखंजन के बन्धन के लिए पाश सदृश है, वे कर्णयुगल मेरे हृदय में स्फूर्त्ति होवें ॥८४॥

गान्धर्विका श्रीराधा के गर्व व निन्दा युक्त परिहासमय वक्रोक्ति ही अमृत रसायन हैं जिसके पान के लिए श्रीकृष्ण के कर्णयुगल चंचल और सतृष्ण हैं। वे मध्य में रक्तवर्ण और समान आकार वाले हैं। श्रीकृष्ण के ऐसे कर्णयुगल मेरे हृदय में निरन्तर स्फूर्त्ति होवें ॥८५॥

अब कपोलों का वर्णन करते हैं:—श्रीकृष्ण के युगल कपोल पूर्णचन्द्राकार हैं, श्रीराधा के अधरामृत रूप रसायन के अभिषेक से पुष्ट हैं, मकराकृत कुण्डलों के नृत्य-स्थल हैं तथा इन्द्रनील-मणि के दर्पण के दर्पहारी हैं। श्रीकृष्ण के ऐसे युगल कपोल शोभा पा रहे हैं ॥८६॥

श्रीकान्तदन्त-विसरत्-किरणाभिषिक्तं
दुग्धाभिधौत-नवपल्लवनिन्दि-रोचिः ॥८७॥ रूपकोपमाने
आष्ठोपरिश्वसन-निर्गमनाल्प-निम्नं
वन्धूकजिच्छवि----दरोच्छ्वसितौष्ठमध्यम् ।
श्रीश्याममारुणिमयोर्मिलन-प्रदेशे
स्तोकोन्नतायत-मनोहर-सीमशोभम् ॥८८॥ स्वभावोक्त्युत्प्रेक्षे
बिम्बाति-मञ्ज्वधर-मध्यगताल्परेखं
स्वं पश्यतामितर-रागहर-स्वभावम् ।
शश्वन्निजामृत-सुवासित-मञ्जु वंशी—
सूक्ष्मायतध्वनिभिराहृत-विश्वचित्ताम् ॥८९॥स्वभावोक्ति-व्यतिरेकौ

---

अब चार श्लोकों में अधरोष्ठ का वर्णन करते हैं:—श्रीकृष्ण के अधरोष्ठों से उमग उमग कर माधुर्य रूप अमृत - नदी नीचे की ओर बह रही है, उनमें जो भँवर पड़ रहे हैं और जो गर्त्त ( गड्ढा ) सदृश हैं वे ही अधरोष्ठ के दो कोने हैं । उनसे वे अधरोष्ठ अत्यन्त रमणीय बने हुए हैं और वे सहज शोभा से मनोहर दन्तावली से छिटकती हुई किरणों से अभिसिक्त हो रहे हैं, जो किरणों दूध से धुले हुए नवीन पल्लव की कान्ति का भी तिरस्कार करती हैं ॥८७॥

नासिका से वायु निकलते रहने से उसके वेग से होठ का ऊपरी भाग कुछ नीचा है और मध्य का भाग कुछ ऊँचा है। उस होंठ की कान्ति ने दुपहरिया के फूल की कान्ति को पराजित कर दी है। जहाँ होठों की श्याम व अरुण कान्ति का मेल होता है, वह भाग कुछ उन्नत, आयत ( चौड़े ) और मनोहर शोभाशाली हैं ॥८८॥

बिम्बफल से भी अति मनोहर अधर पर सूक्ष्म मनोहर

सर्व्वस्व-रत्नपिटको व्रजसुन्दरीणां
जीवातु-मीधु-चषकं वृषभानुजायाः ।
तच्छ्रीलसद्दशन-लक्षणलक्षितं श्री—
कृष्णाधरोष्ठमनिशं हृदि मे चकास्तु ॥६०॥ रूपक-स्वभावोक्ती
स्वाकार-सौष्ठव-विनिन्दित-कुन्दवृन्द—
सत्कोरकान् शिखर-हीरक-मौक्तिकानाम् ।
शोभाभिमानभर-खण्डन-कान्तिलेशान
वामभ्रु वामधरबिम्ब-शुकायमानान् ॥६१॥ लुप्तोपमा
जात्यैव पक्विम-सुदाडिमबीजमञ्जून्
शश्वत्प्रियाधर-रसास्वदनेन शोणान् ।

---

रेखाएँ हैं, अपने से अतिरिक्त अन्य के प्रति अनुराग का हरण करना ही जिनका स्वभाव है, सदा अपने अधरामृत से सुवासित मनोहर बंशी की सूक्ष्म पर विस्तृत ध्वनि से जिसने विश्व के समस्त जनों के चित्तों को आकर्षित कर लिया है ॥८६॥

व्रजांगनाओं के सर्वस्वधन को रखने के लिए जो पिटारी है, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा का जीवनोपाय स्वरूप अमृत के लिए जो पात्र रूप हैं, तथा श्रीराधा के अत्यन्त शोभायमान दश चिन्हों द्वारा जो चिन्हित हैं, श्रीकृष्ण के वे अधरोष्ठ मेरे हृदय में निरन्तर प्रकाशमान रहें ॥६०॥

दो श्लोकों में दन्तावली वर्णन करते हैं:—जिन दन्त समूह ने अपने आकार के सौन्दर्य से कुन्द की कलियों को पराजय कर दिया है, अपनी कान्ति के लेश द्वारा पके दाडिम के बीज, हीरा व मोती की शोभा व अभिमान का खण्डन कर दिया है, तथा सुन्दर भ्रकुटी-वाली व्रजसुन्दरियों के अधर - बिम्ब को आस्वादन करने में जो शुक पक्षी सदृश है ॥६१॥

कान्तोष्ठ-शोणमणि-भेदन-काम-टङ्कान्
श्रीमन्मुकुन्द-दशनान् सुभगाः स्मरन्ति ॥६२ (युग्मकम्)रूपकोत्प्रेक्षे
जीयान्निज-प्रणयिवृन्द-मनस्तमोघ्नी
श्रीराधिका--प्रणयसागरमेधयन्ती ।
आत्मप्रसाद-कणिकोक्षित--विश्वलोका
गोपी-प्रियानन-विधोः स्मित-कौमुदी सा ॥६३॥ रूपकम्
पद्मादि-दिव्यरमणी--कमनीय--गन्धं
गोपाङ्गना-नयनभृङ्ग--निपीयमानम् ।
कृष्णस्य वेणु-निनदार्पित--माधुरीक--
मास्याम्बुज--स्मित--मरन्दमहं स्मरामि ॥६४॥ रूपकम्

---

जो जन्म से ही पके हुए दाडिम बीज की भाँति मनोहर है, सदा प्रियतमा श्रीराधा के अधर रसास्वादन द्वारा रक्तवर्ण है तथा कान्ता श्रीराधा के ओष्ठरूपी पद्मरागमणि को भेदन ( फोड़ने ) करने के लिए कामदेव की टाँकी सदृश है, श्रीमुकुन्द का ऐसी दशनावली का सौभाग्यशाली जन स्मरण किया करते हैं ॥६२॥

जो हास्यज्योत्स्ना अपने प्रेमी जनों के मानसिक अन्धकार की विनाश कारिणी है, श्रीराधा के प्रणय-सिन्धु की वृद्धि-कारिणी है, और अपने प्रसाद की कणिका द्वारा विश्व के समस्त जनों की अभिषेक कारिणी है, गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र की वह हास्य-ज्योत्स्ना जययुक्त होवे ॥६३॥

जिस हास्य रूप मकरन्द की सुगन्धि की लक्ष्मी आदि दिव्य रमणियाँ भी वाँछा करती हैं, जिसे ब्रजांगनाओं के नेत्र-भ्रमर, पान करते हैं, जिसकी माधुरी वेणुनाद में अर्पित रहती है, श्रीकृष्ण के मुखकमल के उसी सुमधुर हास्य रूप मकरन्द का मैं स्मरण करता हूँ ॥६४॥

नानारसाढ्य-कविता मणि-जन्मभूमि-
रश्रान्त-षड्विध--रसास्वदन-प्रवीणा ।
विश्वाय विश्वरसदापि हरेरसज्ञा
राधाधरामृत-रसास्वदनाद्यथार्था ॥९५॥रूपक-काव्यलिङ्गे
अन्तःप्रेमघृत-स्मितोत्तममधुर्नर्मैक्षवैः संयुता
शब्दार्थोभय-शक्ति-सूचितरसादीन्दुल्लसत्सौरभा ।
आभीरी-मदनार्क-तापशमनी विश्वैक-सन्तर्पणी
सा जीयादमृताब्धिदर्पदमनी वाणी रसाला हरेः ॥९६॥
रूपक-व्यतिरेकौ

अव्यौङ्मुखेन्द्रमणिसृष्ट-तिलप्रसून--
कान्तिः स्मराशुग-विशेष इवेन्द्रनीलः ।

---

श्रीकृष्ण की रसना अर्थात् जिह्वा नानारसयुक्त कविता रूप मणि की जन्मभूमि है, सतत षड्विध रसास्वादन में प्रवीण है, विश्व को अखिल रसप्रदायिनी है तथा श्रीराधा के अधरामृत के रसास्वादन में समर्थ हो सचमुच ही अपने "रसज्ञा" ( रस जानने वाली ) नाम को सार्थक कर रही है ॥९५॥

श्रीकृष्ण की वाणी रसाला अर्थात् दही, घृत, मधु, शक्कर, कपूरादि के मेल से बनी हुई शिखरन है, जिसमें प्रेम ही घृत है, मन्द-हास्य ही उत्तम मधु है और परिहास रूपी शक्कर मिला हुआ है। वह शब्दशक्ति व अर्थशक्ति से उत्पन्न वाले रसादि कपूर से सुवासित है, व्रजसुन्दरियों के कामरूप सूर्य के सन्ताप की नाश कारिणी है तथा समस्त विश्व की एक मात्र सुख-प्रदायिनी है ॥९६॥

श्रीकृष्ण की उच्चाग्र नासिका शोभा दे रही है जिसकी अधोमुख इन्द्रनीलमणि के तिलपुष्प सदृश कान्ति है जो इन्द्र

नीलाश्मक्लृप्तशुकचञ्चु-विनिन्दि-रोचिः
श्रीनासिकोर्ध्वशिखरा विलसत्यघारेः ॥६७॥ व्यतिरेकोऽलङ्कारः

लोलेन्दुकान्तमणि-गोलक-बद्धचञ्च—
दिन्द्राश्मगोलक-समान-कनीनिके ये ।
अन्तर्भ्रमद्भ्रमर-फुल्ल-सिताब्जकोष—
सौभाग्य-गर्व्वभर-खण्डन-पण्डिते च ॥६८॥ उपमा-व्यतिरेकौ

प्रान्तेऽरुणिम्ना परितः सितिम्ना मध्येऽसितिम्ना च युते विलोले ।
शोभाश्रियः कन्दुक-गोलके ते सुचित्रिते श्रीविधि-कारुणा किम् ॥
॥६९॥ स्वभावोक्त्युत्प्रेक्षे

लावण्यसार-समुदाय-सुधातिवर्षैः
कारुण्यसार-निचयामृत-निर्झरौघैः ।

---

नीलमणि के कामबाण सदृश है एवं जिसकी कान्ति नीलमणि के शुक की चोंच को भी तिरस्कार करने वाली है ॥६७॥

अब चार श्लोकों द्वारा नैनों का वर्णन करते हैं:—श्रीकृष्ण के जिन युगल नेत्रों में चन्द्र-कान्तमणि स्वरूप दो गोलक हैं जिनमें चन्द्रकान्तमणि के ही दो समान चंचल तारे शोभा दे रहे हैं, जो उस श्वेत-कमल कोष के सौभाग्य गर्वातिशय को खण्डन करने में पंडित हैं कि जिसके मध्य में भ्रमर भ्रमण कर रहा हो, वे नेत्र मेरे हृदय में सदा स्फूर्ति को प्राप्त होवें ॥६८॥

जिन नयनों के कोने में लालिमा है, चारों ओर श्वेतिमा ( सफेदी ) है, व मध्य-स्थल में कालिमा ( कृष्णवर्ण ) है और जो अति चंचल हैं, ऐसे नयन रूपी शोभा सम्पत्ति के गोल गोल कन्दुकों को विधाता रूपी शिल्पी ने कितने सुन्दर रूप से चित्रित किया है ॥६९॥

कन्दर्पभाव-विसरामृत-वन्यया च
संप्लाव्य सर्व्वजगदुल्लसती समन्तात् ॥१००॥ रूपकोदात्तो
अत्यायते सुविपुले मसृणे सुशोणे
सुस्निग्ध-पीन — घनचञ्चल-पक्ष्मरम्ये ।
तारुण्यसार-मदघूर्णन-मन्थरे च
नेत्रे हरेर्मम हृदि स्फुरतां सदा ते ॥१०१॥ ( चतुर्भिः कुलकम )

स्वभावोक्तिः

साध्वी-स्वकर्म्म-दृढ़धर्म्म-विभेद-दक्ष—
कामेषु तीक्ष्ण-कठिना बिलसन्त्यपारे: ।
स्वप्नेऽपि दुर्ल्लभ-समस्त-दरिद्र-गोष्ठी—
वाञ्छाभिपूरण-वदान्यवराः कटाक्षाः ॥१०२॥ रूपकम्

---

जो नयनयुगल समस्त लावण्य के सार रूप अमृत की अति वर्षा से, समस्त कारुण्य के सार रूप सुधा की धाराओं से, एवं कामभाव के विस्तार रूप अमृत की बाढ़ से निखिल जगत् को सम्यक् रूप से प्लावित कर रहे हैं, वे नेत्र मेरे हृदय में सदा स्फूर्ति को प्राप्त होवें ॥१००॥

जो अति बिस्तृत हैं सुबिशाल हैं, चिक्कण हैं, रक्तवर्ण है, सुगन्धित हैं, स्थूल हैं, घन हैं, चंचल पल्लवों द्वारा रमणीय हैं तथा तरुणाई के सार रूप मद से घुमारे व मन्थर हैं, श्रीकृष्ण के वे नयनयुगल मेरे हृदय में निरन्तर स्फूर्त्ति को प्राप्त होवें ॥१०१

जो कटाक्ष सती साध्वियों के स्वधर्मरूपी दृढ़ कवच के भेद करने में दक्ष हैं, जो काम–बाण से भी तीक्ष्ण व कठिन हैं, तथा दरिद्रजनों के स्वप्न में भी दुर्लभ वाञ्छाओं की पूर्त्ति में दाता शिरोमणि हैं, श्रीकृष्ण के ऐसे कटाक्षसमूह शोभा पा रहे हैं ॥१०२॥

या विश्वयौवत-विलोल-मनःकुरङ्गा-
नाविध्य घूर्णयति नर्त्तन-मार्गणैः स्वैः।
सा भ्रूलता मुररिपोः कुटिलापि कीर्त्या
कन्दर्प-पुष्पतृणतां तृणतां निनाय ॥१०३॥रूपक-व्यतिरेकौ
किं कालियेन हरये स्वसुता विसृष्टा
तेनार्पिता भ्रुवि ह्रियाप तदात्मतां या।
सापत्न्यतो व्रजवधू-हृदयानि सर्पी
दृष्ट्वैव सा वितनुतेऽत्र विमूर्च्छितानि ॥१०४॥ उत्प्रेक्षा
चिल्लीलतालक-वरूथक-रम्यपार्श्वं
कृष्णाष्टमी-शशिनिभं गिरिधातुचित्रम्।
राधा-मनोहरिणबन्धन-कामयन्त्र—
काश्मीरचारुतिलकं हरिभालमीडे ॥१०५॥
स्वभावोक्ति-रूपकानुमानानि

---

श्रीकृष्ण की जो भ्रूलता विश्व की युवतीजनों के चंचल मनोरूपी मृग को अपने नृत्यरूपी बाण से बेध कर घुमा रहा है, उस भ्रूलता ने कुटिल ( टेढ़ी ) होने पर भी अपनी कीर्त्ति द्वारा कामदेव के पुष्पधनुष को तृणवत् कर दिया है ॥१०३॥

कालियनाग ने श्रीकृष्ण को अपनी कन्या अर्पण की थी क्या ? श्रीकृष्ण ने उसे अपनी भौंह का स्थान दिया तो वह लज्जा से भौंह स्वरूपता को प्राप्त हो गयी। फिर तो वह सर्प-कन्या सौतियाभाव के वशीभूत हो व्रजगोपियों के हृदय को डस डस करके उन्हें इस व्रजभूमि में मूर्छित करने लगी अर्थात् व्रजबधूगण-सर्पिणी सदृश कुटिल भ्रू-दर्शन कर काम-मोह से मूर्छित होने लगीं ॥१०४॥

जिस ललाट के दोनों पार्श्व भ्रूलता व चूर्ण-कुन्तल (अलक)

अलक-मधुपमाला श्रीलभालोपरिष्टा—
द्विलसति ललिता या बल्लवी-बल्लभस्य ।
नयन-सफरबन्धे जालतामङ्गनाना—
मलभत किल सेयं काम-कैवर्त्तकस्य ॥१०६॥ रूपकोत्प्रेक्षे
आव्यायतो भ्रमरगञ्जन-चिक्कणाभः
सूक्ष्मः सुकुञ्चिततरोऽतिघनः समाग्रः ।
कस्तूरिकायुग-सितोत्पल-गन्ध-हृद्यः
कामध्वजासित-सुचामर-चारुशोभः ॥१०७॥
स्वभावोक्ति-व्यतिरेकोपमाः
चूडाद्विकाल-कवरार्द्धक-जूटवेणी—
जूटादि-कालकृत-बन्धविशेष-रम्यः ।

---

द्वारा मनोहर है, जो आकृति में कृष्णाष्टमी चन्द्रमा सदृश है, गैरिकादि धातुओं के खौर से जो चित्रित है, श्रीराधा के मनोरूप मृग के बन्धन के लिए काम-यंत्र-स्वरूप है एवं जो कुंकुम के तिलक से शुशोभित है, श्रीकृष्ण के उस ललाट की मैं बन्दना करता हूँ ॥१०५॥

बल्लबीबल्लभ श्रीकृष्ण की जो मनोहर अलक रूप भ्रमरमाला ललाट पर बिलास कर रही है वे भ्रमरमाला ही ब्रजबालाओं के नेत्ररूप शफरी ( मीन ) के बन्धन के लिए कन्दर्परूपी कैवर्त्त ( धीमर ) का जालस्वरूप बनी हुई हैं ॥१०६॥

जो केशपाश प्रशंसनीय हैं, दीर्घ हैं, भ्रमरबिनिन्दिता चिक्कण आभायुक्त हैं, सूक्ष्म हैं, अतिशय घुमराले हैं, अत्यन्त घने हैं, समान अग्रभाग वाले हैं, कस्तूरी लिप्त नीलकमल सदृश सुगन्धयुक्त हैं, कामदेव की ध्वजा काले चँवर से भी अधिक शोभा सम्पन्न हैं ॥१०७

यो हृत्सुधारुचि-कुरङ्गति राधिकाया-
श्चित्ते स नः स्फुरतु केशव-केशपाशः ॥१०८॥ युग्मकम्

रूपकोपमा-स्वभावोक्तयः

अपार-माधुर्य-सुधार्णवानि नानाङ्ग-भूषाचय-भूषणानि।
जगद्दृगासेचनकानि शौरे-र्वर्ण्यानि नाङ्गानि सहस्रवक्त्रैः ॥१०९॥

स्वभावोक्ति-रूपकाक्षेपाः

इतीरयित्वा विरते शुकेशे ससारिके गद्गदरुद्धकण्ठे।
तद्वाक्सुधाम्भोधिनिमग्नचित्ता क्षणं सभा सा स्तिमिता तदासीत्॥

---

जो केशपाश कभी जूड़ा के रूप में बँधे रहते हैं, कभी मध्य-सीमन्त से दोनों ओर बिथुरे रहते हैं, कभी कबरी के रूप में गुँथे हुए तो कभी आधे खुले और आधे बँधे हुए और कभी जूड़ा-बेणी अर्थात् आधाजूड़ा आधी चोटी के रूप में रहते हैं। श्रीराधा के हृदय चन्द्रमा में वे केशपाश मृग की भाँति प्रतीत होते हैं। श्रीकृष्ण के वे केशपाश हमारे चित्त में स्फूर्त्ति को प्राप्त हो कर रहें ॥१०८॥

अधिक क्या बर्णन करें, जो श्रीअंग अपार माधुर्य के सुधा-सागर हैं, अंग के नाना भूषणों के भूषणस्वरूप हैं, और त्रिलोकी के दर्शन-कारियों के दृगों को अत्यन्त तृप्तिकार हैं, श्रीकृष्ण के ऐसे अंगों को सहस्रबदन अनन्तदेव भी बर्णन नहीं कर सकते हैं ॥१०९॥

इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से सारिका सहित शुक श्रीकृष्णांग-प्रत्यंग को बर्णन करते हुए प्रेम के भार से गद्गद हो गए-उनके कण्ठ रुक गए और वे इस बर्णन से बिरत हो गए। सखी-सभा भी शुक के बाक्य सुधासागर में निमग्न चित्त हो क्षणकाल के लिए शान्त भाव से अद्भुतानन्द में तल्लीन हो गई ॥११०॥

श्रीचैतन्य-पदारविन्दमधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः षोड़श एषः साम्प्रतमगान्मध्याह्नलीलामनु ॥१६॥

## अथ सप्तदशः सर्गः
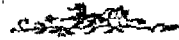
श्रीराधया प्रेरितयाथ वृन्दया संलालितः स्वास्थ्यमुपागतः शुकः ।
दिष्टश्च कृष्णस्य गुणानुवर्णने ससारिकः प्राह सभां स नन्दयन् ॥१

---

यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य की मध्यान्हलीला का षोड़श-सर्ग समाप्त हुआ। यह श्रीगोविन्दलीलामृत श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभु के पदारविन्द के मधुप श्रीरूपगोस्वामी की सेवा का फल है, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीमज्जीव-गोस्वामी के संग से उदय हुआ है तथा श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वरदान से प्रादुर्भूत हुआ है ॥१६॥

अनन्तर श्रीराधा द्वारा प्रेरित होकर वृन्दादेवी ने शुक को खिला-पिला कर स्वस्थ किया। स्वस्थ होने पर उसे पुनः श्री-कृष्ण के गुण गाने का आदेश हुआ। तब सभा को आनन्दित करता हुआ वह शुक सारिका सहित कहने लगा ॥१॥

कविभिरनवगाह्यं तं महद्भिर्वराको
ऽप्यहमजित-गुणाब्धिं जिह्वया लेढुमीहे ।
यदपि फलमभेद्यं लाङ्गलीयं सुपक्वं
स्पृशति तदपि चञ्च्वा तन्मुहुर्लुब्धकीरः ।।२।। निदर्शना
इहानिनीषामि करेण भास्करं मूर्ध्ना विभित्सामि सुमेरुपर्वतम् ।
दोर्भ्यां तितीर्षामि महार्णवं यतो गुणान्विवक्षामि हरेरपत्रपः ।।३।।
मालानिदर्शना
या या जाता हरिगुण-लवस्पर्शपूता रसज्ञा
सा सा जातु स्पृशति नितरां कापि वार्त्तां तदन्याम् ।
माकन्दीय-प्रथम-मुकुलास्वाद-पुष्टान्यपुष्ट-
श्रेणी या सा रसयति कथं कुड्मलं पैचुमर्दम ।।४।। दृष्टान्तः

---

श्रीकृष्ण का जो गुणसमुद्र बड़े बड़े कविजनों के लिए भी अगम्य है, उसी गुणसमुद्र को मैंने अति क्षुद्र होकर भी अपनी रसना द्वारा आस्वादन करने की अभिलाषा की है। यद्यपि पके हुए नारियल का फल चोंच द्वारा तोड़ा नहीं जा सकता है तथापि लोभी शुक तो उस फल में बार बार चोंच मारता ही है ।।२।।

कैसा निर्लज्ज हूँ मैं जो श्रीकृष्ण के गुण वर्णन करने की इच्छा कर रहा हूँ! यह मेरी इच्छा ऐसी है जैसे सूर्य को हाथ से पकड़ लाने की, सुमेरु पर्वत को मस्तक से फोड़ डालने की तथा समुद्र को दोनों हाथों से तैर जाने की इच्छा हो ।।३।।

परन्तु यह भी सत्य है कि जो जो जिह्वा श्रीकृष्ण के गुणगान द्वारा पवित्र हो गई हैं, वे जिह्वाएं श्रीकृष्ण के गुणों के अतिरिक्त अन्य वार्त्ता कभी भी सादर स्पर्श नहीं करती हैं। भला रसाल आम के नवीन मुकुलों ( बौर ) से पुष्ट कोकिल कुल

यदुक्तं गर्गेण व्रजपति-पुरस्तेऽस्य हि शिशो-
र्गुणैस्तैस्तैः साम्यं लभत इह नारायण इति ।
गुणानामानन्त्यं परमशुभता गोकुलविधो—
र्महत्त्वं गाम्भीर्यादिकमपि च तेनैव कथितम् ॥५ उदात्त-स्वभावोक्ती
स्वभक्ते वात्सल्य-प्रणय-वशतादेर्गुणतते—
रनन्तत्वात् सङ्ख्या दनुज-जयिना नैव घटते ।
बहुत्वात् पाल्यानामनिशमुरुवृत्तेः समुदया-
दिहाप्येकैकस्यापि हि भवति सम्यङ् न गणनम् ॥६॥
उदात्त—स्वभावोक्ती
रूपं भूषण-भूषणं नववयः कैशोर-मध्यस्थितं
वीर्यं कन्दुकिताद्रि शीलममलं लीला जगन्मोहिनी ।

---

क्या फिर कभी नीम के बौर का रस लेता है ॥४॥

व्रजराज श्रीनन्दराय के आगे गर्गाचार्य ने कहा था कि तुम्हारे इस बालक के उन गुणों के साथ नारायण ने समता पाई है और यह भी कहा था कि गोकुलचन्द्र श्रीकृष्ण के गुणगणों का अन्त नहीं है। उनमें परम शुभता, महत्व व गाम्भीर्यादि अनेक गुण हैं ॥५॥

पुनश्च दानवजयी श्रीकृष्ण की भक्तवत्सलता व प्रेमाधीनता आदि गुण अनन्त होने से उनकी संख्या नहीं हो सकती अर्थात् गिन कर नहीं बताए जा सकते हैं कि श्रीकृष्ण में इतने गुण हैं? उनके गुण तो अनन्त हैं ही, उनके भक्त भी अनन्त हैं और उनमें से एक एक भक्त की सेवा में उनके जितने गुण लगे हुए हैं और जो गुण भी परिपूर्ण मात्रा में उदय होते व बढ़ते रहते हैं, उन गुणों की सम्यक् गणना नहीं हो सकती है ॥६॥

औदार्य्यं स्वसमर्पणावधि दया यस्याखिलप्लाविका
कीर्त्तिर्विश्वविशोधिनी कथमसौ कृष्णोऽस्तु वर्ण्यः क्षितौ ॥७॥
उदात्त-स्वभावोक्ती

तत् कैशोरं स च गुणचयः स च गोपाङ्गनालिः
सा वेश-श्रीः स च मधुरिमा सा च कन्दर्प-लीला।
सा वैदग्धी स च शुचि-रसः सा च चापल्य-लक्ष्मी-
रङ्गीकारादजनि सफला श्रीलगोपेन्द्रसूनोः ॥८॥दीपक-तुल्ययोगिते
श्रीकृष्णस्याखिलाङ्गान्मृगमद-रस-संलिप्त-नीलोत्पलानां
कक्षभ्रू श्रोणि-केशादगुरुरस-लसत्-पारिजातोत्पलानाम्।
श्रीनासा-नाभिवक्त्रात् कर-पद-नयनाच्चेन्दुलिप्ताम्बुजानां
सत्सौरभ्यामृतोर्म्मिः प्रसरति जगदाप्लावयन्ती समन्तात् ॥९॥
स्वभावोक्तिः

---

जिन श्रीकृष्ण का रूप भूषणों का भी भूषण है, नवीन वयस मध्य-कैशोर है, गेंदरूपी गोवर्धन ही वीर्य अर्थात् पराक्रम है, निर्मल शील है, जिनकी जगन्मोहिनी लीला है, उदारता की सीमा यह है कि वे अपने भक्तों के हाथ में अपने तक को समर्पण कर देते हैं, दया इतनी है कि वह विश्व को प्लावित कर (=नहा) रही है और कीर्त्ति ऐसी है कि वह विश्व का विशेष शोधन कर रही है, ऐसे श्रीकृष्ण को भला मैं कैसे वर्णन करूँ ॥७

उनकी वह किशोरावस्था, वे गुणराशि, वह वेश-शोभा, वह माधुर्य, वह कन्दर्प लीला, वह रसिकता, वह शृङ्गार - रस और वह चापल्य लक्ष्मी (जो कि प्रसिद्ध ही हैं) ये सब श्री-व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण के द्वारा अङ्गीकृत होने से सफल हो गये हैं ॥८॥

श्रीकृष्ण के सर्वाङ्ग से कस्तुरीलिप्त नीलकमल के सौरभ, कक्ष

गुणा हि गोपीनति-हारिणो हरे-र्गोपीततिः प्रेम परिप्लुताशया ।
प्रेमा हरेरिन्द्रिय-चित्त-हारको हरिश्च तस्या वशतामुपागतः ।१०॥
एकावली

वंशी-स्वनैर्गोपबधूगणाहृति र्गोपीहृते रास-महामहोत्सवः ।
रासोत्सवाद्वाञ्छित-पूर्त्तिरीशितुस्तत्पूर्त्तितोऽभूत् सुख-संभृतं जगत्
॥११॥ कारणमाला

वभौ व्रजेशोरसि या मुरारे नीलोत्पलाली-दलमालिकेव ।
तनौ यमुस्तत्र कथं गुणास्ते सहस्रवक्त्रेण सदाप्यगण्याः ॥१२॥
आश्रयाधिकेऽधिकम्

---

( कूँख ), भ्रू, नितम्ब व केश से अगुरु ( अगर ) रस लिप्त पारिजात व कमल के सौरभ, एवं श्रीनासिका, नाभि, मुख, हस्त, पद व नेत्रों से कपूर लिप्त कमल के उद्दाम सौरभ रूप अमृत की तरङ्गें जगत् को प्लावित करके समस्त दिशाओं में फैल रही हैं ॥६॥

श्रीकृष्ण के गुणगण व्रजांगनाओं के मन को हरण करने वाले हैं और व्रजांगनाओं का हृदय भी श्रीकृष्णप्रेम से परिपूर्ण है; उनका प्रेम भी श्रीकृष्ण के इन्द्रियों और मन को हरण करने वाला और श्रीकृष्ण भी उन गोपियों के वशीभूत हैं ॥१०॥

वंशीध्वनि द्वारा व्रजगोपियों का आकर्षण होता है, उनके आकर्षण पर ही रासमहोत्सव होता है, रासोत्सव द्वारा ही श्रीकृष्ण की वाञ्छा-पूर्त्ति होती है, तथा उनकी उस वाञ्छा-पूर्त्ति से ही समस्त जगत् सुख से परिपूर्ण हो जाता है ॥११॥

श्रीव्रजराज नन्दराय के वक्षःस्थल पर श्रीकृष्ण की जो देह नीलकमलपत्र की माला की भाँति शोभित हुई थी, उस देह में सहस्रवदन अनन्तदेव के भी गणना से सदा अतीत गुणगण

यथा तनोरन्तरलोकि मात्रा बिश्वं करेऽद्रिः कमलत्वमाप ।
श्रीराधिकास्याम्बुज-दर्शनोत्था मुदो ममुस्ता न हरेर्यतास्याम्
।।१३।। आश्रितोऽधिकेऽधिकम्
लावण्यबन्योत्सलिलेऽघविद्विषो राधास्वमूर्त्तिं प्रतिबिम्बितां हृदि
दृष्ट्वाङ्गनां स्वं प्रतिकूल्वर्तीं परां निश्चित्य रोषाद्विमुखी स्म वेपते
।१४।। भ्रान्तिमान
श्रीराधयानन्यसमोर्द्ध्वयाहृतं मनो हरेर्धावति नापराङ्गनाम् ।
सरोजिनी-सन्मधु-लम्पटः सदा बल्लीं परामिच्छति किं मधुव्रतः
।।१५।। प्रतिवस्तूपमा

---

कैसे समा गये ? इस श्लोक में आश्रय की अधिकाधिकता दर्शा गई है । अनन्तगुणों का आश्रय श्रीकृष्णविग्रह गुणों से अधि व्यापक हुआ और ऐसे श्रीकृष्णविग्रह से श्रीनन्दराय, का व स्थल अधिक व्यापक हुआ ।।१२।।

अब आश्रित की अधिकता वर्णन करते हैं:—श्रीकृष्ण जिस देह में माँ यशोदा ने बिश्व-दर्शन किया था, जिनके ह पर गोवर्द्धन भी एक कमल जैसा लगता था, श्रीकृष्ण की दे देह में श्रीराधा के मुख कमलदर्शन का आनन्द समा न सका न आश्चर्य की बात ! अर्थात् बिश्व का आधार स्वरूप है श्री कृष्ण विग्रह—परंतु उससे भी अधिक है आश्रित श्रीराधादर्श जनित आनन्द ।।१३।।

अब भ्रान्तिमान् अलंकार द्वारा श्रीकृष्ण के अंग-लावण्य लक्ष्मी का वर्णन करते हैं:—अघारि श्रीकृष्ण के अति लावण्ययुक्त बक्षःस्थल में श्रीराधा को अपना प्रतिबिम्ब दि दिया तो अपने ही सदृश कोई अन्य नायिका श्रीकृष्ण के स्थल पर विराज रही है—ऐसा निश्चय कर वे कोप से मुख कर काँपने लगीं ।।१४।।

उष्णो रविः शीतल एव चन्द्रः सर्व्वंसहा भूश्चपलः समीरः।
साधुः सुधीरोऽम्बुनिधिर्गभीरः स्वभावतः प्रेम-वशो हि कृष्णः॥
॥१६॥ माला-प्रतिवस्तूपमा

गम्भीरोऽपि स्थिरमतिरपि क्षान्तिपूर्णः सुशीलः
श्रीकृष्णोऽयं सुखमय-वपुः सत्रपो निर्व्विकारः।
श्रीराधायाः प्रणय-विवशस्तन्मुखालोक-जातै-
र्भावैर्लोलो मदन-विकलः संभ्रमाद्भ्रमीति ॥१७॥ परिकरः

रमादिकानां धृति-धर्म्मबद्धं मनो हृतं कृष्णगुणैः सुदूरात्।
दृशोयमासामपि चेत्तादृता व्रजाङ्गनाः काः प्रणयार्द्र-चित्ताः॥१८॥
अर्थापत्तिः

---

जिन श्रीराधा के समान अथवा अधिक अन्य कोई नहीं है, श्रीराधा द्वारा श्रीकृष्ण के चित्त का हरण होने पर श्रीकृष्ण का मन अन्य-नायिका के प्रति नहीं दौड़ता है। भला मधुव्रती भ्रमर पद्म के उत्तम मधुपान में सदा लम्पट बना हुआ क्या कभी अन्य लता की भी इच्छा करता है? अर्थात् इच्छा नहीं करता॥१५॥

जैसे रवि स्वभाव से ही उष्ण है, चन्द्रमा स्वभाव से ही शीतल है, पृथिवी स्वभाव से ही सर्वसहा (सब सहने वाली) है, वायु स्वभाव से ही चंचल है, साधुजन स्वभाव से ही सुधीर हैं, एवं समुद्र स्वभाव से ही गम्भीर है, वैसे ही श्रीकृष्ण भी स्वभाव से ही प्रेम के वशीभूत हैं। १६॥

यह श्रीकृष्ण गम्भीर, स्थिरमति, क्षमापूर्ण, सुशील, सुख-मय वपु, सलज्ज एवं निर्विकार होने पर भी श्रीराधा के प्रेम से विवश, श्रीराधामुखदर्शन जनित भावों से चंचल, तथा मदन-मद से व्याकुल होकर पुनः पुनः भ्रमण करते फिरते हैं॥१७॥

प्रस्वेदोत्पुलकादरोक्त्यमृतसत्सौरभ्य-मन्द-स्मितैः
पाद्यार्घ्याचमनीय-गन्ध-कुसुमान्याजह्रुराराधने ।
कृष्णस्य ब्रजसुभ्रुवस्त्विह परीरम्भादि-लीलामृतं
नैवेद्यं च तदा सुधाधररस-स्ताम्बूलमासामभूत् ॥१९॥परिणामः
बदान्येशस्तृष्णा-निचय-चित-चित्तैः करुणाराट्
बिपन्नैः कन्दर्पो युवति-निकरैर्मृत्युररिभिः ।
अधीशः सद्भक्तैः सहज-निजबन्धुर्ब्रजजनैः
प्रतीतः कृष्णोऽसाविति बिबिधलोकैर्बहुविधः ॥२०॥ उल्लेखः
सांमुख्यात् श्वपचो द्विजोऽस्ति विमुखश्चेद्दूयस्य बिप्रोऽन्त्यजो
यत् प्रेमाप्यमृतायते प्रणयिनां ह्री-कालकूटन्नपि ।

---

लक्ष्मी आदि देवांगनाओं के धैर्यधर्म में बँधे हुए मन को भी श्रीकृष्ण के गुणों ने दूर से ही हरण कर लिया—यह दशा जब इनकी है तो फिर समीप में रहने वाली एवं प्रेम से आर्द्र ( गीली ) चित्त वाली ब्रजांगनाओं की क्या गणना ? अर्थात् उनके चित्त भी आकृष्ट होंगे—यह कहना ही क्या ॥१८॥

ब्रजबनिताओं ने श्रीकृष्ण की आराधना इस प्रकार की कि अपने प्रस्वेद ( पसीना ) द्वारा पाद्य, रोमांच द्वारा अर्घ्य, सादर बाक्यामृत द्वारा आचमनीय, अपने अंगों के श्रेष्ठ सौरभ द्वारा गन्ध, मन्द-हास्य द्वारा कुसुम, आलिंगनादि सुरतामृत द्वारा नैवेद्य तथा सुधामय अधर रस द्वारा ताम्बूल अर्पण किया ॥१९।

श्रीकृष्ण नाना प्रकार के मनुष्यों से नाना प्रकार के प्रतीत होते हैं:—बासनाओं से व्याप्त चित्तबाले बिषयी-जनों के लिए दाता शिरोमणि, बिपदाग्रस्तों के लिए दयालुश्रेष्ठ, युवतियों के लिए साक्षात् कन्दर्प; शत्रुओं के लिए साक्षात् मृत्यु, सद्भक्तों के लिए अधीश्वर ( स्वामी ) एवं ब्रजबासी जनों के लिए अपने सहजात बन्धु के रूप में प्रतीत होते हैं ॥२०

कीर्त्तिः कृष्णरुचीन् करोति विषदीकुर्वत्यशेषान् जना-
न्निन्दुर्यद्विरहेऽग्निरमृतं कृष्णाय तस्मै नमः। २१॥

जाति-क्रिया-गुण-द्रव्याणां स्वस्व-विरोधः

बकीमुखानां हि हरेररीणां दौर्जन्यवृन्दान्यमुना हतानाम्।
सहास्य-कारुण्य-मुखैर्गुणौघै र्गीयन्तकेऽद्याप्यनिशं कवीन्द्रैः ॥२२

विशेषः

न वपुरिदमपारेरेप कृष्णा-प्रवाहो
न वदनमिदमब्जं नाक्षिणी उत्पले ते।
न विततिरलकानां सेयमेषालिमाला
सखि ? नयन-युगे ते धावतः किं प्रलुब्धे ॥२३॥ निश्चयः

---

जिन श्रीकृष्ण के सन्मुख होने से चाण्डाल भी ब्राह्मण तुल्य और बिमुख होने से ब्राह्मण भी चाण्डाल तुल्य हो जाता है—( यहाँ जाति में विरोध है )। जिनका प्रेम प्रेमियों के लिए लज्जा रूप कालकूट ( विष ) के समान होते हुए भी अमृतवत् कार्य करता है ( यहाँ क्रिया में विरोध है )। जिनकी कीर्त्ति समस्त जनों को उज्ज्वल करती हुई कृष्णरुचि अर्थात् काले श्रीकृष्ण में प्रीतिमान् करती है ( गुण विरोध ), तथा जिनके बिरह में चन्द्रमा भी अग्नितुल्य और अग्नि भी चन्द्रमातुल्य हो जाते हैं, ( द्रव्य-विरोध ), मैं उसी सर्व बिरोधी गुणों से समलंकृत श्री-कृष्ण को नमस्कार करता हूँ ॥२१॥

श्रीकृष्ण ने पूतना आदि शत्रुओं का बिनाश किया तथापि श्रीकृष्ण की करुणा आदि गुणों के साथ साथ पूतनादि शत्रुओं की दुर्जनता को भी बड़े बड़े कवीश्वर आज तक निरन्तर गाते आये हैं ॥२२॥

यमुना को श्रीकृष्ण समझ कर उसे देखने वाली सखी के

नानाविकारान् ब्रजसुभ्रुवां मनःप्रविष्ट आदौ मदनस्तताम ।
कलायतः श्रीब्रजराजसूनो-र्विवेश पश्चान्मुरली-निनादः ॥८४॥
पश्चमातिशयोक्तिः

कामोत्पादिधृ ति-धनहृतिः संहृतिर्लोकभीते-
र्धर्म्मोच्छित्तिः कुवलय-दृशामाहृतिः पत्युरङ्कात् ।
कम्पोद्धृतिः स्थिरमनुचरे स्तब्धिरप्यापगानां
या सा जीयान्मधुरमुरलीकाकली गोकुलेन्दोः ॥८५॥ हेत्वलङ्कारः

---

प्रति सखी कहती है:—यह श्रीकृष्ण का अंग नहीं, कृष्णवर्ण की यमुना है, यह उनका मुख नहीं कमल है, यह दो नयन नहीं नीलकमल हैं, यह अलकावली नहीं भ्रमरपंक्ति है, अतएव हे सखि ! तुम्हारे दो नयन अतिशय लुब्ध होकर क्यों इनके प्रति दौड़ रहे हैं ? ॥२३॥

श्रीकृष्ण की वैदग्धी देखिए कि प्रथम तो कामदेव ने ब्रज-सुन्दरियों के मन में प्रवेश करके मनमें नाना बिकार उत्पन्न किया पश्चात् मुरली-नाद अपनी कल ध्वनि का बिस्तार करता हुआ उनके मन में प्रवेश हुआ—अर्थात् गोपियों के काम बिकार को मुरली-ध्वनि ने हरण कर लिया ॥२४॥

गोकुलचन्द्र श्रीकृष्ण के मुरली की सूक्ष्म, मधुर व अस्पष्ट ध्वनि की जय हो—वह ध्वनि कमलनयनी ब्रजकुलबतियों में काम ( श्रीकृष्ण बिषयक प्रेम ) उत्पन्न करती है धैर्य रूपी धन का हरण कर लेती है, लोक-भय का नाश कर देती है, कुलधर्म का नाश कर देती है, कुलधर्म का मूलोच्छेद कर देती है, पति के अङ्क में से आकर्षण कर लेने में समर्थ है, स्थावर अर्थात् वृक्षों में कम्प-पुलकादि उत्पन्न कर देती है तथा जंगम ( चलने वाले ) व नदियों को स्तब्ध ( जड़ीभूत ) कर देती है ॥२५॥

गुणगण-रस-लीलैश्वर्य्य-रत्नैर्लसन्तो
बहव इह जगत्यां सन्ति धन्या यदीत्थम् ।
बदत बदत लोका आकरः किन्त्वमीषां
व्रजपति-सुत एको निश्चितः श्रीमुनीन्द्रैः ॥८६॥ विध्याभासः
नाद-व्याजात् क्षिपसि कठिने गारलीमामृतीं वा
धारां वंशि! प्रणयसखि नो जीवनं वा मृतिं वा ।
ताभ्यां नान्यां वितर विषमां हा दशामत्यसह्यां
गोप्यः कृष्णप्रणय-बिकला वंशिकामित्थमाहुः ॥८७॥ विकल्पः
भोगेप्सवः सकलकामदमर्थलुब्धाः
सर्व्वार्थदं सुखतृषश्च सुखस्वरूपम् ।
लोकाधिपत्यलषिता जगदीश्वरं तं
कृष्णं द्विषन्ति दनुजाः कुधियो बतैते ॥८८॥ विचित्रम्

---

हे लोगो ! यदि तुम यूँ कहो कि इस जगत् में तो गुणगण, रस, लीला व ऐश्वर्य रत्न द्वारा विभूषित अनेक धन्य जन है, तो कह लो, भले ही कहलो, परन्तु यथार्थ विचार द्वारा श्रीमुनीन्द्रजनों ने एक श्रीकृष्ण को ही इन समस्त गुणों का निधान स्वरूप निश्चय किया है ॥८६॥

श्रीकृष्णप्रेम में व्याकुल होकर गोपियाँ बंशी से कहा करती हैं:—अरी प्रिय सखि ! अरी कठिने ! तुम शब्द के छल से विष-धारा व अमृत-धारा दोनों ही उछाल रही हो—इन दो धाराओ से तुम हमें मृत्यु या जीवन दोनों ही दान कर सकती हो, किन्तु हा हा ! हमारी तीसरी दशा नहीं करना अर्थात् जीवन और मृत्यु—दोनों हम सह सकती हैं परन्तु इनसे भिन्न तीसरी दशा असह्य है—उसे न देना ॥८७॥

दैत्य लोग भोगाभिलाषी होते हैं, श्रीकृष्ण सर्व भोगप्रद

तत्तल्लीलामृत-रसभरैर्भावितात्मा मृगाक्षी-
बाला काचित् स्वसदन-गताप्यग्रतो वीक्ष्य वृद्धाम् ।
भीता पार्श्वे स्वभुज-शिरसि न्यस्तहस्तं स्फुरन्तं
कृष्णं प्राहापसर दयितालोकयात्रागतेयम् ॥२६॥ भाविकम्
निखिल-गुणगभीरे क्ष्माधरोद्धारधीरे
सकल-सुखद-शीले क्षालिताशेष-पीडे ।
सुभग-नव-किशोरे विश्व-चित्ताक्षि-चौरे
मुरजिति युवतीनां ह्यन्निमग्नं सतीनाम् ॥३०॥
वाक्यगत-काव्यलिङ्गम्

---

है। दैत्यलोग अर्थलोलुप होते हैं, श्रीकृष्ण सर्वार्थप्रद हैं। दैत्य-लोग सुखतृष्णावान हैं, श्रीकृष्ण सुखस्वरूप हैं। दैत्यलोग त्रिलोकी पद के अभिलाषी ही हैं श्रीकृष्ण तो जगदीश्वर हैं तथापि दैत्यलोग श्रीकृष्ण से द्वेष करते हैं! कितनी विचित्र बात है, बड़े ही दुर्बुद्धि हैं वे ॥२८॥

श्रीकृष्ण-भावना के मधुर फल का उदाहरण:—कोई एक कमल-नयनी ब्रजबाला जिसकी आत्मा श्रीकृष्ण की उन उन लीलाओं के अमृत रस के प्रवाह द्वारा विशुद्ध हो गई है, अपने घर में बैठी है। उसे एक वृद्धा आगे से आती दिखाई दी तो वह अत्यन्त भयभीत हो गई कारण कि श्रीकृष्ण की भावना में तल्लीन उसे यह स्फूर्ति हो रही है कि श्रीकृष्ण उनके पार्श्व में उसके कन्धे पर हस्त रक्खे हुए खड़े हैं, अतएव डर कर उनसे बोली "हे प्रियतम ! तुम अन्यत्र चले जाओ देखो न यह एक वृद्धा आ गई है !" ॥२६॥

जो श्रीकृष्ण समस्त गुणों द्वारा गम्भीर हैं, जो गोवर्धन-धारण में बड़े धीर हैं व सर्व सुख देने वाले हैं, जिनके द्वारा

प्राणापहारं हरिरप्रियं द्विषां मखापहारञ्च बलाच्छचीपतेः ।
स्थानापहारं फणिनश्चकार यत् तेनैव तेषां विहितं सुमङ्गलम् । ३१

अनुकूलम्

लाक्षाङ्कपालिरलिके गिरिधातुचित्रे
वक्षस्युरोज-मदलक्ष्मणमम्बुदाभे ।
राधालयादुपगतस्य हरेः प्रभाते
कैश्चिन्न नीतिनिपुणैरपि पर्य्यचायि ॥३२॥ मीलितम्

कृष्णस्य राधा--प्रणयोत्थ- सम्पदा
माधुर्य्य-सम्पत् सह बर्द्धतेऽनिशम् ।

---

अनन्त पीड़ा शान्त हो जाते हैं, जिनका नवीन किशोर वयस है, और जो विश्व के जनों के नयन व चित्त को हरण करने वाले हैं, उन मुरारि श्रीकृष्ण में सती स्त्रियों का हृदय निमग्न हो गया है ॥३०॥

अब श्रीकृष्ण के मंगलरूपता के उदाहरण देते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण का अपने शत्रुओं के प्राणों का हरना, बलपूर्वक देवराज इन्द्र का यज्ञ-बलि हरण कर लेना, तथा कालियनाग का स्थान हरण कर लेना ( अर्थात् उसे निकाल बाहर करना ) ये तीनों अप्रिय कार्य्य थे, परन्तु इन अप्रिय कार्यों द्वारा ही श्रीकृष्ण ने उनका परम मंगल विधान किया ॥३१॥

श्रीकृष्ण प्रातःकाल श्रीराधा के भवन से आए हैं। उनके गैरिक धातु द्वारा चित्रित ललाट में महावर के चिन्ह मिल गए हैं और उनके मेघ तुल्य नील बक्षःस्थल में स्तनयुगल से लगे हुए कस्तूरी के चिन्ह मिल गए हैं अतएव उन चिन्हों को कोई बड़ा चतुर व्यक्ति भी लक्ष्य नहीं कर सकता है ॥३२॥

श्रीकृष्ण की माधुर्य-शोभा श्रीराधा के उच्चतम प्रेमसम्पत्ति

तयोश्च कुञ्जेषु बिलास—सन्ततिः
सार्द्ध सखीनां सुखसम्पदाप्तिभिः ॥३३॥ सद्योक्तिः
सौन्दर्य्यं पदयोः सरोजवदहो कान्तं तथेन्दुमुखं
रम्या भ्रूभ्रमरावलीव मधुरः पीयूषतुल्योऽधरः।
लोलाब्जेन समे चले सुनयने शुभ्रा रदाः कुन्दवत्
कंसोरेरमृतं यथा सुलपितं ज्योत्स्नेव हासद्युतिः ॥३४॥
श्रीपाणी नव-पल्लवेन सदृशौ पूर्णेन्दुतुल्या नखा
गण्डौ दर्पणवद्द्युतिर्नवघनश्यामा च यस्याङ्गनाः।
दृष्ट्वाम्भोरुहदर्शमास्यमलिसञ्चारं चरन्त्युत्सुषः
साधौ चन्द्रति यः सुनीयति नतान् कुञ्जेषु सौधीयति ॥३५॥

---

सहित सतत वर्द्धित होती है तथा श्रीराधाकृष्ण की बिलासश्रेणी सखियों के सुखसम्पत्ति लाभ सहित बर्द्धित होती है ॥३३॥

श्रीकृष्ण के चरणयुगल का सौन्दर्य कमल सदृश है, कंसारि-मुख चन्द्रमा सदृश कमनीय है, भ्रूयुगल भ्रमरावली सदृश मनोहर हैं, अधर अमृत तुल्य सुमधुर है, सुन्दर नयन युगल चंचल कमल के समान हैं, शुभ्र दन्तावली कुमुद कुसुम सदृश है, सुमधुर बाक्य अमृत तुल्य हैं तथा हास्य-कान्ति भी चन्द्र-ज्योत्स्ना सदृश है ॥३४॥

पुनश्च: जिन श्रीकृष्ण के श्रीकरयुगल नवीन पल्लव सदृश हैं, नखावली पूर्णचन्द्र के समान हैं, कपोलयुगल दर्पण तुल्य हैं, अंग-कान्ति नवजलधर के समान है, जिनके कमलतुल्य मुख के दर्शन से स्त्रियाँ भ्रमर-संचार की भाँति अत्यन्त तृष्णातुर हो उठती हैं, जो साधुजनों के प्रति चन्द्रमा की भाँति और प्रणत जनों के प्रति पुत्र भाँति आचरण करते हैं, वे श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें ॥३५॥

यो दैत्येष्वशनीयतीह रमणीवृन्दे मनोजायते
दाता येन समः क्वचिन्न हि न यत्तुल्योऽस्ति शूरः क्वचित् ।
यल्लीला सदृशी क्वचिन्न हि न येनास्ते समानोऽपि वा
चुम्बन्त्यानन-पद्ममेणनयना यस्यैष कृष्णोऽवतु ॥३६॥ युग्मकम

पञ्चविंशति-प्रकारोपमाः

स्तनैरिव फलैः पुष्पै. स्मितैरिव सुपल्लवैः ।
अधरैरिव कृष्णस्य नवःवल्ल्यो मुदेऽभवन् ॥३७॥

एकदेश-विवर्त्तिन्युपमा

योगेश्वराणामिव योगसिद्धि-रुपासकानामिव विष्णु-भक्तिः ।
नारायणस्येव चिदाख्य-शक्तिः कृष्णस्य वंशीप्सित-सिद्धिदाभूत् ॥
॥३८॥ साधर्म्म्ये मालोपमा

सुधाधारेव मधुरा कौमुदीव सुशीतला ।
कीर्त्तिः श्रीकृष्णचन्द्रस्य गङ्गेव जनपावनी ॥३९ वैधर्म्म्ये मालोपमा

---

जो श्रीकृष्ण दैत्यों के प्रति वज्रके समान और रमणी गण प्रति कन्दर्प की भाँति आचरण करते हैं, जिनके समान दाता जगत् में कोई नहीं है, और शूर भी कोई नहीं है, जिनकी लीला सदृश लीला कहीं नहीं है और जिनके समान व्यक्ति भी कहीं नहीं है और जिनके वदन कमल का कमलनयना रमणी गण चुम्बन किया करती हैं, वे श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें ॥३६॥

नवीन लताएँ भी स्तनों की भाँति अपने फलों से, हास्य सदृश पुष्पों से और अधरतुल्य पल्लवों से, श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करती हैं ॥३७॥

श्रीकृष्ण की वंशी, योगेश्वरों की सिद्धियों की भाँति उपासकों की भक्ति की भाँति तथा श्रीनारायण की चित्शक्ति की भाँति, वाञ्छित सकल सिद्धियों के प्रदान करने में समर्थ हुई थी ॥३८॥

कृष्णस्यानुपमाङ्गश्रीरङ्गश्रीरिव माधुरी ।
माधुरीव गुणाल्यस्य गुणालीव सुशीतला ॥४०॥साधर्म्ये रसनोपमा
कान्तावली-प्रेम-परिप्लुता हरेः कान्तावलीव प्रचुरा विदग्धता ।
विदग्धतेवास्य रसज्ञतोत्तमा रसज्ञतेवानुपमा विलासिता ॥४१॥
वैधर्म्ये रसनोपमा

सख्यं विचित्रं सुबलादिकानां कृष्णस्य विज्ञाय निगूढ़-तृष्णाम् ।
शय्यां निकुञ्जे विरचय्य यत्ना-दानीय कान्तां रमयन्त्यमुं ये ॥
॥४२॥ रसवत् । अत्र सख्यरसस्याङ्गं शृङ्गारः

---

श्रीकृष्ण की कीर्त्ति सुधाधारा की भाँति मधुर, ज्योत्स्ना की भाँति सुशीतल एवं गंगा की भाँति लोकपावनी है ॥३६॥

श्रीकृष्ण की अंग-शोभा अनुपम अंग-शोभा जैसी है, माधुरी अनुपम माधुरी जैसी है और गुणावली भी अनुपम गुणावली जैसी है—अर्थात् सब अनुपम हैं ॥४०॥

श्रीकृष्ण की कान्तावली ( प्रियागण ) प्रेम द्वारा परिप्लुत हैं, श्रीकृष्ण की विदग्धता कान्ताओं की भाँति प्रचुर है, श्रीकृष्ण की रसज्ञता उनकी विदग्धता की भाँति उत्तम है तथा श्रीकृष्ण की विलासिता उनकी रसज्ञता की भाँति अनुपम है। ( इस श्लोक की विशेषता यही है कि पूर्व पूर्व का उपमेय पीछे पीछे का उपमान बनता जाता है ) ॥४१॥

अब सख्यरस का पोषक शृङ्गार-रस का वर्णन करते हैं:- सुबलादि सखाओं का कैसा विचित्र सख्यभाव है कि जो श्रीकृष्ण के अतिशय निगूढ़ चाहना (छल) को विशेष रूप से जान कर निकुञ्ज में शय्या-रचना करते हैं, और बड़े आदर-यत्न पूर्वक कान्ता को लेकर कान्त श्रीकृष्ण को रमण कराते हैं ( यहाँ सख्य

धन्यं वृन्दारण्यं यस्मिन् विलसति सदैव रमणीभिः ।
प्रतिकुञ्जं प्रतिपुलिनं प्रतिगिरिकन्दरमसौ कृष्णः ॥४३॥
रसवत्—अत्र वन-वर्णनभावस्याङ्गं शृङ्गारः

कान्ताङ्ग-सङ्कम-विलग्न-विलेपनानि
शष्पेषु भान्ति पतितानि हरेः पदाब्जात् ।
आलिप्य यानि हृदये विजहुः पुलिन्द्य—
स्तद्वेणुगीत-मुख-दर्शन-कामजाधिम् ॥४४॥ प्रेयः—
अत्र शुचेरङ्गं पुलिन्दीनामेकनिष्ठत्वात् भावः

वृन्दावनमतिधन्यं यस्मिन् कुसुम-स्मितैः फलोरोजैः ।
पल्लव-कुलाधरैरपि सुखयति कृष्णं लता-पालिः ॥४५॥ प्रेयः—
अत्र वनवर्णन-भावस्याङ्गं लतानां भावः

---

रस ही मुख्य है, शृङ्गाररस गौण है, अंगी सख्यरस का अंग है ) ॥४२॥

धन्य है वृन्दावन कि जिसके कुञ्ज कुञ्ज में, पुलिन पुलिन में, प्रत्येक पर्वत कन्दरा ( गुफा ) में श्रीकृष्ण कान्ताओं के साथ विलास करते हैं अर्थात् वृन्दावन भी शृङ्गाररस का पोषक है ॥४३

श्रीकृष्ण के चरणकमलों में कान्तांग संगम के समय उनके कुचों का मृगमदादि का लेप लग गया है, वह चरणकमलों से श्रीवृन्दावन के तृणों पर पड़ कर शोभा पा रहा है, तृणों में लगे उस कुचकुङ्कुम को भील-कन्याएँ अपने हृदय पर लगाती हुई श्रीकृष्ण के वेणुगीत श्रवण व मुख-पद्म-दर्शन से उत्पन्न काम-पीड़ा को शान्त कर रही हैं ॥४४॥

श्रीवृन्दावन अतीव धन्य है कि जहाँ पर लताएँ अपने कुसुम रूपी मृदु हास्य द्वारा, फलरूप स्तनों द्वारा तथा पल्लवरूपी अधरों द्वारा श्रीकृष्ण को सुख प्रदान करती हैं ॥४५॥

शुशुभुरचल-दर्थो यासु लीना रमण्यो
हरिहत-दनुजानां खण्डखण्डाः पुलिन्दैः ।
अशन-सुरत-सत्रैः पोषितास्तोषमाप्ता-
स्तदमल-गुण-गानैः श्रीहरिं ताः स्तुवन्ति ॥४६॥ ओजस्वी—

अत्र दरीवर्णन-भावस्याङ्गं परस्त्रीरति-रसाभासस्तस्याङ्गं शत्रुकृत-शत्रुस्तुतिरूपभावाभासः

देवेन्द्रजित्सु पृथुकात् पृथुकोपमाङ्गी-
रस्मासु सत्सु न तवेति गिराऽसुराणाम् ।
कंसस्य यो हृदि मदः स तु तेषु सर्व्वे-
ष्वाप्तेषु तत्पृथुकतां क्व गतो न जाने ॥४७॥ समाहितम्—

अत्र वीररसे मदाख्यव्यभिचारिभावस्य प्रशमोऽङ्गम्

---

जिन सब पर्वत की गुफाओं में श्रीकृष्ण द्वारा मारे हुए असुरों की स्त्रियाँ कुपित और विधवा होकर छिपी हुई थीं, वे भी वहाँ के भीलों के साथ खान-पान करके और उनके द्वारा पालित होकर सन्तुष्ट हो गईं तथा श्रीकृष्ण का निर्मल गुणगान करती हुई उनकी स्तुति कर रही हैं, उन गोवर्धनादि पर्वतों की वे सब गुफाएँ अतिशय शोभा पा रही हैं ॥४३॥

असुर लोग कंस से कह रहे हैं कि हे महाराज ! हम लोग देवताओं को भी पराजय करने वाले हैं, हमारे रहते पृथुक ( चिउड़ा ) के समान उस बालकृष्ण से आप को कोई भी भय नहीं है अर्थात् जैसे चिउड़ा सहज में ही चबाया जा सकता है वैसे ही श्रीकृष्ण को समझें । असुरों के इस वचन को सुन कर कंस के चित्त में जो अहंकार उत्पन्न हुआ था, वह अहंकार मालूम नहीं कहाँ चला गया जब वे ही सब असुर श्रीकृष्ण द्वारा चिउड़ा बना दिये गए अर्थात् सहज ही में मार डाले गए॥४

एवं हि कृष्णस्य गुणा अनन्ता लीलाप्यनन्ता महिमाप्यनन्तः।
तत्तत्कण-स्पर्शनमात्मवाचो विशुद्धये तद्गणनाशयालम् ॥४८॥

आक्षेपः

इत्थं हरेस्तद्गुण-वर्णनाम्बुधौ निमज्जनोन्मज्जन-फुल्ल-मानसौ।
सारीशुकौ स्वेप्सितमीश्वरौ निजा-वयाचतां तद्गुणवर्णनैः पुनः॥

## अथ श्रीकृष्णचन्द्राष्टकम्

अम्बुदाञ्जनेन्द्रनीलनिन्दिकान्ति-डम्बरः
कुङ्कुमोद्यदर्क-विद्युदंशु-दिव्यदम्बरः।
श्रीमदङ्ग-चर्चितेन्दु-पीतनाक्त-चन्दनः
स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्रनन्दनः ॥५०॥

---

इस प्रकार श्रीकृष्ण के गुण अनन्त, लीला भी अनन्त और महिमा भी अनन्त हैं, उनके कण मात्र के स्पर्श से वाणी की परम-शुद्धि हो जाती है परन्तु उनकी गणना की आश करना व्यर्थ है क्यों कि वे अनन्त हैं ॥४८॥

इस प्रकार सारी व शुक दोनों श्रीकृष्ण के गुणानुवाद रूप समुद्र में गोता लगा लगा प्रफुल्ल हृदय होकर पुनः श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करते हुए अपने नाथ श्रीराधाकृष्ण समीप अभीष्ट याचना करने लगे ॥४९॥

### अथ श्रीकृष्णचन्द्राष्टक

जिनकी कान्ति की घटा ने मेघ, अंजन व इन्द्रनीलमणि को तिरस्कृत कर दिया है, जिनका वसन कुङ्कुम, उदीयमान रवि किरण व विद्युत से भी अधिक दीप्तिमान है, एवं जिनका श्रीअंग कपूर व कुङ्कुम युक्त चन्दन से चर्चित है, वे ब्रजराज-नन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलों की दासता प्रदान करें ॥५

गण्डताण्डवातिपण्डिताण्डजेश-कुण्डल-
श्चन्द्र-पद्म-षण्ड-गर्व्व-खण्डनास्य-मण्डलः ।
बल्लवीषु वर्द्धितात्म-गूढ़भाव-बन्धनः
स्वाङ्घ्रि प्रदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्रनन्दनः ॥५१॥
नित्यनव्य-रूपवेश-हार्द्द केलि-चेष्टितः
केलि--नर्म्म--शर्म्मदायि- मित्रवृन्द--वेष्टितः ।
स्वीय-केलि--काननांशु--निर्जितेन्द्रनन्दनः
स्वाङ्घ्रिप्रदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्रनन्दनः ॥५२॥
प्रेमहेम-मण्डितात्म--बन्धुताभिनन्दितः
क्षौणीलग्नभाल-लोकपाल-पालि-वन्दितः ।

---

जिनके युगल कपोलों पर मकराकृति कुण्डल ताण्डव नृत्य की अपनी अति चतुराई को प्रकट कर रहे हैं, जिनका मुखमंडल चन्द्र व कमलों के गर्व को खंडन कर रहा है और जो व्रजांगनाओं में अपने गूढ़ प्रेम भाव के बन्धन को बढ़ा रहे हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥५१॥

जिनका मनोहर रूप व वेश और प्रेमकेलिचेष्टा नित्यनवीन है, जिनकी क्रीड़ाकालीन परिहास सुखकारी है एसे मित्रमंडली से जो परिवेष्टित हैं, तथा जिन्होंने अपनी केलिकानन की किरणमाला द्वारा देवराज के नन्दन-कानन को भी पराजय कर दिया है वे ही व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥५२॥

प्रेम रूपी सुवर्ण से भूषित बन्धुवर्ग द्वारा जो अभिनन्दित होते हैं, इन्द्रादि लोकपालगण पृथिवी पर मस्तक रख कर जिनका अभिवादन करते हैं और जो स्वयं प्रतिदिन प्रातःकाल

नित्यकाल-सृष्ट-विप्र-गौरवालि-वन्दनः
स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्रनन्दनः ॥५३॥
लीलयेन्द्रकालियोष्ण-कंसवत्स-घातक—
स्तत्तदात्म-केलिवृष्टि-पुष्टभक्त-चातकः ।
वीर्य्य-शील-लीलयात्म-घोषवासिनन्दनः
स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्रनन्दनः ॥५४॥
कुञ्जरास--केलि--सीधु--राधिकादि-तोषण—
स्तत्तदात्म-केलिनर्म्म-तत्तदालि--पोषणः ।
प्रेमशील--केलि--कीर्त्ति--विश्वचित्त--नन्दनः
स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्रनन्दनः ॥५५॥

---

यथासमय विप्रों और गुरुजनों को प्रणाम किया करते हैं, वे ही ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥५३॥

जिन्होंने खेल ही खेल में इन्द्र और कालियनाग का गर्व चूर्ण किया, कंस व वत्सासुरादि असुरों का संहार किया, और उस उस पूर्वोक्त लीला द्वारा अपने चातक रूप भक्तों का पोषण किया तथा अपने वीर्य पराक्रमादि द्वारा अपने ब्रजवासी गोपों को आनन्दित किया, वे ही ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥५४॥

जो कुंज मध्य रासक्रीड़ा रूप अमृत द्वारा श्रीराधिका को प्रसन्न करते हैं और उस कुञ्ज रास केलि समय के परिहास वचनों द्वारा सखीवृन्द का पोषण करते हैं तथा जिनके प्रेम, शील व केलि की कीर्ति द्वारा विश्व के जनों का मानस पवित्र हो रहा है, वे ही ब्रजराजनन्दन मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥५५॥

रासकेलि-दर्शितात्म--शुद्धभक्ति--सत्पथः
स्वीय--चित्र--रूप--वेश-मन्मथालि--मन्मथः ।
गोपिकासु नेत्रकोण--भाववृन्द--गन्धनः
स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्रनन्दनः ॥५६॥
पुष्पचायि--राधिकाभिमर्श-लब्धितर्षितः
प्रेमवाम्य -रम्य--राधिकास्य- दृष्टिहर्षितः ।
राधिकोरसीह लेप एष हारि--चन्दनः
स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्रनन्दनः ॥५७॥
अष्टकेन यस्त्वनेन राधिकाऽसुबल्लभं
संस्तवीति दर्शनेऽपि सिन्धुजादि-दुर्लभम् ।

---

जिन्होंने रासलील द्वारा भक्तों को अपना विशुद्ध भक्तिमय सत्पथ दर्शाया है, जिनके विचित्र रूप व वेश द्वारा मन्मथ का भी मन मथित हो जाता है तथा जो गोपियों के प्रति नेत्र के कोने से अपने भाव को सूचित करते हैं, वे ही गोपेन्द्रनन्दन मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥५६॥

श्रीराधा के फूल बीनते समय जो श्रीकृष्ण उनके अंग-स्पर्श के लिए सतृष्ण हो उठते हैं, प्रेम में वाम ( टेढ़ी ) बनी श्रीराधा के रमणीय मुख के दर्शन कर जिनका आनन्द बढ़ जाता है और जो श्रीराधिका के वक्ष स्थल पर मनोहर चन्दन-लेप सदृश हैं अर्थात् श्रीराधा के हृदय-धन स्वरूप हैं, वे ही व्रजराज-नन्दन मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥५७॥

जो जन इस अष्टक द्वारा श्रीराधा के प्राणबल्लभ श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं, तो वे श्रीकृष्ण जिनका दर्शन लक्ष्मी आदि को भी दुर्लभ है, उन पर प्रसन्न हो उसे श्रीराधिका सहित आनन्दित अपने चरणकमल की सेवा में नियुक्त करते हैं। ( यह

तं युनक्ति तुष्टचित्त एष घोष-कानने
राधिकाङ्ग -सङ्गनन्दितात्मपाद--सेवने ॥५८॥
[ इति श्रीकृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ]

## अथ श्रीराधिकाष्टकम्

कुंकुमाक्त-काञ्चनाब्ज--गर्व्वहारि-गौरभा
पीतनाञ्चिताब्जगन्ध-कीर्त्तिनिन्दि-सौरभा ।
बल्लवेश-सूनु-सर्व्ववाञ्छितार्थ साधिका
मह्यमात्मपादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥५९॥
कौरबिन्दकान्ति-निन्दि-चित्रपट्टशाटिका
कृष्ण-मत्तभृङ्ग-केलि-फुल्ल पुष्पबाटिका ।
कृष्ण-नित्य-सङ्गमार्थ-पद्मबन्धु-राधिका
मह्यमात्मपादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥६०॥

---

राधिकाङ्गसङ्गनन्दित के दो अर्थ हैं, १. राधिका सहित आनन्दित श्रीकृष्ण २. राधिका सहित आनन्दित जन ) ॥५८॥
इति श्रीकृष्णचन्द्राष्टक सम्पूर्ण ॥

अथ श्रीराधिकाष्टक:—

जिनके अंग की गौरकान्ति कुङ्कुमलिप्त स्वर्णकमल के गर्व को हरण कर लेती है, जिनका अंग-सौरभ कुङ्कुमयुक्त पद्म के सुगन्ध की कीर्त्ति को तिरस्कार करता है, तथा जो ब्रजराज-नन्दन श्रीकृष्ण की समस्त वाञ्छित विषयों की पूर्त्ति करने वाली हैं, वे ही श्रीराधिका मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥५९॥

जिनकी कौशेय साड़ी प्रवाल ( मूंगा ) को तिरस्कार करती है, जो कृष्णरूप मत्त भ्रमर के निमित्त पुष्पवन स्वरूपा हैं तथा

सौकुमार्य्य-सृष्ट-पल्लवालि-कीर्त्ति-निग्रहा
चन्द्र-चन्दनोत्पलेन्दु-सेव्य-शीतविग्रहा ।
स्वाभिमर्श-बल्लवीश-कामताप-बाधिका
मह्यमात्मपादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥६१॥
विश्ववन्द्य-यौवताभिवन्दितापि या रमा—
रूप—नव्य—यौवनादि—सम्पदा न यत्समा ।
शीलहार्द-लीलया च सा यतोऽस्ति नाधिका
मह्यमात्मपादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥६२॥
रासलास्य-गीतनर्म्म-सत्कलालि-पण्डिता
प्रेमरम्य-रूप-वेश-सद्गुणालि-मण्डिता ।

---

जो कृष्ण–मिलन के लिए नित्य पद्मबन्धु सूर्य्यदेव की आराधना किया करती हैं, वे ही श्रीराधिका मुझे अपने चरणकमल का दास्य अर्पण करें ॥६०॥

जिन्होंने अपनी सुकुमारता द्वारा पल्लव श्रेणियों की कीर्त्ति के अपमान की सृष्टि की है अर्थात् उनकी कीर्त्ति को अत्यन्त तुच्छ कर दी है, जिनके सुशीतल अंग की सेवा चन्द्र, चन्दन, कमल व कपूरादि समस्त शीतल वस्तुएँ करती हैं तथा जो अपने अंग के स्पर्श द्वारा गोपीपति श्रीकृष्ण के कन्दर्पताप को निवारण करती हैं, वे ही श्रीराधिका मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥६१॥

जिस लक्ष्मी के रूप नव यौवनादि सम्पत्ति का अवलोकन करके विश्व की रमणीगण भी उनका अभिवादन करती हैं ऐसी सद्भाग्यवती लक्ष्मी भी रूप, यौवन, शील, गुण, लीलादि सम्पत्ति में जिनके समान नहीं है, तथा इस जगत में जिनसे अधिक रूप–गुण सम्पन्ना कोई रमणी नहीं है, वे ही श्रीराधिका मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥६२॥

विश्वनव्यगोपयोषिदालितोऽपि याधिका
महामात्मपादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥६३॥
नित्यनव्यरूप-केलि-कृष्णभाव-सम्पदा
कृष्ण-रागबन्धगोप-यौवतेषु कम्पदा ।
कृष्णरूपवेश-केलिलग्न-सत्समाधिका
महामात्मपादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥६४॥
स्वेद-कम्प-कण्टकाश्रु-गद्गदादि-सञ्चिता-
मर्ष-हर्ष-वामतादि-भावभूषणाञ्चिता ।
कृष्ण-नेत्र-तोषि-रत्न-मण्डनालि-दाधिका
महामात्मपादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥६५॥

---

जो रास में नृत्य, गीत, परिहास, वैदग्धी के नाना-विद्या में परम पंडिता हैं, जो प्रेम के द्वारा रमणीय रूप-वेश व सद् गुणावली से सुशोभित हैं और जो विश्वविख्यात नवीन व्रज-सुन्दरियों से भी अधिक हैं वे ही श्रीराधिका मुझे अपने चरण-कमलों का दास्य प्रदान करें ॥६३॥

जो अपने नित्य नवीन रूप, केलि व कृष्णभाव (कृष्ण में प्रेमभाव या अपने में कृष्ण का प्रेमभाव) सम्पत्ति द्वारा श्रीकृष्ण में बद्ध प्रेमवती व्रजबालाओं को कम्पित कर देती हैं (स्वपक्षाओं को हर्ष से और विपक्षाओं को दुःख से) तथा श्री-कृष्ण के वेश, रूप व केलि में जिनके चित्त की नित्य समाधि लगी रहती है, वे ही श्रीराधिका मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥६४॥

जो स्वेद, कम्प, पुलक, अश्रु, गद्गद्-स्वरादि सात्त्विक विकारों द्वारा संयुक्त हैं, क्रोध, हर्ष व वामता आदि भावभूषणों से विभूषित हैं तथा जिन्होंने श्रीकृष्ण के लोचनानन्द दायक रत्ना-

या क्षणार्द्ध कृष्णविप्रयोग-सन्ततोदिता—
नेकदैन्य-चापलादि-भाववृन्द-मोदिता ।
यत्नलब्ध-कृष्णसङ्ग-निर्गताखिलाधिका
मह्यमात्मपादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥६६॥
अष्टकेन यस्त्वनेन नौति कृष्णवल्लभां
दर्शनेऽपि शैलजादि-योषिदालि-दुर्लभाम् ।
कृष्णसङ्ग-नन्दितात्म-दास्य-सीधु-भाजनं
तं करोति नन्दितालि-सञ्चयाशु सा जनम् ॥६७॥

[ इति श्रीराधिकाष्टकं सम्पूर्णम् ]

इति तन्मुखतः कृष्ण-गुणालीवर्णनामृतम् ।
पीत्वा मग्ना सभा सासीदपारानन्द-वारिधौ ॥६८॥

---

लंकारों को धारण कर रक्खा है, वे ही श्रीराधिका मुझे अपने चरणकमलों का दास्य प्रदान करें ॥६५॥

जो क्षणार्द्ध काल के लिए श्रीकृष्ण के वियोग में अतिशय दुःखित हो जाती हैं और उस समय दैन्य, चापल्यादि संचारी भावों द्वारा आमोदित हो जाती हैं और तब दूतीप्रेरणादि प्रयत्न द्वारा श्रीकृष्ण का संग प्राप्त करके अपनी समस्त मनो-व्यथा को शान्त करती हैं, वे ही श्रीराधिका मुझे अपने चरण-कमलों का दास्य प्रदान करें ॥३६॥

जो व्यक्ति इस अष्टक द्वारा पार्वती आदि देवियों के लिये भी दुर्लभ दर्शन-वाली आराधा की स्तुति करते हैं, तो श्री-राधिका अपनी सखियों को आनन्दित करती हुई व स्वयं भी श्रीकृष्ण के संग आनन्दित होती हुई, उस व्यक्ति को शीघ्र ही अपने दास्यामृत का पात्र बना लेती हैं ॥६७॥

इति श्रीराधिकाष्टक सम्पूर्ण ॥

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्‌गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः सप्तदशाभिधोऽयमगमन्मध्याह्नलीलामनु ॥१७॥

## ❀=:+ अथ अष्टादशः सर्गः +:=❀
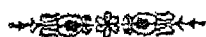
अथ प्रीतेश्वरी कीरमादाय वत्सला करे ।
अपाठयल्लालयन्ती तद्वत् कृष्णश्च शारिकाम् ॥१॥

---

इस प्रकार उस सारी व शुक के मुख से श्रीकृष्ण की गुणावली के कथामृत का पान करके सखीसभा अपार आनन्द-सागर में निमग्न हो गयीं ॥६८॥

यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य की मध्यान्हलीला का सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ। यह श्रीगोविन्दलीलामृत श्रीकृष्ण-चैतन्यमहाप्रभु के पदारविन्द के मधुप श्रीरूपगोस्वामी की कृपा का फल है, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीजीव-गोस्वामी के संग से उदय हुआ है एवं श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वरदान से प्रादुर्भूत हुआ है ॥१७॥

:❀—⁂—❀:
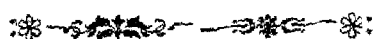
अनन्तर श्रीराधा प्रसन्न हो शुक को अपने हस्त पर बैठाकर उसे प्यार करती हुई पढाने लगी तथा श्रीकृष्ण भी उसी प्रकार सारी को हस्त में बैठाकर पढाने लगे ॥१॥

स्तुहि कीराभीर-वीरं नीरदाभ-शरीरकम् ।
गिरीन्द्रधारिणं धीरं सरस्तीर-कुटीरगम्॥२॥
वद शुक ! सद्गुणमणिनिकराकर तरुणी मादक-मधु-मधुराधर ।
सुन्दर-शेखर शुचि रस-सागर व्रजकुलनन्दन जय वर नागर ॥३॥
अघ-बक-शकटक-दव-भय-हरण नवदल-कमलज-मदहर-चरण ।
चरण-जलज-नत-जनचय-शरण पठ खग ! जय जय धरधर-धरण ॥
मञ्जुल-कल-मञ्जीरं गुण-गम्भीरंसुरारि-रणरं वीरम् ।
गिरिवर-धारण-धीरं भण धृतहीरं कीर ॥४॥ भावासमावेशः

---

श्रीराधा बोलीं— हे शुक ! तुम मेरे कुण्ड के तट स्थित कुटिर में पधारे हुए गोवर्द्धनधारी, घनश्याम व गोपवीर श्रीकृष्ण की स्तुति करो ॥२॥

हे शुक ! बोलो:—"हे श्रीकृष्ण ! आप सद्गुणरूप मणि समूह के निधिस्वरूप हैं, तरुणीगण मादक मधु से भी मधुर अधर वाले हैं ! हे सुन्दरशेखर ! हे शृङ्गार रस सागर ! हे वर-नागर ! हे व्रजकुलनन्दन ! आप की जय हो" ॥३॥

बोलो शुक:—"आप अघासुर, बकासुर, शकटासुर व दावानल से उत्पन्न भय से व्रज के रक्षाकर्त्ता हो, आपके पादपद्म नवदलयुक्त सहस्रदल कमल के गर्व को खर्व करने वाले हैं एवं चरणकमल में प्रणत जनों के आप आश्रय स्वरूप हो ! हे गोवर्द्धनधारी ! आपकी बारम्बार जय हो" ।४॥

हे शुक ! जिनके नूपुर मनोहर, मधुर व अस्फुट ध्वनियुक्त हैं, जो गुणों से गम्भीर हैं, असुरयुद्ध में बीर हैं, गोवर्द्धन-धारण में धीर हैं, और हीर ( १. हीरा २. कुन्दपुष्प ) धारण किये हुए हैं, उन श्रीहरि को गाओ ॥५॥

कालिन्दी-जल-कल्लोल-बिहार-वर-वारणम् ।
रमणी-करिणी-सङ्गं गिरिकन्दर-मन्दिरम् ॥६॥
बिलास-लहरी-सिन्धुं चपलोदार-कुण्डलम् ।
कीर ! चिन्तय गोबिन्दं सरसं भासुराङ्गदम् ॥७॥
( युग्मकम् ) भाषासमकम्

स्तुहि सारि ! मनोहारिबारिजालि-जिदाननाम् ।
जगन्नारी-गर्व्वहारि-गुणोदारां मम प्रियाम् ॥८॥
नागरि नगधर-नागर-हृदयमरालि असि राधिके धन्या ।
त्रिजगत्तरुणी-श्रेणी कलासु शिष्यायते यत्ते ॥९॥

---

जो कालिन्दी जल बिहार में हस्ती स्वरूप हैं, रमणी-रूपिणी हस्तिनी जिनके संग है, गिरिराजगोवर्द्धन की कन्दरा ही जिन का निवासमन्दिर है, बिलास रूपी लहरियों के जो सिन्धु हैं, जिनके कर्णों में चंचल व श्रेष्ठ कुण्डल हैं, हे शुक ! उन्हीं सुदीप्त अंगदधारी सरस गोबिन्द का चिन्तवन करो ॥६–७॥

तब श्रीराधिका की भाँति श्रीकृष्ण भी श्रीराधिका के सद्-गुण व सौन्दर्यादि के आस्वादन करने के लिए सारिका को पढ़ाने लगे, यथा-श्रीकृष्ण बोले-"हे सारिके ! जिनका बदनकमल मनोहर कमल व चन्द्रश्रेणी को तिरस्कार करता है, और जिनके उदार गुणगण जगत् के नारिबृन्द के गर्व को चूर्ण करता है, उन्ही मेरी प्रियतमा श्रीराधा की स्तुति करो ॥८॥

स्तुति:—"हे नागरी राधिके ! तुम धन्य हो जो तुम गिरि-धारी नागर श्रीकृष्ण के हृदय सरोबर में हंसिनी की भाँति बिहार कर रही हो और कामकला में त्रिलोकी के तरुणीबृन्द तुम्हारी शिष्या की भाँति आचरण कर रही हैं ॥९॥

गुणमणि-खनिरुद्यत्प्रेमसम्पत्सुधाब्धि-
स्त्रिभुवन-वर-साध्वीवृन्द-वन्द्योहितश्रीः।
भुवन-महित-वृन्दारण्यराज्याधिराज्ञी
बिलसति किल सा श्रीराधिकेह स्वयं श्रीः ॥१०॥
सल्लक्षणैः सद्गुण-सञ्चयैः परै-रनन्यगैः सत्प्रणयैश्च निर्मलैः।
वशं विधायाजितमप्यनेन या लसत्यटव्यामिह सा स्वयं रमा ॥११॥
धराधर-धरं धीरं धरोद्धार-धुरन्धरम ।
धारं धारं रुरोधारं राधा धीराऽधरेऽधरम् ॥१२॥ द्व्यक्षरम्

---

जो गुणरूपी मणियों की खान हैं व उन्नत प्रेमसम्पत्ति के सुधासमुद्र हैं, जिनकी शोभासम्पत्ति की वन्दना त्रिभुवन की श्रेष्ठ साध्वी स्त्रियाँ करती हैं, जो जगत्पूजित वृन्दावन राज्य की राजाधिराजमहिषी हैं, जो लक्ष्मी की भी लक्ष्मीरूपिणी हैं, वे ही श्रीराधिका इस वृन्दावन में विशेष शोभा को प्राप्त हो रही हैं॥१०

जिन्होंने अपने सर्वोत्कृष्ट सत् लक्षण, सद्गुण, निर्मल व अनन्यलभ्य प्रेम द्वारा अजित ( श्रीकृष्ण ) को भी जीत लिया है, वे स्वयं रमारूपिणी श्रीराधिका श्रीकृष्ण के साथ इस वृन्दावन में शोभा को प्राप्त हो रही हैं, ("स्वयं रमा" से तात्पर्य यह है कि जैसे अन्य भगवत्स्वरूप, तो 'भगवान्' हैं और श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवतानुसार 'स्वयं भगवान्' हैं, वैसे ही अन्य लक्ष्मी तो 'रमा' हैं, और श्रीराधा 'स्वयं रमा' हैं—रमा की भी अंशिनी—मूल रमा हैं ) ॥११॥

धीरा श्रीराधिका ने गोवर्द्धन धर श्रीकृष्ण के अधर पर अधर पुनः पुनः धारण कर गोवर्द्धनधारण में धुरन्धर ( दक्ष ) श्रीकृष्ण को अतिशय रोध कर लिया ( अटका कर रखा )॥ ( इस श्लोक में 'ध' व 'र' दो ही अक्षरों के प्रयोग होने से इसे

तीरे तीरे तततरौ तैराराचैत्तिरीततिः ।
रीत्यतीते रुतैरत्र तारै रातितरां रतिम् ॥१३॥ द्वयक्षरम्
अथोड्डीयापतत् मारी स्वेश्वर्य्याः पाणि-पल्लवे ।
शुकोऽपीशस्य तावेतौ मुदापीपठतां पुनः । १४॥
लीलालिमालि भण सारि पटीर-हीर-
कुन्देन्दु—चन्द्रकरका—बिमलामधारैः ।
रोलम्ब—नीरद—तमाल—समाङ्गभासः
संफुल्ल-सारस-मकरन्द-रसाति-मञ्जु म् ॥१५॥ समकम्
गोकुलेन्दोर्नरीनर्त्ति कीर्त्तिर्यस्यागुणौघुणैः ।
जर्ज्जरीक्रियते विश्वनारी-हृद्वंश-सन्ततिः ॥१६॥

---

द्वयक्षर चित्र बाक्य कहा जाता है ) ॥१२॥

द्वयक्षरी का दूसरा उदाहरण देते हैं, यथा—यमुना के विस्तृत वृक्षावली शाभित तीर तीर प्रति तीतर नामक पक्षिगण अत्युच्च ध्वनि पूर्वक अत्यन्त आनन्द का बिस्तार कर रहा है ॥१३

अब मारी उड़कर अपनी स्वामिनी श्रीराधा के करपल्लव पर आ बैठी और शुक भी उड़कर श्रीकृष्ण के करपल्लव पर जा बैठा और तब दोनों ने मनोहर स्वर से पुनः पाठ आरम्भ किया ॥१४॥

शुक सारी से बोला, "हे सखि ! भ्रमर, मेघ व तमाल सदृश कान्ति वाले श्रीकृष्ण की लीला श्रेणी का कीर्तन करो, जो लीला चन्दन, कुन्दकुसुम, चन्द्र, कपूर व करक ( ओला ) से भी स्वच्छ व शीतल है तथा प्रफुल्लित कमल के मकरन्द से भी अधिक मनोहारिणी है ॥१५॥

गोकुलचन्द्र श्रीकृष्ण की कीर्त्ति अपनी गुणावली रूप घुन ( कीड़ा ) द्वारा विश्व की रमणियों के हृदयरूप बाँसों को जर्जर

सरारि-मारसैः सारैः सरसं सारसै रसैः ।
सोऽसुरारिःससारारं मारि रासरसी सरः ॥१७॥ द्वयक्षरम्
एते दुःशील-वनिता मुरलीध्वनयो रतिम् ।
नीवीविस्रंसनाद्यस्य गोपीभ्यः सारि तं स्तुहि ॥१८ क्रियागुप्तकम्
मा धवस्य पुरोनासां साध्वीनां गोपसुभ्रुवाम् ।
राजते वदने तन्वामपि स्वप्रिय-चेतसाम् ॥१९॥ कर्त्तृगुप्तकम्
गम्भीर-नीरकण-हारि-सरोजराजि-
सञ्चारि-मञ्जुल-समीर-विलासलोले ।
दोला-विलास-सरसां सरसी-कुटीरे
गोविन्द-केलि-रमणीं भण कीर धीराम् ॥२०॥ समकम्

---

कर पुनः पुनः अतिशय नृत्य कर रही हैं ॥१६॥

पुनः द्वयक्षरी का उदाहरण देते हैं:— हे सारि ! श्रेष्ठ सारस, भ्रमर, पद्म व जल द्वारा रसमय राधाकुण्ड के लिए रास–रसिक असुरारि श्रीकृष्ण ने शीघ्र गमन किया ॥१७॥

हे सारिके ! सच्चरित्रवती मुरली अपनी ध्वनि लहरी रूपिणी वनिताओं के द्वारा गोपियों के नीवी–बन्धन का मोचन करके जिस श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का रमण कराती हैं, उस श्री–कृष्ण की स्तुति करो ॥१८॥

इन साध्वी गोपवनिताओं का चित्त सर्वदा अपने प्रिय श्री–कृष्ण में ही रहता है, अतएव अपने अपने पति के सन्मुख उन के मुख पर सौन्दर्य–शोभा प्रकट नहीं होता है अर्थात् वे प्रसन्नतापूर्वक अपने पति का मुख–दर्शन नहीं करती हैं ॥१६॥

अब सारिका शुक से कहती है:— हे शुक ! गम्भीर जल की कणाओं के स्पर्श से शीतल तथा कमल समूह में संचरण करने से सुगन्धित व मन्थर बने हुए समीर के विलास से राधाकुण्ड

साकं सखीभिरागत्य काननेऽस्मिन् दिने दिने ।
उत्काप्युत्काय मे राति राधा वामतया बत ॥२१॥ कर्म्मगुप्तकम्

त्वया श्रीराधिके यावत् संचुचुम्बे मदाननम् ।
तत्तयोष्ठाधरौ तावत् पिपासति निरन्तरम् ॥२२॥ सम्बन्धगुप्तकम्

मयि मनसिज-लोले राधिका क्वेत्युत्के
श्रवण-नयन-शन्दे सुष्ठु वाम-स्वभावाः ।
हृदि विधृत-मदीहा-वर्द्धके तद्वयस्याः
सततमधुरमिष्टे भाषिता-लोकिते ते ॥२३॥ क्रियागुप्तकम्

द्राक्षा-दाड़िम-बीजानि वृन्दयोपहृतान्यथ ।
एतावादयतामीशौ स्वहस्तेनातिवत्सलौ ॥२४॥

---

का तीरस्थ कुटिर प्रदेश आन्दोलित हो रहा है, ऐसे कुञ्जकुटी में श्रीगोविन्द सहित रमणकारिणी धीरस्वभावा श्रीराधा का कीर्तन करो ॥२०॥

तब श्रीकृष्ण बोले:— श्रीराधा प्रतिदिन इस कानन में सखियों के साथ मिलने के लिए उत्कण्ठित होकर भी वाम्य-स्वभाव के कारण मुझ उत्कण्ठित को हाय बड़ा दुःख देती हैं ॥२१

हे राधिके ! तुम जैसे मेरे वदन-चुम्बन की इच्छा करती हो वैसे ही मैं भी तुम्हारे ओष्ठाधर-पान करने की इच्छा किया करता हूं ॥२२॥

मैं जब काम-चंचल व उत्कंठित हो "श्रीराधा कहाँ हैं" कहकर सखियों से पूछता हूँ तो अत्यन्त वाम्य स्वभाववाली श्रीराधा की सखियाँ मेरे प्रति जो कठोर वचन व दृष्टि का प्रयोग करती हैं, वे मेरे श्रवण व नयन को सुख देते हैं तथा हृदय की चेष्टा को और अधिक बढ़ा देते हैं ॥२३॥

तब वृन्दादेवी द्राक्षा व दाडिम के दाने ले आयीं और

ततः सारी-किर-पाली द्यूतकेलीच्छयेरितौ ।
ययतुस्तौ हरित्कुञ्जं सुदेवी-सुखदाभिधम् ॥२५॥
आसने पाशक-क्रीडाकोष्ठ चित्रान्तरे हरिः ।
निषषादैकतः स्वीयैः ससखी राधिकान्यतः ॥२६॥
हितदायोपदेष्ठारावभूतां ललिता-बटू ।
सुदेवी-सुबलौ पार्श्वे परिणायविधायिनौ ॥२७॥
नान्दी-वृन्दे च मध्यस्थे कुन्दाली सभिकाभवत् ।
जगृहेऽष्टापदान् श्यामानीशा पीतांस्तदीश्वरः ॥२८॥

---

अतिवत्सल श्रीराधा कृष्ण अपने हस्त से सारी व शुक को खिलाने लगे ॥२४॥

पश्चात् अक्षक्रीड़ा ( पाशा खेल ) की इच्छा से प्रेरित हो श्रीराधाकृष्ण सारी व शुक को खिलाते खिलाते सुदेवी-सुखद-नामक हरित् कुञ्ज को पधारे ॥२५॥

तब पाशा-खेल के लिए आसन बिछाया गया जिसके मध्य भाग में खाने बने हुए थे। उस आसन की एक ओर सुबल व मधुमंगलादि सखाओं के साथ श्रीकृष्ण बैठे और दूसरी ओर अपनी सखियों के साथ श्रीराधा बैठीं ॥२६॥

चौपड़-खेल आरम्भ हुआ। श्रीराधा को परामर्श ललिता और श्रीकृष्ण को परामर्श मधुमंगल देने लगे-और श्रीराधा के पार्श्व में सुदेवी और श्रीकृष्ण के पार्श्व में सुबल गोट चलाने लगे ॥२७॥

और नान्दीमुखी व वृन्दादेवी मध्यस्थ बन और कुन्दलता द्यूतकारिका ( जुआ खिलाने वाली ) बन सभा के मध्य में बैठीं तथा श्रीराधा ने श्याम वर्ण का पाशा और श्रीकृष्ण ने पीत-वर्ण का पाशा लिया ॥२८॥

प्रवृत्ते प्रथमे द्यूते सुरङ्ग-रङ्गिणी-ग्लहे ।
कृष्णोऽजयत् प्रफुल्लः सन् मृगीं बद्ध्वानयद्बटुः ॥२६॥
द्वितीये त्वजयत् कान्ता मुरली-पाविका-ग्लहे ।
आच्छिद्य जगृहे वंशीं ललिता कृष्णनिह्नुताम् ॥३०॥
द्वयोर्हार-ग्लहे वृत्ते तृतीये कैतवे बटुः ।
परिणायेऽवदत् कृष्ण ! सारीं तां मारयैकिकाम् ॥३१॥
तच्छ्रुत्वा सारिका भीता कलोक्तिः काकुभाषिणी ।
उड्डीयागादग्रशाखां जहास कौतुकात् सभा ॥३२॥
हास-कोलाहले वृत्ते कैतवे कैतवी हरिः ।
हीनदायेऽपि तां सारीं हत्वा प्राह जितं मया ॥३३॥

---

प्रथम बार द्युतक्रीडा में श्रीराधाकृष्ण के सुरंग व रंगिनी नाम के मृग व मृगी दाव पर रक्खे गए श्रीकृष्ण की जीत हुई और मधुमंगल प्रसन्न होकर मृगी को बाँध कर ले आया ॥२६॥

दूसरी बार, मुरली (बेणु) वीणा व दाव पर रक्खे गये जिसमें श्री रधा की जीत हुई। श्रीकृष्ण के वंशी छिपा लेने पर भी ललिता ने बलपूर्वक छीन कर ले ली ॥३०॥

तीसरी बार, श्रीराधाकृष्ण ने अपना अपना हार दाव पर लगाया तो गोटी चलते समय मधुमंगल ने कहा 'कृष्ण' तुम उस सारी ( गोटी ) को मारो ॥३१॥

यह सुन कर मञ्जुभाषिणी सारी ( मैना ) ने यह समझा कि मारने को कहा गया और वह भय और दुःख से करुणध्वनि करती हुई उड़कर एक डाल के अग्रभाग पर जा बैठी। यह देख सभा के सब लोग अच्छा कौतुक मान हंसने लगते ॥३२॥

तो बड़ा हास्य कौतुहल हुआ और तब छलिया श्रीकृष्ण ने

तावदीशाभीष्टदाये पतितेऽष्टापदान् हरेः ।
बद्धान् कृत्वा स्वसारीभिर्हसन्त्याह मया जितम् ॥३४॥
मिथो हार-हृतावासीत्तयोर्युद्धं कराकरि ।
बटुना कुन्दवल्या च वयस्यानां वदावदि ॥३५॥
मध्यस्थ्ये नान्दिका-वृन्दे पृष्टे सर्व्वैस्तदोचतुः ।
आवाभ्यामन्य-चित्ताभ्यां न सम्यगवधारितम् ॥३६॥
साम्यमास्तां द्वयोरेव जयो वाथ पराजयः ।
हारोऽस्तु युवयोः कण्ठे पुनर्द्यूतं प्रवर्त्त्यताम् ॥३७॥
वयस्याली-कलहे द्यूते चतुर्थे राधिका-जये ।
प्राप्ते सारीग्दायेऽपि चालयन् शङ्कितो बटुः ॥१८॥

---

सारी ( गोटी ) को मारने वाले दाव के न पड़ने पर भी वाक्य के छल से सारी मार लिया, मैंने मार लिया" कहने लगे ॥३३॥

इतने ही में श्रीराधा ने पाशा फेंका तो दाव पड़ गया—बस उन्होंने अपने पाशाओं के साथ श्रीकृष्ण के पाशाओं को भी समेट कर रख लिया और हंसती हंसती कहने लगीं—"मैं जीत गयी, जीत गयी" ॥३४॥

तब तो श्रीराधाकृष्ण दोनों के हार का छीन लेने के लिए परस्पर में हस्तयुद्ध ( हाथापाई ) करने लगे और उधर मधुमंगल व कृष्णपक्षपातिनी कुन्दलता का श्रीराधा की सखियों के साथ वाग्-युद्ध होने लगा ॥६५॥

तब सब मध्यस्थ बने हुए नान्दीमुखी व वृन्दा को पूछने लगे तो दोनों बोलीं कि हम दोनों तो अन्यमनस्क थीं, सो इस विवाद का कुछ भी नहीं सुना ॥३६॥

और तुम दोनों का जय अथवा पराजय बराबर होवे, अब तुम दोनों अपना अपना हार पहन कर पुनः पाशा खेलो ॥३७॥

जितं जितं न इत्युक्त्वा द्वयोः सारीरमिश्रयत् ।
बन्धुं तमुद्यदालीनां तेनासीत् सुमहान कलिः ॥३६॥ युग्मकम्
ईशामीशोऽब्रवीत् सारी-चालनेऽत्र भवेत् कलिः ।
शाय्यस्तिष्ठन्त्वक्षदायैर्दायद्यूतं प्रवर्त्तताम् ॥४०॥
त्वया मया वाक्षिप्तेऽक्षे दायैरेव जयाजयौ ।
दाया द्यूते दशैव स्युश्चत्वारस्तत्र ते समाः ॥४१॥
विषमा षट् तेषु पञ्च सवामञ्चाः समास्तव ।
भवन्तु जयदायेऽन्ये विषमाः पञ्च ते मम ॥४२॥

---

तब चौथी बार सखा और सखी को दाव पर लगा द्यूत आरम्भ हुआ। श्रीराधा का ही जय हो रहा है देख मधुमंगल को भय हुआ कि अब मुझको ही ले लेंगे। सो गोट चलाते समय दाव के न पड़ने पर भी "यह पड़ा" कहते हुए छल-बल से गोट बढ़ा कर "हमारी ही जीत हुई" कहकर श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनों के गोटों को सब मिला डाला। यह देख सखियाँ मधुमंगल को बाँधने को तैयार हो गयीं, फिर तो मधुमंगल के साथ एक बड़ा कोलाहल मच गया ॥३८-३९॥

तब श्रीकृष्ण श्रीराधा से बोले-'प्रिये! गोटचाल में कलह होता है, अतएव गोटों को रहने दो इनको चलाने की कोई आवश्यकता नहीं, पाशा के चिन्हों द्वारा ही पाशा खेल आरम्भ किया जाय ॥४०॥

हे प्रिये! तुम हम दोनों ही पाशा डालें, किन्तु जय-पराजय पाशा के चिन्हों द्वारा होगा। इस खेल में दस दान होंगे, उनमें से तुम्हारे समसंख्यक अर्थात् चार दान होंगे ॥४१॥

शेष छः में से 'बामञ्च' पाशा पड़ने पर, अर्थात् 'एक' आने पर तुम्हारे चार के साथ मिल दोनों समान अर्थात् पाँच पाँच

दाय-संख्यानि तत्संख्यैरङ्गान्यङ्गैर्द्वयोर्हि नौ ।
जये सति प्रगृह्णन्तामित्ययं विहितो ग्लहः ॥४३॥
अतोऽक्षे राधिका-क्षिप्ते दशाख्यो दाय आपतत् ।
जहसुर्मुदिताः सख्यः स विषण्ण इवाह ताम् ॥४४॥
बाहु-वक्षः-करावोष्ठाधरौ गण्डौ मुखं मम ।
अङ्गान्येतानि गृह्णन्तु त्वत्तदङ्गानि ते दश ॥४५॥
राधा कुन्दलतामाह सखिके कुन्दवल्लिके !
अङ्गानि मज्जितान्यस्य स्वाङ्गेषु स्थापयात्मनः ॥४६॥
क्षिप्तेऽक्षे हरिणा तावच्चतुःपञ्चाख्य आपतत् ।
दायस्तेनातिसंफुल्लं कुन्दवल्ली जगाद तम् ॥४७॥

---

होने पर तुम्हारी जय होगी और अन्य विषम पाँच में मेरी जय होगी ॥४२॥

और अब की बाजी में दाँव यह होगा कि हम दोनों में जिस की जय होगी वह अपने अंगों के द्वारा पराजित के उतने अंगों को ग्रहण करेगा जितने कि दान की संख्या होगी ॥४३॥

तब श्रीराधा के पाशा डालने पर दस पड़ने पर श्रीराधा की सखियाँ आनन्दित हो हँसने लगीं और श्रीकृष्ण उदास-से हो श्रीराधा से कहने लगे ॥४४॥

प्रिये ! मेरी दो भुजाएँ, मेरा वक्षःस्थल, मेरे दो हस्त, दो ओष्ठाधर, दो कपोल व मुख-ये दस अंग तुम्हारे उन उन अंगों को ग्रहण करें ॥४५॥

तब श्रीराधा ने कुन्दलता से कहा—"हे सखी कुन्दलते ! मैंने श्रीकृष्ण के अंगों को जीत लिया है सो तुम अपने प्रत्येक अंग को उनके प्रत्येक अंग पर अर्थात् बाहु को बाहु पर, मुख को मुख पर नयन को नयन पर, कपोल को कपोल पर अधर को अधर पर तथा वक्ष को वक्ष पर-स्थापन करो ॥४६॥

नयनयुग-कपोलं दन्त-वासो मुखान्तं
स्तन-युगल-ललाटे इत्थमस्या नवाङ्गीम् ।
कथमपि जयलेशे गर्व्विताया: सखीनां
पुरत इह बलात्त्वं स्वाधरेणाहराशु ॥४८॥
ललिताह ! हरे यानि तवाङ्गानि दशानया ।
कौन्द्यां धृतानि तान्यस्या: स्वाधरेणाहराग्रत: ॥४९॥
कौन्द्यब्रवीन्मया तानि ललिता-सव्य-गण्डके ।
धृतान्यस्माद्गृहाणेति सोऽभूत्तच्चुम्बनोन्मुख: ॥५०॥
ब्रुवाणा दश वामक्षेत्यक्षं राधा तदाक्षिपत् ।
स यथाज्ञा तवेत्युक्त्वा वामगण्डोन्मुखोऽभवत् ॥५१॥

---

पश्चात् श्रीकृष्ण ने पाशा डाला तो चार और पाँच अर्थात् नौ का दाव पड़ा जिसे देख श्रीकृष्ण अत्यन्त आनन्दित हुए और कुन्दलता श्रीकृष्ण से कहने लगी ॥४७॥

हे कृष्ण ! जैसे-तैसे किंचित् मात्र जय-लाभ करके श्रीराधिका अत्यन्त गर्बिता हो गयी हैं सो तुम इनके दो नयन, दो कपोल, दो ओष्ठाधर, बदन व स्तनयुगल-इन नौ अंगों पर अपने अंगो को स्थापन करो ॥४८॥

ललिता बोलीं—"हे कृष्ण ! श्रीराधिका के जो दस अंग हैं वे तो कुन्दलता ने ग्रहण कर रखे हैं सो तुम पहले इससे उन दस अंगों को अपने अधर द्वारा हरण कर लो ॥४९॥

यह सुनकर कुन्दलता बोली "मैंने वे दस अंग ललिता के बाएँ कपोल पर रख दिये हैं, सो वहीं से तुम ले लो" । ऐसा सुनते ही श्रीकृष्ण ललिता के कपोल-चुम्बन के लिए अग्रसर हुए ॥५०॥

उसी समय श्रीराधाने 'दश वामक्ष' ऐसा कहकर पाशा

बिमुखी ललिता क्रोधान् कौन्दी-कृष्णावभर्त्सयत् ।
कृष्णः प्राह प्रियां शश्वत् जितान्यङ्गानि मे नय ॥५२॥
इति निज-मुखमस्यास्तत्तादङ्गे निधातुं
चपलमनृजु-नेत्रा भर्त्सयन्त्यस्फुटोक्तिः ।
स्मित-रुदित-बिमिश्रं बारयन्ती कराभ्यां
प्रियमतिकुटिलभ्रूस्तस्य तुष्टिं व्यतानीत् ॥५३॥
एवं द्यूते बर्त्तमाने सहसा सारिकागता ।
आचख्यौ सूक्ष्मधीर्गोष्ठादागता जटिलेति सा ॥५४॥

---

डाला और इसे श्रीराधा का संकेत मान "जैसी आज्ञा" कहते हुए ललिता का बायाँ कपोल चुम्बन करने को उद्यत हुए। बस्तुतः श्रीराधा के "बामङ्ग" कहने से तात्पर्य पाशा के दाव से था परन्तु श्रीकृष्ण ने उसका अर्थ 'बांई ओर की वस्तु' से लिया अतएव ललिता का बायाँ कपोल चुम्बन करने को उद्यत हुए ॥५१

ललिता ने मुख फेर लिया और क्रोधित होकर कुन्दलता और श्रीकृष्ण को डाँटने लगी। श्रीकृष्ण भी श्रीराधा से बोले, "प्रिये ! तुमने बारम्बार मेरे अंगों को जीत लिया है सो तुम्हीं इनको ग्रहण करो" ॥५२॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण अपने मुख व अन्यान्य अंगों को श्री-राधा के उन उन अंगों पर स्थापन करने के लिये चंचल हुए तो श्रीराधा बचन, भौंह टेढ़ी कर, कुटिल नेत्रों से कटाक्ष करती हुई व अस्फुट बाक्य बोलती हुई, हास्य के साथ रोदन का भाव प्रकट करती और श्रीकृष्ण को डांटती हुई अपने दोनों हाथों से निवारण करने लगी—जिससे श्रीकृष्ण को परम तुष्टि ही हुई कारण कि श्रीराधा की समस्त चेष्टाएँ श्रीकृष्ण को परमानन्द ही प्रदान करती हैं ॥५३॥

तच्छ्रुत्वा चलितौ भीतौ सगणौ राधिकाच्युतौ ।
मिलित्वैवागतौ शीघ्रं कुञ्जं कुञ्जेनराभिधम् ॥५५॥
कृष्णोऽत्र स्थापितः कौन्द्या राधागात् सूर्य्यमन्दिरम् ।
तावत्तत्रागता वृद्धा जगाद कुन्दवल्लिकाम ॥५६॥
बिलम्बः कथमेतावान् सा तामाह न लभ्यते ।
वटुरेकोऽपि ते नीता निमन्त्र्य यौवतैः प्रगे ॥५७॥
एकः श्रीगर्ग-शिष्यो यो माथुरो वटुरागतः ।
बिश्वशर्म्माभिधः सूर्य्य-पूजायां स बिचक्षणः ॥५८॥

---

इस प्रकार जब द्यूतक्रीडा चल रही थी तो सूक्ष्मधीनाम की सारिका वहाँ आ पहुँची । इस सारिका को बृन्दादेवी ने जटिला का समाचार लाने को भेजा था । सो वह सहसा आकर कहने लगी—"गोष्ठ से जटिला आ रही है" ॥५४॥

यह सुनते ही श्रीराधाकृष्ण भयभीत हो अपने परिकरों सहित मिलित होकर वहाँ से निकल शीघ्र ही कुंजेनर नामक कुञ्ज को पधारे ॥५५॥

इस कुञ्जेनर नामक कुञ्ज में कुन्दलता श्रीकृष्ण को पधरा कर श्रीराधा के साथ सूर्यमन्दिर को चली गयीं, इतने में वहाँ ( सूर्यमन्दिर में ) जटिला आ पहुँची और कुन्दलता से पूछने लगी ॥५६॥

कुन्दलते ! इतनी देर क्यों ? कुन्दलता ने उत्तर दिया, एक भी ब्राह्मण-बालक यहाँ मिल नहीं रहा है । गाँव की युवतियाँ सब ब्राह्मण बालकों को एक दिन पहले से ही न्यौता देकर ले गयीं हैं ॥५७॥

किन्तु एक जन गर्गाचार्य का शिष्य मथुरावासी ब्राह्मण-बालक यहाँ आया हुआ है । वह सूर्य-पूजन-कार्य में अत्यन्त प्रवीण है ॥५८॥

कृष्णस्य काम्यकवने गां सञ्चारयतो गिरा ।
आगतोऽरिष्टकुण्डेऽसौ स्नातुं समधुमङ्गलः ॥५६॥
प्रार्थनात्त्वस्तमायान्तं दोषांस्ते श्रावयन् पथि ।
भवत्कटुगिरा रुष्टो न्यषेधन्मधुमङ्गलः ॥६०॥
वृद्धाह क्वास्त्यसौ साह सोऽत्रैव वीक्षते वनम् ।
यत्नादानय तं याहि नायात्येष गुणैस्तव ॥६१॥
अङ्गीकृत्य सुमिष्टान्नं भोजनं भूरिदक्षिणाम् ।
एको नायाति चेत्तौ द्वावानयेह धनिष्ठया ॥६२॥
वृद्धयाम्रेडिते गत्वा ते गृहीत्वा गते द्रुतम् ।
ब्रह्मवेशं स्फुरद्वेदं कृष्णं समधुमङ्गलम् ॥६३॥

---

श्रीकृष्ण कामवन में गौएँ चरा रहे हैं । उनके कहने से वह मधुमंगल श्यामकुण्ड में स्नान करने आया हुआ है ॥५६॥

वह मथुरावासी ब्राह्मणकुमार हमारी प्रार्थना पर यहाँ आ रहा था परन्तु उस दुष्ट मधुमंगल ने जो तुम्हारे कटुवचनों से रुष्ट है उसको तुम्हारे दोषों को सुना कर मार्ग में आते आते रोक दिया ॥६०॥

यह सुनकर जटिला ने पूछा कि वह ब्राह्मणकुमार कहाँ है तो कुन्दलता बोली कि वह यहीं है, वन की शोभा देख रहा है । जटिला बोली कि उसे तुरन्त ले आओ । कुन्दलता ने उत्तर दिया कि तुम्हारे गुणों के कारण वह आना नहीं चाहता है ॥६१

तब जटिला कहने लगी—"कुन्दलते ! तुम धनिष्ठा को लेकर जाओ । वह ब्राह्मणकुमार यदि अकेला न आना चाहे तो दोनों को "तुम्हें अच्छे अच्छे मिष्टान्न भोजन और मोटी दक्षिणा देगी" कहकर मना लाओ ॥६२॥

वृद्धा जटिला के दो-तीन बार इस प्रकार कहने पर कुन्दलता

वृद्धया मानितः कृष्णस्तामानन्दयदाशिषा ।
गोमांस्तेऽस्तु सुतः सर्व्व-मङ्गलालिङ्गिता स्नुषा ॥६४॥
पूजारम्भेऽवदत् कृष्णो वध्वास्ते नाम किं वद ।
राधेति वृद्धयोक्तोऽसौ सचमत्कारमाह ताम् ॥६५॥
सेयं गुणवती यस्याः साध्वीत्वं श्रूयते पुरे ।
धन्या त्वं यत्स्नुषा सैवेत्युक्त्वा राधामथाब्रवीत् ॥६६॥
नावृतः कारयेत् कर्म्म तद्धास्त्वदतनुक्रतौ ।
वृणु मां स्त्री न मे स्पृश्या स्पृशन्ती मां कुशैः पठ ॥६७॥

---

व धनिष्ठा वहाँ गयीं जहाँ मधुमंगल के साथ श्रीकृष्ण बैठे हुए थे। जाकर देखा श्रीकृष्ण ब्राह्मण वेश बना कर साक्षात् वेद-मूर्त्ति बने बैठे हैं। उन दोनों को लेकर वह तुरन्त ही लौट आयी ॥६३॥

जटिला ने श्रीकृष्ण का बड़ा आदर-सम्मान किया। श्री-कृष्ण भी "तुम्हारे पुत्र का गोधन की वृद्धि होवे और तुम्हारी पुत्रवधू सर्वमंगलवती होवे" कह कर उसे आशीर्वाद देने लगे ॥६४

पूजारम्भ होने पर श्रीकृष्ण ने वृद्धा जटिला से पूछा-"तुम्हारी पुत्रवधू का नाम क्या है ?" वृद्धा ने कहा 'राधा,' यह सुनते ही श्रीकृष्ण चौंक कर वृद्धा से कहने लगे ॥६५॥

"वे गुणवती ये ही हैं क्या ? कि जिनकी सतीत्व ब्रज में प्रसिद्ध है ? धन्य है तुम्हें जो ये तुमको पुत्र-वधू मिली हैं", फिर श्रीराधा से बोले ॥६६॥

"बिना वरण किये पुरोहित कभी कर्म न करे"-ऐसी वेद की आज्ञा है। अतएव इस सूर्यपूजा रूप महायज्ञ में मुझे वरण करो। परन्तु मैं स्त्री का स्पर्श नहीं करता हूं। सो तुम कुश से मुझे स्पर्श कर मंत्र पढ़ो। गूढ़ार्थः—'भास्वत्' अर्थात् प्रकाशमान

जगन्मङ्गलकृद्गोत्रं शुचिवित्प्रवरं शुचिम् ।
भवन्तं विश्व-शर्म्माणं पुरोहिततया वृणे ॥६८॥
श्रीभास्वतेऽतनुतमःसंहर्त्रेऽत्यनुरागिणे ।
पुरः सतेऽस्मै मित्राय पद्मिनीबन्धवे नमः ॥६९॥

---

'अतनुक्रतु' अर्थात् कामयज्ञ में 'वृत' अर्थात् वस्त्र से आवृत होकर कर्म न करावे अतएव वस्त्र त्याग कर समस्त स्त्रियों के स्वामी मुझे कामातुरा हो अंकुशसदृश तीक्ष्ण नखों द्वारा स्पर्श करती हुई क्रिया करो ॥६७॥

वरण का मंत्रः—वरण के समय प्रथम पुरोहित के गोत्र, प्रवर व नाम का उच्चारण करना पड़ता है अतएव श्रीकृष्ण वही उच्चारण करवाते हैं, यथाः—जगन्मंगलकारी भगवान् ही जिनका गोत्र व विशुद्ध ज्ञान जिनका प्रवर है, उसी शुद्ध चित्तवाले बिश्व शर्मा नामक आप को मैं पुरोहित के पद पर वरण करती हूं। गूढ़ार्थः—जिनका गोत्र जगत् का मंगलकारी है जो शुचि-वित् अर्थात् शृङ्गाररस वेत्तागण में प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ हैं, उन्हीं बिश्वशर्मा अर्थात् बिश्व के सुखकारी पुरोहित अर्थात् अग्रे हित-कारी को मैं वरण करती हूं ॥६८॥

पूजा का मंत्रः— जो अतनु अर्थात् अधिक अन्धकार का बिनाशकारी है, जो सायंकाल व प्रभात में अति अनुरक्त अर्थात् अरुणवर्ण वाला है, सम्मुख स्थित है एवं पद्मिनी-बन्धु है उस मित्र नामक भास्वान् अर्थात् प्रकाशमान सूर्य को नमस्कार करती हूं। गूढार्थः—जो श्रीभास्वान् अर्थात् वक्षःस्थल पर स्वर्ण-रेखा की कान्ति से युक्त हैं, अतनु अर्थात् तनुहीन कन्दर्प के तमः अर्थात दुःख के विनाशकारी हैं, अतिशय अनु-रागवती पद्मिनी नायिका के बन्धु हैं, उन्ही सम्मुख स्थित मित्र

मन्त्रेणानेन पाद्यादीन् मित्राय त्वं समर्पय ।
त्वञ्च गौरांशुकः स्यात्तो यथा कामप्रदो वशः ॥७०॥
तत्र स्वस्ति ऋचं शश्वत् पपाठ मधुमङ्गलः ।
पूजायामथ पूर्णायां राधामुपदिदेश सः ॥७१॥
गोपतेर्याग-पूर्त्यर्थं राधे त्व निज-गोततिम् ।
पुरोहिताय देह्यस्मै दक्षिणां गो-समृद्धये ॥७२॥
नैवेद्ये दक्षिणात्वेन राधा-स्वर्णाङ्गुलीयके ।
न्यस्तेऽग्रे वृद्धया भक्त्या स्मेरस्तामाह माधवः ॥७३॥

---

( श्रीकृष्ण ) को मैं नमस्कार करती हूं ॥६६॥

तब पुरोहित रूपी श्रीकृष्ण बोले, "राधे ! तुम इस मंत्र द्वारा मित्र अर्थात् सूर्य को पाद्य, अर्घ्यादि एवं आत्मा ( मन ) समर्पण करो तथा गौरकिरण वाले सूर्यदेव भी तुम्हारा काम अर्थात् अभीष्ट प्रदान करें। गूढ़ार्थः—मित्र अर्थात् प्रिय, गौरांशुकः अर्थात् पीताम्बरधारी मुझको अपनी आत्मा अर्थात् शरीर समर्पण करो, मैं तुम्हें कन्दर्पबिलास समर्पण करूंगा ॥७०

तब मधुमंगल "स्वस्ति न इन्द्रः"-इत्यादि वेद मंत्रों का निरन्तर पाठ करने लगा। पूजन समाप्त होने पर वह श्रीराधा को उपदेश करता हुआ बोला ॥७१॥

"हे राधे ! गोपति सूर्य-पूजा की पूर्त्ति और गौसमूह की समृद्धि के निमित्त तुम अपने गौसमूह को इस पुरोहित को दक्षिणा में दो। गूढ़ार्थः—जो गौओं के पति व पुरोहित अर्थात् आगे हित करने वाले हैं, उनकी पूजा की पूर्त्ति के निमित्त तुम श्रीकृष्ण को अपने इन्द्रियों की दक्षिणा दो ॥७२॥

बृद्धा जटिला ने नैवेद्य व दक्षिणा स्वरूप सुवर्ण की दो अँगूठियाँ पुरोहित रूपी श्रीकृष्ण के आगे अर्पण किया तो श्री

नाद्मोऽन्यदेवताशेषं वयमेकान्ति-वैष्णवाः ।
नान्यवर्णार्थमादद्मो शुद्धवृत्तिरहं वटुः ॥७४॥
सर्व्वज्ञो गर्गशिष्योऽस्मि ज्योतिःसामुद्रकादिवित् ।
गुर्व्वी मे दक्षिणा प्रीतिर्युष्माभिर्व्रजवासिभिः ॥७५॥
वृद्धायां कर्णलग्नायां कौन्द्याः सा हरिमब्रवीत् ।
वृद्धा त्वां याचते बध्वाः करं वीक्ष्य फलं वद ॥७६॥
हरिस्तामाह नास्माकं ललनाङ्ग-प्रदर्शनम् ।
कार्य्यं तथापि वः प्रीत्या वशः पश्यामि दूरतः ॥७७॥
त्वमेवास्याः करौ साध्व्याः प्रसार्य पुरो मम ।
कौन्द्या तथा कृते सोऽभूत् कम्पाश्रु-पुलकान्वितः ॥७८॥

---

कृष्ण हँसते हुए जटिला से कहने लगे ॥७३॥

हम लोग अनन्य वैष्णव हैं अतएव अन्य देवता का प्रसाद ग्रहण नहीं करते हैं और मैं तो शुद्ध वृत्ति वाला ब्रह्मचारी हूँ। सो अन्य जाति का अन्न व धन भी ग्रहण नहीं करता हूँ ॥७४॥

मैं गर्गाचार्य का शिष्य हूँ, ज्योतिष व सामुद्रिकादि शास्त्रों का पण्डित हूँ अतएव सर्वज्ञ हूँ। मेरे प्रति तुम व्रजवासियों की सहज प्रीति ही मेरी बड़ी दक्षिणा है ॥७५॥

तब वृद्धा जटिला ने कुन्दलता के कान में कुछ कहा तो कुन्दलता श्रीकृष्ण से बोली, "हे ब्रह्मचारी महाराज ! वृद्धा जटिला आप से यह निवेदन करती है कि आप वधू श्रीराधा का हाथ देख कर फलाफल बताएँ ॥७६॥

श्रीकृष्ण कुन्दलता से बोले "स्त्री का अंग-दर्शन करना मेरा कर्त्तव्य नहीं है, तथापि तुम लोगों की प्रीति के वशीभूत हो मैं दूर से हाथ देख देता हूँ ॥७७॥

और तुम इस पतिव्रता का हाथ मेरे आगे बढ़वाओ। कुन्द-

आच्छाद्य विस्मयेनात्महर्षमाहाद्भुतं स्विदम् ।
यान्यस्याः शुभचिन्हानि तैरियं स्यात् स्वयं रमा ॥७६॥
अस्याः प्रसाददृष्टिश्चेद्वयं स्मः पूर्णसम्पदः ।
यत्रास्याः स्थितिरत्रैव ससम्पत् सर्व्वमङ्गलम् ॥८०॥
सूनोस्ते नाम किं ब्रूहीत्युक्तया वृद्धयोदिते ।
तन्नाम्नि गणयित्वाह हरिस्तामतिविस्मितः ॥८१॥
वर्त्तन्ते बहवो विघ्ना वृद्धे ते तनयायुषि ।
अस्याः साध्व्याः प्रभावेण प्रभवन्ति न ते क्वचित् ॥८२॥
तच्छ्रुत्वानन्दिता वृद्धा राधिका-रत्नमुद्रिकाम् ।
अमूल्यां पुरतस्तस्य दधार पारितोषिकाम् ॥८३॥

---

लता ने श्रीराधा का हाथ पकड़ कर आगे बढ़वाया तो उसके दर्शन से श्रीकृष्ण के कम्प, अश्रु व रोमांच हो आये ।७८॥

श्रीकृष्ण अपने इन आनन्द-जन्य विकारों को विस्मय रस द्वारा आच्छादन करके बोले, 'ओ हो ! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, इस बधू के हाथ में जो जो शुभ चिन्ह देख पा रहा हूँ, उनसे तो यही निश्चय होता है कि ये तो साक्षात् लक्ष्मी ही हैं ॥७६

इनकी यदि कृपा दृष्टि हो जाय तो हम सर्वसम्पत्ति से परि- पूर्ण हो जावें और जिस स्थान में इनका निवास होता है वहाँ सम्पत्ति सहित सर्व मंगल बिद्यमान रहते हैं ॥८०॥

तब जटिला से बोले, "तुम्हारे पुत्र का नाम तो बताओ" । उसके नाम बताने पर श्रीकृष्ण उस नाम की गणना करके अत्यन्त विस्मित हो जटिला से बोले ॥८१॥

वृद्धे ! तुम्हारे पुत्र की परमायु में बहुत से बिघ्न हैं, परन्तु इस पतिव्रता बधू के प्रभाव से वे सब बिघ्न कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं ॥८२॥

तावदेत्याह सुबलो विश्वशर्म्मन् हरिर्युवाम् ।
पयः-फेण-फलादीनां भोजनाय प्रतीक्षते ॥८४॥

नाद्मि विप्रेतरान्नादि गार्ग्या चास्मि निमन्त्रितः ।
यामि शीघ्रं गृहाण त्वं नैवेद्यं मधुमङ्गल ॥८५॥

मधुः प्राह देहि वृद्धे स्वस्तिवाचन-दक्षिणाम् ।
आकृष्य प्राप्यदात्तास्मै स्वाङ्गुलेः स्वर्णमुद्रिकाम् । ८६॥

बटुस्तां प्राप्य हृष्टः सन् कफोणि वादयन् मुहुः ।
नैवेद्यमञ्चले बद्ध्वा तां प्रशंसन्ननर्त्त सः ॥८७॥

---

यह सुन कर वृद्धा ने आनन्दित होकर श्रीराधा की रत्न-जटित अमूल्य दो रत्नमुद्रिकाएँ श्रीकृष्ण के आगे पारितोषिक रक्खीं ॥८३॥

इतने ही में सुबल ने आकर कहा—हे विश्वशर्मा ! पयःफेन अर्थात् 'घैयां' व फलादि भोजन के लिए श्रीकृष्ण तुम्हारी व मधुमंगल की प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥८४॥

यह सुनकर विश्वशर्मा रूपी श्रीकृष्ण बोले, "मैं ब्राह्मण भिन्न अन्य जाति का अन्नादिक भोजन नहीं करता हूँ । गार्गी ( गर्ग-कन्या ) ने मुझे निमन्त्रण दे रखा है । मैं अब शीघ्र वहाँ जाता हूँ । मधुमंगल ! तुम ही नैवेद्य ग्रहण करो ॥८५॥

तब मधुमंगल बोला, "वृद्धे ! तुम मुझे स्वस्ति वाचन के लिए दक्षिणा दो" । जटिला ने अपनी अंगुली से स्वर्ण की अंगूठी निकाल मधुमंगल को पकड़ा दी ॥८६॥

मधुमंगल अंगूठी पाकर आनन्द से बारम्बार बगल बजाता हुआ वस्त्रांचल ( पल्ला ) में नैवेद्य बाँधने लगा और बधू व वृद्धा की प्रशंसा करता हुआ नाचने लगा ॥८७॥

वृद्धया प्रार्थितः कृष्णं जगाद मधुमङ्गलः ।
अगृहीते दक्षिणार्थे त्वया न व्रतपूर्णता ॥८८॥
कृपया तद्गृहाणेमं स्वार्थश्चार्थनतेन चेत् ।
विप्रेभ्यः कल्पस्यते सोऽयं व्रतिन्या भविता शुभम ॥८६॥
स्वीकृतस्ते मया दोषो नेत्युक्त्वा स्वाञ्चले हसन् ।
बबन्ध मुद्रिके ते द्वे निषिद्धोऽप्यमुना मुहुः ॥६०॥
जगाद कृष्णं जटिला बटो यदै-वायाति गोष्ठं मम भाग्यतो भवान् ।
तदा मयास्या रविपूजने गुरु-र्वृतोऽस्ति ते भूरि ददामि दक्षिणाम् ॥
इत्युक्त्वा जटिला हृष्टा नत्वादित्यं द्विजौ च तौ ।
कृतार्थं स्वं मन्यमाना ताभिः सा चलितालयम् ॥६२॥

---

दक्षिणा ग्रहण करने के लिए वृद्धा की प्रार्थना पर मधुमंगल श्रीकृष्ण से बोला कि तुम यदि दक्षिणा का धन न लोगे तो व्रत पूर्ण नही होगा ॥८८॥

अत एव कृपा करके यह दक्षिणा ग्रहण करो । तुम्हारा यदि धन से कोई प्रयोजन न हो तो किसी ब्रह्मण को दे देना । इससे व्रतकारिणी वधू का भी मंगल होगा । ८६॥

श्रीकृष्ण ने बारम्बार निषेध किया परन्तु मधुमंगल ने यह कहते हुए कि मेरे द्वारा दक्षिणा स्वीकार करने पर तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा, उन दो अंगुठियों को हँसते हँसते अपने अंचल में बाँध ही तो ली ॥६०॥

तब जटिला श्रीकृष्ण से बोली "ब्रह्मचारी महाराज ! मेरे सौभाग्य से जब कभी आप हमारे यहाँ व्रज में आगमन करें, तब ही मैं इस वधू द्वारा सूर्यपूजा के लिए आप को ही वरण करूँगी और खूब दक्षिणा दूँगी" ॥६१॥

इतना कह जटिला ने बड़े प्रसन्न मन से सूर्यदेव को तथा

श्रान्तौ विवर्त्त्य सहसा लपनच्छलेन
ग्रीवां मुहुर्ललितयानुगया मुरारेः ।
वक्त्राब्ज-सारघमपाङ्गतरङ्ग-भङ्ग्या
राधा पिवन्त्यपि न तृप्तिमवाप दीना ॥६३॥
हृदय-दयितलीला-स्निग्ध-दुग्धैः प्रपूर्णा
तनु-कनकघटी या सुभ्रु वोऽस्याः सखीनाम् ।
नयनमुदमतानीत् साशु वैरस्यमाप्ता
विरह-विष-विवर्णा नेत्र-सन्तप्त्येऽभूत् ॥६४॥
कान्तासङ्गेन्दु-संफुल्लः कृष्णो नीलोत्पलप्रभः ।
विच्छेदार्कोदये म्लायन् क्षणादन्य इवाभवत् ॥६५॥

---

दोनों ब्रह्मचारियों (विश्वशर्मा और मधुमंगल) को प्रणाम किया और अपने को कृतार्थ मानती हुई श्रीराधादिकों के साथ अपने गृह के लिए गमन किया ॥६२॥

श्रीराधा गृह को गमन करती करती पश्चाद् गामिनी ललिता के साथ वार्त्तालाप करने के छल से बार बार ग्रीवा टेढ़ी कर श्रीकृष्ण के मुख-कमल मधु को अपने नेत्र-कोण की कटाक्ष-लह-रियों द्वारा पान करने लगीं, परन्तु तृप्ति लाभ न करने के कारण दीन-दुःखी हो गयीं ॥६३॥

सुन्दर भ्रू वाली श्रीराधा के जिस देह रूप क्षुद्र स्वर्णघट ने श्रीकृष्ण के लीलामृत रूप स्निग्ध दुग्ध द्वारा परिपूर्ण होकर सखियों के नेत्रों को आनन्द प्रदान किया था, वही देहघट अब विरस व विरहविष से विवर्ण ( फीका ) होकर सखियों के नेत्रों को सन्ताप देने लगा ॥६४॥

उधर नीलकमल सी कान्ति वाले श्रीकृष्ण भी जो पहले कान्ता संग रूप चन्द्रोदय से प्रफुल्लित हुए थे अब विरह रूप

सखिभ्यां सहितः सोऽथ विमनाः स्वसखीनगात् ।
तेऽहम्पूर्विकया हृष्टा आलिङ्गन्तस्तमब्रुवन् ॥६६॥
अस्मान् हित्वा तत्र गतवतस्त्वद्वियोगासहिष्णून्
काठिन्यं नः स्फुटमवगतं व्याकुलैर्दीनचित्तैः ।
अन्वेष्टुं त्वां प्रतिजिगमिषून् यत्त्वमागाः क्षणार्द्धे-
नेन ज्ञातं प्रियसख ! परं प्रेम-कोमल्यमेव । ६७॥
सोऽयं राधासहचरहरेः स्फीतमध्याह्न-लीला
पीयूषाब्धिर्विलसति महान् दुर्विगाहोऽत्यपारः ।
भाग्यं तस्मै यदिह विलसन्श्रीलरूपानुकम्पा-
वात्यानीता तदनु कणिकाप्यस्पृशन्मां तटस्थम् ॥६८॥

---

सूर्योदय से म्लान (मलिन) होकर क्षणभर में कुछ दूसरे ही हो गये ॥६५॥

सुबल व मधुमंगल के साथ श्रीकृष्ण उदास मन से अपने सखाओं के समीप पधारे, और वे सखावृन्द भी 'यह मेरा सखा आ रहा है मैं जाकर इसे पहले स्पर्श करूँगा' कहते हुए बड़े प्रसन्न मन से श्रीकृष्ण को आलिंगन करते हुए कहने लगे ॥६६॥

"भाई कृष्ण ! हम तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकते। जब तुम हमें छोड़कर चले गए तो हमने स्पष्ट रूप से यही समझ लिया था कि तुम बड़े कठोर हृदय वाले हो। इससे हम व्याकुल और दीन दुःखी चित्त से तुम्हें ढूंढने के लिए तुम्हारे समीप चलने की इच्छा कर ही रहे थे कि तुम आधे क्षण में आ पहुँचे। इससे हे प्रिय सखे ! हम समझ गए कि तुम कितने कोमल हृदय वाले हो ॥६७॥

श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण की यह मध्यान्हलीला रूप अमृत-सागर विशेष शोभा को प्राप्त हो रहा है। यह अपार असीम है

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दास-कृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽष्टादश-संख्य एव निरगान्मध्याह्न-लीलामनु ॥१८॥

## ❀=:+ अथ उनविंशः सर्गः +:=❀

श्रीराधां प्राप्तगेहां निजरमण-कृते क्लृप्तनानोपहारां
सुस्नातां रम्यवेशां प्रियमुख-कमलालोक-पूर्ण-प्रमोदाम् ।

---

( क्यों कि लीला अनन्त हैं ) दुर्विगाह है अर्थात् अन्य कोई भी स्वतन्त्र रूप से इस लीलासागर में प्रवेश नहीं कर सकता है । किन्तु उस मध्यान्ह लीलामृतसागर में विलास करने वाले श्रील श्रीरूप-गोस्वामी की अनुकम्पा रूप वायु द्वारा उस अमृत-सागर की एक कणिका मात्र का ही जो मुझ जैसे तटस्थ (१. तीर स्थित २. लीला प्रति उदासीन अर्थात् अनभिज्ञ ) व्यक्ति को स्पर्श मिला यह मेरा महान् भाग्य ही है ॥८८॥

यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृत नामक महाकाव्य की मध्यान्हलीला का यह अष्टादश सर्ग समाप्त हुआ । यह श्रीगोविन्दलीलामृत श्री-कृष्ण चैतन्यमहाप्रभु के पदारविन्द के मधुपस्वरूप श्रीरूप-गोस्वामी की कृपा का फल है, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीजीवगोस्वामी के संग से उदित है एवं श्रीरघुनाथ-

श्रीकृष्णञ्चापराह्ने व्रजमनु चलितं धेनु-वृन्दैर्वयस्यैः
श्रीराधालोक-तृप्तं पितृमुख-मिलितं मातृमृष्टं स्मरामि ॥१॥
हरिरथ दलशृङ्गी-वेणुवीणा-प्रवीणैः
सखिभिरखिल-लीला-लालसैस्तस्य सङ्गात् ।
सपदि समुदितैः स्वैः स्वैः स्वभावैर्मनोज्ञै-
रलभत मुदमुच्चैः सेव्यमानोऽम्बुजास्यः ॥२॥
आलापैरनुलापैश्च प्रलापैर्विप्रलापकैः ।
संलापैः सुप्रलापैश्च बिलापैरपलापकैः ॥३॥

---

भट्ट गोस्वामी के वरदान से प्रादुर्भूत हुआ है ॥१८॥

मध्यान्हलीला के उपरान्त अपरान्ह में श्रीराधा ने अपने गृह में जाकर स्नान कर, वेश-भूषा बना अपने प्राणनाथ श्रीकृष्ण के लिए श्रीयशोमति के आदेशानुसार कर्पूरकेलि व अमृतकेलि इत्यादि नाना प्रकार के उपहारों को प्रस्तुत किया तथा बन से व्रज को आते हुए प्रियतम के मुखकमल के दर्शन कर पूर्ण प्रमोद को प्राप्त हुईं। उधर श्रीकृष्ण भी गौओं व सखाओं के साथ व्रज को आते समय मार्ग में श्रीराधा के दर्शन से परितृप्त हो श्री-नन्दादि पितृगण से मिले तथा मातृगण द्वारा स्नानादिक से शुद्ध हो बिराजे। ऐसे श्रीराधाकृष्ण का मैं स्मरण करता हूँ। १॥

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण सखाओं के द्वारा सेवित होकर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए। वे सखावृन्द दल, शृङ्ग (सींगी), वेणु व वीणा बजाने में प्रवीण हैं, श्रीकृष्णसंग-प्राप्ति के कारण उनमें सेवा के अपने अपने मनोहर भाव सहसा उदय हो गए हैं अतएव नानाविध लीलाओं की लालसा उनके हृदय में उठ रही हैं। २॥

केचिद्ग्रस्तैरविस्पष्टैर्निरस्तैर्भाषितैः परे ।
अबद्धैर्वितथैरन्ये सङ्गतैः सुनृतैः परे ॥४॥
सोपालम्भैश्च सोत्प्रासैः स्तुतिगर्भैश्च निन्दनैः ।
नर्मोक्ति-गूढ़काव्यैश्च प्रहेली-दान-भाषणैः ॥५॥
अन्योऽन्ये चित्र-काव्यैश्च समस्या-दान-पूरणैः ।
हसन्तो हासयामासुर्वयस्या बलकेशवौ ॥६॥ चतुर्भिः कुलकम्

---

अब चार श्लोकों द्वारा सखाओं के नाना प्रकार के वार्तालाप का वर्णन करते हैं:— सखा लोग भिन्न भिन्न प्रकार के बचन बोल रहे थे किसी के बचन में 'आलाप' (विविधप्रकार के बाक्य) था तो किसी के बचन में 'अनुलाप' (एक ही बात का बारम्बार कथन ) था। कोई 'प्रलाप' ( अनर्थक बाक्य ) तो कोई 'बिप्र-लाप' ( बिरोधोक्ति ) बोल रहा था। कोई 'संलाप' ( परस्पर-भाषण ), कोई 'सुप्रलाप' (सुन्दर बचन) कोई बिलाप (शोकोक्ति) और कोई 'अपलाप' ( बात छिपाकर कहना ) कर रहा था ॥३॥

कोई ग्रस्त बाक्य ( लुप्त वर्ण पद ) बोल रहा है तो कोई अविस्पष्ट ( गुप्त-स्पष्ट नहीं ) बाक्य बोल रहा है। कोई 'निरस्त' ( शीघ्र बोलना ) तो कोई 'अबद्ध' ( निरर्थक ) बाक्य बोल रहा है। कोई 'बितथ' ( मिथ्या ) बाक्य, कोई 'संगत' ( हृदयंगम ) बाक्य और कोई 'सुनृत' ( प्रिय ) बाक्य द्वारा आलाप कर रहा है ॥४॥

कोई सोपालम्भ ( तिरस्कार ) बाक्य तो कोई सोत्प्रास ( मन्द हास्य सहित ) बाक्य बोल रहा है। कोई निन्दा द्वारा स्तुति कर रहा है तो कोई परिहासपूर्ण गूढ़ बचन बोल रहा है तो कोई पहेली बूझ रहा है ॥५॥

कोई कोई चित्रकाव्य, समस्या दान व समस्यापूर्त्ति इत्यादि

संव्याने बद्धनैवेद्य' निह्नुवानं सखिव्रजात् ।
चौरादिव धनं रामो बभाषे मधुमङ्गलम् ॥७॥
संव्याने किमिदं बटो दिनपतेर्नैवेद्यमाप्त' कुतो
याज्येभ्यः क इमेऽखिला व्रजजना वारोऽद्य यद्भास्वतः ।
मुक्त्वा दर्शय किं न्विदं न हि भवान् लुब्धः सखायश्च ते
तेभ्यो देहि विभज्य भुङ्क्ष्व च न मे दित्सा बुभुक्षास्त्यलम् ॥८॥
एते जिघृक्षन्ति बलात्त्वदैत-त्राणाय मन्ये न भवद्वयस्यान् ।
एते तु के त्वामपि भूसुरोऽहं वर्णी तृणं नो मनुवे स्वशक्त्या ॥६

---

नाना प्रकार के वाक्यों द्वारा हंसते हुए बलराम और कृष्ण को हंसाने लगे ॥६॥

मधुमंगल अपनी चादर में बँधे हुए नैवेद्य को सखाओं से ऐसे ही छिपा रहा था जैसे चोर से धन छिपाते हैं। यह देख श्रीबलराम ने मधुमंगल से पूछा ॥७॥

"हे बटो ! तुम्हारी चादर में क्या है?" वह बोला "सूर्यदेव का नैवेद्य"। बलराम:-"कहाँ से मिला" ? मधुमंगल:—"यजमानों के पास से"। बलराम—"ये यजमान कौन हैं ? मधुमंगल-"समस्त व्रजबासी, क्यों कि आज सूर्यपूजा का दिन है"। बलराम "खोल के तो दिखाओ क्या है"। मधुमंगल-"यह नहीं होगा, तुम और तुम्हारे सखा सब ही लोभी हैं"। राम:"—बाँट कर उन्हें भी दो और तुम भी खाओ"। मधुमंगल "न तो मेरी देने की इच्छा है न मुझे खाने की ही इच्छा है" ॥८॥

राम:—"ये बालक बलपूर्वक नैवेद्य लेना चाहते हैं"। मधुमंगल "मैं तुम्हारे सखाओं को तृण के बराबर भी नहीं समझता। मैं हूँ ब्राह्मण और उस पर ब्रह्मचारी हूँ। मैं अपनी शक्ति के आगे तुम्हें तृण समान भी नहीं समझता" ॥६॥

अथ रामेङ्गितज्ञास्ते गोपाः सविनयं पुरः ।
अयाचन्त वटुं भक्ष्यं तन्निह्नुत्य स मौन्यभूत् ॥१०॥
पृष्ठतोऽभ्येत्य तस्यान्यः कराभ्यां पिदधेऽक्षिणी ।
संव्यानमपरे तूर्णं सनैवेद्यमपहरन् ॥११॥
विलुण्ठ्याद्युश्च तत् सर्वे मुद्रिकाः सुवलोऽग्रहीत् ।
अभ्येत्य पृष्ठतोऽस्यैकः पश्चात् कच्छमसोचयत् ॥१२॥
अग्रतोऽभ्येत्य तस्यान्यः पुरो वस्त्रं समाक्षिपत् ।
तमभिद्रवतस्तस्य पार्श्वतोऽभ्येत्य चापरे ॥१३॥
उष्णीषं शिथिलं चक्रुः केशबन्धममोचयन् ।
वेणुं केचित् परे यष्टिं गृहीत्वास्य प्रदुद्रुवुः ॥१४॥ युग्मकम्

---

बलराम ने संकेत किया तो ग्वालबाल सब मधुमंगल के सामने जा नैवेद्य के लिए सविनय याचना करने लगे पर मधु-मंगल उसे छिपा मौन बैठा रहा ॥१०॥

इसी अवसर में एक बालक ने मधुमंगल की पीठ ओर से आकर दोनों हाथों से उसकी आँखें मूँद लीं और कुछ बालकों ने नैवेद्य सहित वस्त्र छीन लिया ॥११॥

अब तो बालक सब नैवेद्य लूट लूट कर खाने लगे। एक ने पीछे से जाकर मधुमंगल की लाँग खोल दी और सुबल ने जटिला की दी हुई अँगूठी निकाल ली ॥१२॥

एक बालक ने उसके सामने आकर वस्त्र खींचा तो मधु-मंगल उसके पीछे दौड़ा। इतने में किसी एक ने बगल से आकर उसकी पगड़ी खींच ढीली करदी किसी ने उसके बाल बिखेर दिये, कोई बालक उसकी वंशी और लाठी छीन ले भागा ॥१३-॥१४॥

रुदन् उच्चैर्हसन् गर्जन् तर्जयन् गर्हयन् शपन् ।
कृष्णस्य यष्टिमादाय सर्वान्निरस्यद्रुन्द्रुः ॥१५॥
कैश्चिद्युद्धमभूत्तस्य लगुडालगुडि क्षणम् ।
ततः कृष्णस्तमालिङ्ग्य सर्वान् सर्वान् न्यवारयत ॥१६॥
सर्वेषु-यष्टिसंव्यानं कृष्णस्तस्मा अदापयत् ।
निर्मुद्रिकं स वीक्ष्यैनद्गापोनाह शपन् रुषा ॥१७॥
ब्रह्मस्वं वो बलाद्भुक्तं हृता मे स्वर्णमुद्रिका ।
सर्वदाऽपावना यूयं न मां स्पृशत चञ्चलाः ॥१८॥
एष यामि व्रजं युष्मत्कर्माख्यातुमिति द्रुतम् ।
गच्छन् फुत्कृत्य फुत्कृत्य स रामेण निवर्त्तितः ॥१९॥

---

तब तो मधुमंगल जोरों से रोता व हंसता हुआ, गर्जन-तर्जन करता हुआ गाली और स्राप देता हुआ श्रीकृष्ण की लाठी ले सबको भगाने लगा ॥१५॥

किसी किसी बालक के साथ लाठी-लाठी से थोड़ी देर के लिये युद्ध भी हो गया। तब श्रीकृष्ण ने सखाओं को हृदय लगा लगा कर सब को हटाया ॥१६॥

फिर श्रीकृष्ण ने बालकों से वस्त्र, वंशी, लाठी व पगड़ी लेकर मधुमंगल को दिया। वह बिना अंगूठी का चादर देखकर क्रुद्ध हो स्राप देता हुआ कहने लगा ॥१७॥

"अरे चंचल बालको ! तुमने बलपूर्वक मेरा नैवेद्य खाया है और स्वर्ण-मुद्रिका भी उड़ा ली है। ब्रह्मस्व ( ब्राह्मण की सम्पत्ति ) हरण करने के कारण तुम लोग महापापी हो गये हो। अतः तुम सर्वदा अपवित्र हो, मुझे छूना नहीं ॥१८॥

"यह लो, मैं तुम्हारी इस करतूत को कहने के लिये व्रज जा रहा हूँ"। ऐसा कह मधुमंगल फूफकार फूफकार रोता हुआ

तमसौ प्राह पापेऽस्मिन् भवान् कर्त्ता प्रयोजकः ।
संलपामि त्वया नाहं प्रायश्चित्तमकुर्वता ॥२०॥
इत्थं क्रीडन् सखिभिरखिलैश्चारयन् गाः समन्तात्
श्रीगोविन्दः प्रतितरुलतं सञ्चरंश्चापराह्णे ।
वृन्दारण्य-स्थिरचरगणाम्नन्दयित्वा व्रजस्थान्
स्वालोकेच्छून् सुखयितुमसौ संस्मरन्नुत्क आसीत् ॥२१॥
हरिरथ धवला-श्रेणीः परितो दूरप्रचारिणीर्दृष्ट्वा ।
ताः सङ्कलयितुमुत्क-स्तन्नाम्ना जगौ वंशीम् ॥२२॥
पद्मे हिहो हारिणि रङ्गिणि कञ्जगन्धे !
रम्भे हिही चमरि खञ्जनि कज्जलाक्षि ! ।

---

तेजी से चलने लगा तो बलराम ने उसे रोक लिया ॥१६॥

तब मधुमंगल बलराम से बोला "इस ब्रह्मस्वहरण के पाप में प्रयोजक तुम्हीं हो अर्थात् तुम्हारी प्रेरणा से ही बालकों ने मेरी वस्तुएँ हरण की हैं। अतएव तुम जबतक इस पाप का प्रायश्चित्त नहीं कर लोगे तब तक मैं तुम्हारे साथ बात नहीं करूँगा" ॥२०॥

इस प्रकार सखाओं के साथ क्रीड़ा करते; गौ चराते, प्रत्येक तरुलता के समीप विचरते तथा वृन्दावन के पशु पक्षी, स्थावर-जंगम सब को अपने विलास से आनन्दित करते हुए जब अपरान्ह का समय हुआ तो श्रीगोविन्द अपने दर्शन के लिये उत्कण्ठित ब्रजवासियों का स्मरण करके उनको सुखी करने के लिये उत्कण्ठित हो उठे ॥२१॥

श्रीकृष्ण ने देखा कि उनकी धौली धूसर आदि गोएँ बहुत विचर रही हैं तो उनको बुलाने के लिये प्रत्येक का नाम ले ले कर वंशी बजाने लगे ॥२२॥

शन्दे हिही भ्रमरिके सुनदे सुनन्दे !
धूम्रे हिही सरलि कालि मरालि पालि ॥२३॥
गङ्गे तुङ्गि हिही पिषङ्गि धवले कालिन्दि वंशीप्रिये !
श्यामे हंसि हिही कुरङ्गि कपिले गोदावरीन्दुप्रभे !
शोणे श्येणि हिही त्रिवेणि यमुने चन्द्रालिके नर्म्मदे !।
नामग्राहमयं समाह्वयति गाः प्रेम्णेत्थमीशो गवाम् ॥२४॥ युग्मकम्
कृष्णः पश्चाल्लसति सखिभिश्चारयन्नस्तदेत्थं
प्रेमभ्रान्त्या प्रथममभवत् सन्निवेशोऽतिचारे ।
सत्तृप्तानामपि तृणततेर्नैचिकीनामिदानीं
तांभिर्दूरस्थितिरवगता तस्य तद्वेणुनादात् ॥२५॥

---

गौएँ के नाम यथाः—पद्मे ! हरिणि ! रंगिणि ! कञ्जगन्धे ! रम्भे ! चमरि ! खंजनि ! कज्जलाक्षि ! शन्दे ! भ्रमरिके ! सुनदे ! सुनन्दे ! धूम्रे ! सरलि ! कालि ! मरालि ! पालि ! गङ्गे ! तुङ्गि ! पिषङ्गि ! धवले ! कालिन्दि ! वंशीप्रिये ! श्यामे ! हंसि ! कुरंगि ! कपिले ! गोदावरि ! इन्दुप्रभे ! शोणे ! श्येणि! त्रिवेणि ! यमुने ! चन्द्रालिके ! नर्मदे ! इस प्रकार गोपति गोविन्द प्रेमपूर्वक प्रत्येक गौ के नाम के साथ 'हीयो हीयो" कह कर वंशी द्वारा बुलाने लगे ॥२३–२४॥

श्रीकृष्ण की जो नैचिकी अर्थात् उत्तम गौएँ थी वे यह समझती थीं कि हमारे पीछे पीछे सखाओं के साथ श्रीकृष्ण चराते हुए विद्यमान हैं, इस प्रेम-भ्रान्ति में पड़ी हुई पहले तो उनकी तृण चरने में अधिक आसक्ति थी परन्तु अब जब खूब चरकर उनका पेट भर गया तो वंशीध्वनि सुनकर उनको पता लगा कि श्रीकृष्ण तो हमसे बहुत दूर पर हैं ( अतएव दौड़चलीं )

ऊधोभर--प्रणयमन्थर--शीघ्रयाना
हुङ्कार--गर्भचल--सास्नगला बकारैः।
ऊद्ध्र्वानन--श्रवण--बालधयोऽस्य पार्श्वे
दन्ताग्र--शादकवला धवलाः समीयुः ॥२६॥ युग्मकम्
स्वगणेन गणाध्यक्षा गङ्गाद्या धेनवो हरेः।
नेत्रैः पिबन्त्यः सौन्दर्य्यं जिघ्रन्त्योऽङ्गानि नासया ॥२७॥
आलिङ्गन्त्य इव स्वाङ्गैर्लिहन्त्य इव जिह्वया।
वत्सलार्त्तं सहुङ्कारा: परितः परिवब्रिरे ॥२८॥ युग्मकम्
तत्स्नेह-वशगः सोऽपि सुधास्पर्शेन पाणिना।
कण्डूयनैर्मार्ज्जनैस्ताः प्रीणयन्नाह केशवः ॥२९॥

---

धवली आदि गौएँ जिस समय श्रीकृष्ण के समीप आ पहुँची उस समय वे ऐन के व प्रेम के भार से मन्थर होने पर भी उत्कण्ठावश शीघ्र दौड़ कर आयीं थीं। वे हुँकार कर रही थीं, उनके गलकम्बल ( लोर ) हिल रहे थे, मुख, कान व पूँछ ऊपर को उठे हुए थे और दाँतों के बीच आगे की तरफ तृण ( घास ) जो वे खा रही थीं, वैसे की वैसे ही थी ॥२६॥

गंगा आदि यूथेश्वरी गौएँ अपने अपने गण के साथ नेत्रों से श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का पान करती हुई नासिका द्वारा उनके अंग का सौरभ ग्रहण करने लगीं ॥२७॥

उन्होंने मानो तो अपने अपने अंगों द्वारा श्रीकृष्ण को आलिंगन करती, जिह्वा द्वारा उनको चाटती, और अतिशय वात्सल्य सहित हुँकार करती हुई, श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिया ॥२८॥

तब श्रीकृष्ण गौओं के स्नेह के वशीभूत होकर स्पर्श में सुधा सदृश सुख देने वाले अपने करकमलों से उनको खुजलाते

तृप्ताः स्थ यवसैर्यूयं गतप्रायं दिनं व्रजे ।
वत्सा वः क्षुधिता यस्माद्व्रजं व्रजत मातरः ॥२०॥
ततो वयस्या यत्नात्ताः कृष्णस्नेहार्तिविह्वलाः ।
वियुज्य कृष्णतश्चक्रु र्व्रज-वर्त्मोन्मुखी क्रमात् ॥२१॥
नानाभेदाकृतिध्वान-घण्टा-किङ्किणी-कण्ठकाः ।
स्वस्व-यूथाग्रगा गावो घोषाभिमुखतां ययुः ॥२२॥
नैचिकी-सौरभी-श्रेण्यो चलन्त्यौ सव्यदक्षयोः ।
स्वर्गिणां दधतुर्भ्रान्तिं गङ्गा-कृष्णा-प्रवाहयोः ॥२३॥
धेनुवृन्दमनु मन्दमयन्तं वेणुगीतममृतं विसृजन्तम् ।
वेणु रूषित-चलालकवन्तं के नु वीक्ष्य समयुर्न मुदन्तम् ॥२४॥

---

और सहलाते हुए उनको प्रसन्न कर बोले ॥१९॥

हे माताओ ! तुम सब तृण द्वारा परितृप्त हो गयी हो, और दिन भी बीतने को आया है, उधर तुम्हारे बछड़े सब भूखे रह रहे हैं, सो अब तुम व्रज को चलो ॥२०॥

तब सखाओं ने श्रीकृष्ण के समीप से उनके स्नेह में विह्वल बनी हुई गौओं को व्रज के मार्ग की ओर हाँकना आरम्भ किया ॥२१॥

तब जिनके गले पर नाना आकार व ध्वनि वाली घन्टियाँ और घूंघर बँधे हुए थे, वे गौएँ अपने अपने यूथ के आगे चलती हुईं घोषवस्ती की ओर जाने लगीं ॥२२॥

श्रीकृष्ण की बायीं ओर उत्तम गौएँ तथा दाहिनी ओर महिष समूह पंक्तिबद्ध हो कर चल रही थीं ।जिन्हें देख स्वर्गस्थ देवताओं को गंगा–यमुना के प्रवाह का भ्रम हो रहा था ॥२३॥

जब गोरज से विभूषित व चंचल अलकावली से सुशोभित श्रीकृष्ण गौओं के पीछे पीछे मन्द मन्द गति से चलते हुए वंशी

न वर्त्म तद्यन् सखिभिर्न मण्डितं
नासौ सखा यो न विलास-वृन्दवान् ।
नासौ विलासोऽपि हि यो न नर्म्मसू—
र्न नर्म्म तद्यन्न मुदेऽप्यविद्विषः ॥३५॥
गायं गायं वेणुना याति मित्रै—र्यायं यायं प्रत्यगं तिष्ठति स्म ।
स्थायं स्थायं केलिभिः शं प्रदत्ते दायं दायं तत् पुनः स प्रयाति ॥
विधि-—शिवमुख-देवैः सोपदेवैर्मुनीन्द्रैः
स्तुति-नृति-नति-गीतैः पुष्पवर्षैः सु-वाद्यैः ।
पथि पथि महितोऽसौ सङ्कुचन् स्वैरकेलौ
स्मित-सकरुण-दृष्टिस्तुष्टुवे भक्तिनम्रैः ॥३७॥

---

से गीत रूपी अमृत की वर्षा कर रहे थे, उस समय उनके दर्शन कर किसे आनन्द-लाभ नहीं हुआ था अर्थात् सभी को आनन्द हुआ था ॥३४॥

व्रज को गमन करते समय ऐसा कोई मार्ग ही न था कि जो सखाओं द्वारा मण्डित न हो रहा हो अर्थात् सर्वत्र सखा-गण छाये हुए थे, ऐसा कोई सखा न था जो लीला-विलास द्वारा शोभित न हो अर्थात् सभी सखागण नाना प्रकार के क्रीड़ा-कौतुक कर रहे थे; ऐसा कोई विलास न था जो परिहास उत्पन्न न कर देता हो और ऐसा कोई परिहास न था जिसने शत्रुओं को भी आनन्द न दिया हो ॥३५॥

उस समय श्रीकृष्ण मित्र सखाओं के साथ गान करते करते गमन करते हैं, गमन करते करते प्रत्येक वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं विश्राम करते करते केलि क्रीड़ा द्वारा सुख प्रदान करते हैं, और सुख प्रदान करते करते पुनः प्रस्थान करते हैं ॥३६॥

उस समय ब्रह्मा, रुद्रादि देववृन्द, उपदेवों और मुनीश्वरों के

नुमस्त्वां सुहारं यशोदा-कुमारं गुणानामागारं कृपाधैरपारम् ।
बिराजद्विहारं प्रदानेऽत्युदारं खलश्रेणि-मारं सदा निर्विकारम ॥
नुमस्त्वामनन्तं निकुञ्जे बसन्तं प्रकाशं प्रजन्तं बसन्तं भजन्तम ।
सखीन् प्रीणयन्तं सुकुन्दात् सुदन्तं तदास्ये दृगन्तं नुदन्तं हसन्तम् ॥
नुमस्त्वां सुधेनुं सुवेणुं सुलीलं
सुहासं सुवासं सुभाषं सुशीलम् ।
सुवेशं सुकेशं सुरेशं सुचित्रं
सुनृत्यं सुभृत्यं सुकृत्यं सुमित्रम ॥४०॥

---

साथ स्तुति, नृत्य, नमस्कार, गीत, पुष्पवर्षा व सुन्दर वाद्य द्वारा पथ पथ पर श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं जिससे श्रीकृष्ण को स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र विहार करने में कुछ संकोच हो आता है और वे मन्द मुस्कराते हुए करुणा पूर्ण दृष्टि से देवताओं की ओर अवलोकन कर देते हैं। वे देवगण श्रीकृष्ण की भक्ति से बिनम्र होकर ऐसी स्तुति करते हैं ॥३७॥

देवस्तुति:—जो सुन्दर मुक्ताहार से सुशोभित हैं, समस्त गुणों के आलय हैं, कृपा के समुद्र हैं, बिविध बिहारशाली हैं, अतिशय उदार दाता हैं, खलों के संहारी परम निर्विकारी हैं, ऐसे जो तुम यशोदानन्दन हो, तुम्हारी हम स्तुति करते हैं ॥३८॥

तुम अनन्त हो—तुम्हारी अनन्तता यही है कि तुम निकुञ्ज में बास करते हुए भी अनन्त प्रकाश मूर्त्ति धारण करते हो, बसन्त ( १.ऋतुराज २. सखा का नाम ) का भजन करते हो, सुबलादि सखाओं को प्रसन्न करते हो, तुम्हारी दन्तपंक्ति कुन्द-कुसुम से भी सुन्दर हैं, सखाओं को नयन के कोने से देखते और हँसते जाते हो, तुम्हारी हम स्तुति करते हैं ॥३९॥

तुम्हारी धेनु सुन्दर बेणु सुन्दर, लीला सुन्दर, तुम्हार

नुमस्त्वां प्रशान्तं सुदान्तं सुकान्तं
दिनान्ते निशान्ते बनान्तान् प्रयान्तम् ।
समस्तान्महान्तं नितान्तं विभान्तं
खलाली-कृतान्तं श्रमौघेऽप्यतान्तम् ॥४१॥
नुमस्त्वामघारे बकारे मुरारे सुधीरं बलारेर्निकारेऽद्रिधारे ।
निदानं पुरारेरपारे विहारे प्रवीणं सुरारेरुदारे बिदारे ॥४२॥
नुमस्त्वां गरिष्ठं महिम्ना महिष्ठं बिसारिप्रतिष्ठं सुराणां बरिष्ठम ।
असद्‌हृद्‌बिष्ठं सुमेरोर्गरिष्ठं बलिभ्यो बलिष्ठं पटुभ्यः पटिष्ठम् ॥४३

---

हास्य सुन्दर, वस्त्र सुन्दर, बाणी सुन्दर, तुम्हारा स्वभाव सुन्दर, वेश सुन्दर, केश सुन्दर, तुम्हारा चित्र (तिलक) सुन्दर, नृत्य सुन्दर, भृत्य सुन्दर, कार्य सुन्दर, मित्र सुन्दर, तुम्हारे सभी सुन्दर हैं और तुम देवाधिपति हो, अतः हम तुम्हारा स्तव-गान करते हैं ॥४०॥

तुम प्रशान्त, श्रेष्ठ संयमी व परम कान्तिमान हो, तुम दिन के शेष भाग में वन से गृह को आते हो,तुम प्राकृत-अप्राकृत सब में श्रेष्ठ हो, अतिशय शोभावान् हो, दुष्टों के काल हो, अतिश्रम करने पर भी अक्लान्त रहते हो, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं॥४१॥

हे अघारे ! हे बकारे ! हे मुरारे ! तुम देवराज इन्द्र के निग्रह एवं गिरिराज को धारण करने में परम धीर हो, तुम त्रिपुरारि शिव के आदिकारण हो, अपार बिहार में व सुरारि हिरण्य-कशिपु के उदर बिदीर्ण करने में प्रवीण हो, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥४२॥

तुम अत्यन्त गुरुतर हो-वह गुरुतरता यही है कि तुम महिमा द्वारा अतिशय महान् हो । तुम्हारी प्रतिष्ठा ( यश ) विस्तृत है, तुम देवताओं में श्रेष्ठ हो, असत् हृदय वालो से

नुमस्ते चरित्रं सुतीर्थात् पवित्रं
खलाली--लवित्रं भवोब्धेर्वहित्रम् ।
सतां हृत्सुचित्रं द्विषां हृत्खनित्रं
नतानां सुमित्रं प्रभावैर्विचित्रम ॥४४॥

स्व-गाश्चारयन्तं सुलीला: सृजन्तं खलान्मारयन्तं त्रिलोकीमवन्तम ।
अहो नः सुदिष्टं भवन्तं सदिष्टं सदालोकयामः स्तुमः संनमामः॥
इति स्तुवन्तः सदयावलोकनैः पूर्णास्तदङ्घ्री प्रणिपत्य निर्जराः ।
तत्केलि-सङ्कोच-भयात्तिरोहिता-स्तं लोकयन्तोऽनुययुर्नभोगताः ॥४

---

सुदूर हो, सुमेरु पर्वत से भी अधिक भारी हो, बलवानों से भी अति बलवान और चतुरों से भी अति चतुर हो, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥४३॥

तुम्हारा चरित्र श्रेष्ठ तीर्थों से भी अधिक पवित्र है, तुम खलश्रेणी के नाशक व भवसमुद्र के पारक नौका हो, साधुओं के हृदय में अद्भुत चित्र की भाँति सदा निवासी, और शत्रुओं के हृदय विनाशी हो, प्रणतजनों के सुमित्र और प्रभाव में विचित्र हो, तुम्हारी हम स्तुति करते हैं। ४५॥

हे कृष्ण ! तुम गौओं को चराते चराते सुन्दर लीलाएँ प्रकट करते हो, खलों का संहार करते हो, स्वर्ग-मर्त्य व पाताल इन तीनों लोकों की रक्षा करते हो, तुम सत्पुरुषों के इष्टस्वरूप हो, तुम्हारे दर्शन का जो हमको सौभाग्य प्राप्त हुआ है यह एक आश्चर्य है। तुम्हारी हम स्तुति व नमस्कार करते हैं ॥४५॥

इस प्रकार देवता लोग श्रीकृष्ण की स्तुति कर उनकी कृपा दृष्टि प्राप्त कर पूर्ण मनोरथ हुए। उन्होंने श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में प्रणाम किया और इस भय से कि हमारे यहाँ रहने से इन्हें लीला करने में संकोच होता है उनके दर्शन करते करते

व्रजपति-सेवित-विष्णु र्न्यस्य स्वबलं हरौ निहन्त्यऽसुरान् ।
तान् हन्त्ययमिति मत्वा मूढ़ा देवाः स्तुवन्त्येनम् ॥४७॥
इत्थं देवान् हसन्तस्तान् तेषामाकार-चेष्टितैः ।
सखायस्तेऽनुकुर्व्वन्तः सखेलं हरिणा ययुः ॥४८॥ युग्मकम्
अथागता सा सदनं हरिप्रिया विश्रम्य दासीभिरुपासिता क्षणम् ।
सायं निशाभोगकृते ह्यदीशितु-र्भक्ष्याणि बीटीर्विदधे सहालिभिः ॥
कदल-कुसुम-मासचोद-सत्मीरिसस्यै-
र्मरिच-सुघल-दुग्धैः सत्तुर्ज्जात-चन्द्रैः ।
कृत इह घृतपक्वो यः पतेत् खण्डपाके
बटकममृतकेलिं सा व्यधात्तं प्रियेष्टम् ॥५०॥

---

अन्तर्द्धान हो आकाश को चले गये ॥४६॥

अब सखाओं के भाव को वर्णन करते हैं:—श्रीकृष्ण के सखागण कहने लगे कि देखो ये देवता लोग बड़े मूढ़ हैं। ये नहीं जानते कि ब्रजराज नन्दराय की सेवा से प्रसन्न होकर श्री-नारायण ने अपना बल श्रीकृष्ण में संचार किया है जिससे यह असुरों का विनाश करता है। परन्त ये श्रीकृष्ण को ही इनका संहारक समझ इसकी स्तुति करते हैं। सखागण ऐसा कह कर देवताओं की हँसी उड़ाते हुए, उनके आकार व चेष्टाओं की नकल उतारते हुए और नाना कौतुक करते हुए श्रीकृष्ण के साथ जाने लगे ॥४७-४८॥

उधर श्रीराधा ने भवन में लौटकर क्षणकाल विश्राम किया। सखियों ने उनकी सेवा की। पश्चात् वे सखियों सहित प्राणे-श्वर श्रीकृष्ण के संध्या व रात्रि के भोजन के लिए नाना पदार्थ व पान बीड़ी बनाने लगीं ॥४६॥

क्या क्या पदार्थ बनाने लगीं उन्हें वर्णन करते हैं, यथा,—

सामिद्धैः शालिचूर्णैर्दधिमरिच-सिता-नारिकेलाद्र्सस्यै-
र्जात्येला-सल्लवङ्गामृत-कदलफलैः फेनितैः पिष्टमुद्गैः ।
सृष्टः पक्वो घृते यः प्रपतति समधौ दुग्धपूरे प्रगाढे
सेन्दौ कर्पूरकेलिं तमिह सुवटकं सा व्यधात् स्वप्रियेष्टम् ॥५१॥
ग्रन्थिवद्वटिकालिस्तैर्द्रव्यैः सृष्टा तु या पतेत् ।
पञ्चामृते व्यधात्तां सा पीयूषग्रन्थिपालिकाम् ॥५२॥

---

१. अमृतकेलि—पका केला, उड़द की दाल का चूर्ण, उत्तम नारियल की गिरी, काली मिर्च, गाढ़ा दूध, इलायची, लौंग, जायफल, दालचीनी व कपूर-इन वस्तुओं द्वारा बड़े बना घृत में पाक कर चीनी की चासनी में छोड़ कर जो अमृतकेलि वटक ( बड़े ) बनते हैं, श्रीराधा ने प्रियतम की तृप्ति के लिये वे प्रस्तुत किये ॥५०॥

२. कर्पूरकेलि—गर्म दूध में दही डालने पर दूध फट कर जो छाना हो जाता है, उस छाना के साथ चाँवल का चूर्ण, दही, कालीमिर्च, शक्कर, नारियल-गिरि का चूर्ण, जायफल, इलायची, लौंग, अमृतकदली ( केला विशेष ), अँगुली से हिलाने पर फेन उठता है ऐसा उड़द का सिलबट चूर्ण, इन सब वस्तुओं को मिला इनके बने हुए बड़े घृत में पाक कर मधु व कपूर युक्त गाढ़ा दूध में छोड़ने पर कपूरकेलि बटक बनता है । श्रीकृष्ण को प्रिय ऐसे कपूरकेलि को भी श्रीराधा ने प्रस्तुत किया ॥५१॥

३. अमृत-ग्रंथि-पालिका—पूर्वोक्त छाना आदि द्रव्यों के बने हुए गँठाले बड़ों को पंचामृत ( दही, दूध, घी, मधु व शक्कर का मेल ) में डाल श्रीराधा ने अमृतग्रंथिपालिका नामक बटक भी प्रस्तुत किये ॥५२।

सत्क्षीरसार--शशितण्डुल--नारिकेल-
जाति-लवङ्ग-मरिचैः ससितैः सुपिष्टैः ।
रम्भैलया च घृत-भावनया भवेद्या
सा तामनङ्गगुटिकां विदधे प्रियेष्टाम् ॥५३॥
कदल-मरिच-दुग्धैः खण्ड-गोधूमपक-
प्रकटित-वटकोऽयं भूरि-जाती-फलाढ्यः ।
नवविधु-मधुमध्ये यो विलासं विधत्ते
रचित इह तयासौ सीधु--पूर्वो विलासः ॥५४॥
उपायनानामिति पञ्चकं सत् श्रीराधया स्वीय-धिया कृतं यत् ।
कृष्णस्तदेतत् प्रणयी सतृष्णः सुधां विनिन्दन् परमत्ति नन्दन् ॥५५
तेषु व्रज-प्रसिद्धानि श्रीण्यन्तिमयुगञ्च यत् ।
रहोभोग्यं निशायां तन्मधुपाने विदंशवत् ॥५६॥

---

४. अनङ्गगुटिका---शक्कर के साथ खोवा, कपूर, चाँवल, नारियल, जायफल, लौंग व कालीमिर्च को पीसकर केला व इलायची के साथ घृत में पाक कर श्रीकृष्ण का प्रिय अनग-गुटिका ( अनंग बड़ा ) भी प्रस्तुत किया ॥५३॥

५. अमृतविलास—केला, कालीमिर्च, दूध, खाँड व गेंहू के चूर्ण ( दलिया ) के पाक द्वारा एक प्रकार के बड़े बना उसमें अधिक परिमाण में जायफल व कपूर मिला सीधूविलास अर्थात् अमृतविलास नामक वटक प्रस्तुत किये ॥५४॥

उपहार के पदार्थों में जो अमृतकेलि आदि पूर्वोक्त पाँच पदार्थ श्रीराधा ने अपनी बुद्धि से बनाये थे, उनका श्रीकृष्ण बड़ी तृष्णा व प्रीति के साथ, अमृत को भी तुच्छ समझते हुए, भोजन किया करते हैं ॥५५॥

पूर्वोक्त पाँच प्रकार के बड़ों में से अमृतकेलि आदि प्रथम

लवङ्गैलेन्दु-मरिचैः संयुतैः शर्कराचयैः ।
चक्रे गङ्गाजलाख्यानि लड्डुकान्यपराणि च ॥५७॥
तैस्तैर्युतैः क्षीरसारैस्तथा लाङ्गलि-सस्यकैः ।
अन्यान्यप्याज्यभृष्टैः सा सरैश्च सरपूपिकाः ॥५८॥ युग्मकम्
साऽथ स्नातानुलिप्तारुण-रुचिसिचया बद्धवेणी सुचित्रा
श्रीसिन्दूरेन्दुभाला मृगमद-चिबुका मालिनी साब्जहस्ता ।
नासाग्रान्दोलि-मुक्ताञ्जनयुतनयनोत्तंसिनी बद्धनीवी
राधा ताम्बूलवक्त्रा सकुसुम-चिकुरा भाति यावोज्ज्वलाङ्घ्रिः ॥५

---

तीन तो ब्रज में प्रसिद्ध ही हैं, और शेष दो अर्थात् अनंगगुटिका व सीधुविलास-रात्रि में मधुपान के अनन्तर भक्षण योग्य पदार्थ हैं ॥५६॥

श्रीराधा ने लौंग, इलायची, कपूर, व काली मिर्च के साथ शक्कर द्वारा 'गंगा जल' नामक लड्डु बनाये ॥५७॥

पुनश्च लौंग, इलायची, कपूर व शक्कर मिश्रित खोवा से और नारियल की गिरी से और भी लड्डु बनाये अर्थात् खोवा के व नारियल के लड्डु बनाये। और भी अनेक प्रकार के लड्डु घी में भून कर बनाये, और मलाई के पूए बनाए ॥५८॥

पश्चात् श्रीराधा ने स्नान करके कस्तूरी आदि का अंगराग करके अरुण साड़ी धारण की, वेणी गूँथी, कपोलादि अंगपर चित्रशृङ्गार किया, भाल पर सिन्दूर का पूर्णचन्द्र सदृश गोल तिलक बनाया, चिबुक पर भ्रमर शिशु सदृश मृगमद की बिन्दु दी, कण्ठ में माला पहनी, हस्त में लीलाकमल लिया, नासिका में मोती की बुलाक सजायी, नेत्रों में अञ्जन दिया, कर्ण-भूषण पहने, नीवी-बन्धन किया। ताम्बूल की लाली से ओष्ठाधर लाल हो गये, केश-कुन्तलों पर कुसुम सजा लिये तथा चरण-कमलों

चूड़ारत्न-ललाटिके सुवलयांश्चक्रीशलाकायुगं
काञ्ची-कुण्डल-कङ्कणाङ्घ्रि कटकान् पादाङ्गुलीयान्यपि ।
ग्रैवेयं पदकाङ्गदानि विविधान् हारांस्तथा मुद्रिका
मञ्जीरादिति रत्नभूषणचयं राधा बभौ बिभ्रती ॥६०॥

सुस्नातालङ्कृताभिः सा सखीभिश्चन्द्रशालिकाम् ।
समारुह्य स्थिता कृष्णवर्त्मन्याहित-लोचना ॥६१॥

कृष्णाम्बुदागमे काले बल्लवी-चातकीततिः ।
व्यात्ताक्षिचञ्चुरुत्कासीच्चन्द्रशाला-गतोन्मुखी ॥६२॥

---

को अलता ( महावर ) से रञ्जित किया । इस प्रकार शृङ्गार कर वे उज्ज्वलांगी बन कर शोभा देने लगीं ॥५९॥

ललाट पर सीमन्त के ऊपर चूड़ारत्न ( बोला ) व ललाट पर ललाट-भूषण ( पट्टी )-धारण किये । इन्द्रनीलमणि की सुन्दर चूड़ियाँ व कर्ण में चक्रवत् गोल रत्नभूषण, काञ्ची ( कौंधनी ), कुण्डल, कंकण, पाद कटक, ( कड़े ) बिछुवे, कण्ठ-भूषणपदक (चौकी), बाजूबन्द, पहुँची, विविध हार, मुद्रिकाएँ, नूपुर एवं अन्यान्य रत्नालंकार धारण करके श्रीराधा विशेष शोभा को प्राप्त हुईं ॥६०॥

तब श्रीराधा सुस्नाता ( =जिन्होंने स्नान कर लिया है ) व अलंकृतांगी सखियों के साथ चन्द्रशालिका ( गृह के=सब से ऊपर का कोठा ) में आरोहण कर श्रीकृष्ण के आगमन के मार्ग की ओर नेत्र लगाकर विराज गईं ॥६१॥

श्रीकृष्ण रूप मेघ के आगमन काल में गोपी रूप चातकी-वृन्द नयन रूपी चोंच खोल चन्द्रशालिकाओं पर उठकर उत्कण्ठित होकर रहीं ॥६२॥

स्वारूढोत्कण्ठि-गोपालीवृन्द-वक्त्रेन्दुमण्डलैः ।
आसन् यथार्थ-नाम्नास्ता व्रजस्थाश्चन्द्रशालिकाः ॥६३॥
जातेऽपराह्णे तनयागमोत्सुका व्रजेश्वरी स्नेह-परिप्लुताशया ।
तद्भोज्यसंसाधनसत्वरा सखीं सा रोहिणीं पाककृते न्ययोजयत् ॥६
अथाहूयातुलाख्यां सा नन्दनस्य सधर्म्मिणीम् ।
पाकाय रोहिणी-सङ्गे ददौ स्वलघुयातरम् ॥६५॥
षड्तूत्पन्न-शाकादि कन्द-मूल-फलादिकैः ।
तत्तद्व्यञ्जन-सम्पत्त्या कृष्णभोजन-पूर्त्तये ॥६६॥

---

'चन्द्रशाला' का अर्थ चन्द्र का शाला ( आलय ) किन्तु व्रज की चन्द्रशालाओं का नाम सार्थक हो रहा था कारण कि चन्द्रशालाओं पर चढ़ी हुई व्रजसुन्दरियों का मुखचन्द्र-मण्डल सचमुच चन्द्रमा के समान ही हो रहा था ॥६३॥

उधर व्रजेश्वरी श्रीयशोदा तीसरे पहर होते ही पुत्र के आगमन की प्रतीक्षा से उत्सुक हो उठीं, हृदय अतिशय स्नेह पूर से उमग चला। उन्होंने श्रीकृष्ण के भोग्य भोजन-सामग्री पाक करने के लिये त्वरापूर्वक ( उतावली होकर ) श्रीरोहिणी को कार्य में लगाया ॥६४॥

साथ ही श्रीनन्दराय के छोटे भाई नन्दन की स्त्री अतुला को भी बुला कर रोहिणी के संग पाक-कार्य में लगाया ॥६५॥

ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शीत व बसन्त-इन छहों ऋतुओं में उत्पन्न शाकादि, कन्द, मूल व फलादि द्वारा तथा उन शाकादि से बने व्यंजन द्वारा श्रीकृष्ण का भोजन पूर्ण करने के लिए व्यग्र होकर श्रीनन्द-यशोदा ने दोहद क्रिया में निपुण मालियों को रखा हुआ था ( दोहद = छहों ऋतुओं में लतावृक्षादिकों में कुसमय फल फूल उत्पन्न करने के लिए सींचनादि क्रियाओं को

व्यग्राभ्यां व्रजनाथाभ्यां नियुक्तैर्मौलिकैः कृताः ।
शाकादि-वाटिकाः षट् या नाना-दोहद-पण्डितैः ।।६७।।
व्रजस्थैर्ज्ञायते तत्तद्दोहदोत्थं फलादिकम् ।
वस्तुतस्ता षडृतवः सेवन्ते वाटिकाः सदा ।।६८।।
ताभ्यस्तत्तदृतूत्पन्न-शाक-मूल-फलादि ते ।
उपजह्रु व्रजेश्वर्यै भूरि कण्डोल-पूरितम् । ६९।। चतुर्भिः कुलकम्
दासीभिस्तद्विभज्यार्द्धं सायं पाकार्थमम्बया ।
संस्कारितं परं चार्द्धं प्रातः पाकाय धारितम् ।।७०।।
नारिकेलादि-पक्काम्र-फलान्यपा हृतानि तैः ।
दासैः संस्कारयामास सायं भोगाय पुत्रयोः ।।७१।।

---

'दोहद' कहते हैं )। ऐसे मालियों ने शाकादि की वाटिका लगा रखी थी। यद्यपि व्रजवासी माली लोग दोहद क्रिया द्वारा फल-फूल उत्पन्न करना भली प्रकार से जानते थे तथापि सब समय ही छहों ऋतु व्रज की वाटिका की सेवा करते हैं अतएव सब समय सब ऋतुओं के फल मूल का होना कोई आश्चर्य न था। उन मालियों ने प्रत्येक ऋतु के उत्पन्न, साग, मूल, फलादि उन वाटिकाओं से तोड़ डला भर भर कर प्रचुर परिमाण में उपहार लाकर उपस्थित किया ।।६६—६९।।

तब माँ यशोदा ने दासियों द्वारा उसके दो भाग कर आधा सायंकाल के पाक के लिये और आधा अच्छी प्रकार से सँवरवा कर प्रातःकाल के पाक के लिये रख दिया ।।७०।।

श्रीयशोदा ने उन दास मालियों द्वारा लाये हुए नारियल आदि फलों व पके आमों को दोनों पुत्र रामकृष्ण के सायंकाल के भोजन ( व्यालु ) के लिए अच्छी प्रकार से सँवरवा कर रखा ।।७१।।

स्वे स्वे कर्म्मणि दासादीन् शीघ्रपाके स्वयातरौ ।
त्वरयन्ती हरेर्माता बभ्रामेतस्ततो मुहुः ॥७२॥
ततः स्वयातृप्रमुखाङ्गनावृता ब्रजेश्वरी-पुत्र-विलोकनोत्सुका ।
स्तन्याश्रुविक्लिन्नपयोधराम्बरा गत्वा पुरद्वारमुदानना स्थिता ॥७३॥
सूर्य्यं समीक्ष्य चरमाचल--चक्रमोत्कं
घोषेश्वरः सुतसमीक्षण--जाततृष्णः ।
गोरेणु--वेणु--निनदार्पितनेत्र-कर्णः
साद्धं स गोसदनमाप मुदात्मवृन्दैः ॥७४॥
उत्सर्पद्गोरजोजाल-काल--पूर्णेक्षणोत्सुकाः ।
उच्चस्थाने स्थिता आसन् ब्रजलोका ग्रहा इव ॥७५॥

---

पश्चात् श्रीकृष्ण-माता यशोदा दास, दासी व सेवकों को अपने अपने काम में लगा, अपने पति के भाइयों की स्त्रियाँ रोहिणी व अतुला को शीघ्र रसोई तैयार करने के लिए त्वरा करने लगी (=जल्दी मचाने लगी) और बार बार इधर से उधर भाग-दौड़ करने लगी ॥७२॥

अन्त में ब्रजेश्वरी पति के भाइयों की स्त्रियों से घिरी हुई, पुत्रमुख के दर्शन के लिये उत्कंठित हो, स्तनों से टपकते दूध के व अश्रु जल के बूँदों से वस्त्र को भिगोती हुई पुर के प्रधान द्वार को पधारीं और मुख उठा प्रतीक्षा करने लगीं ॥७३॥

ब्रजेश्वर श्रीनन्दराय भी सूर्य को अस्ताचलगामी होते देख पुत्रमुखदर्शन के लिए सतृष्ण हो उठे और दूर उड़ती हुई गोधूलि में नयन व वंशी-ध्वनि में कर्ण लगाये गोप-बन्धुओं के साथ में आ पहुँचे ॥७४॥

महापुरुषों का गोधूलि की शुभ बेला में जन्म होने पर जैसे चन्द्रसूर्यादि शुभ ग्रहगण अपनी अपनी कला से पूर्ण हो उच्च

मण्डयन्तः सखीन् पुष्पैर्नन्दयन्तो गिरा हरिः ।
जनयन्तो मुदं तेषां व्रजान्तिक-वनं ययौ ॥७६॥
तत्र स्फारे सरसि मुरली-निस्वनैः स्तम्भयन् गाः
यूथान् यूथान् पृथगरचयत् पाययित्वाथ पाथः ।
नाना-रङ्गैः स्वहृदि मणिभिर्यास्ति माला तयाऽसौ
नानावर्णानगणयदपि स्वान् हरिर्धेनु--यूथान् ॥७७॥
संख्या-पूर्त्तौ भवति मुदितः स्वस्य किम्वा सखीनां
सख्या--न्यूने सपदि स गवां वेणु-सङ्केत-नादैः ।
तत्तान्नाम्ना स्वगण-वियुताः शीघ्रमाहूय गास्ता-
स्तत्तादूयूथे चलति वटयंश्चालयंस्तान् व्रजाय ॥७८॥

---

स्थान पर स्थित हो जाते हैं, उसी प्रकार के प्रफुल्ल ग्रहों की भाँति ही मानो तो व्रजबासी जन भी श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र दर्शन के लिए उत्सुक हो उच्चस्थानों पर स्थित हो गये। उस समय उनके नेत्र उड़ती हुई गोधूलि द्वारा परिपूर्ण होने लगी ॥७५॥

उधर श्रीकृष्ण ने फूलों से सखाओं को सजा और वचन द्वारा प्रसन्न कर उनको आनन्दित करते हुए व्रज के समीपवर्ती बन में प्रवेश किया ॥७६॥

उस बन के मध्य में एक बड़े बिस्तृत सरोवर के तट पर मुरली की ध्वनि द्वारा गौओं को रोक कर उन्हें जलपान कराया और पृथक् पृथक् यूथ में खड़ा किया। फिर अपने कंठके नाना रंग की मणियों की माला द्वारा नाना रंग के गौ यूथों की गणना करने लगे ॥७७॥

गणना के समय श्रीकृष्ण अपने अथवा सखाओं की गौ-संख्या पूरी निकलने पर प्रसन्न होते हैं और अपनी अथवा सखाओं की गौसंख्या कम निकलने पर वंशी बजाते हैं उसकी

श्रीधेनुरेणु--परिपिञ्जरिताङ्ग--गुञ्जा-
बन्यस्रगम्बर-चलालक-केशपिञ्छः ।
निर्योगपाश-मुरलीदल-यष्टि--शृङ्गा
लोलारुणातिविपुलायत-पक्ष्मलाक्षः ॥७६॥
बन्याटन-श्रमज-कान्त्यमृताभिवर्षा-
संसिक्त-सर्व्वजन--नेत्र--चकोरवृन्दः ।
वंशीकलाहृत--विघूर्णित--यौवतालिः
कृष्णः स घोषमविशत् स्वसमैर्वयस्यैः ॥८०॥ युग्मकम्
उद्गच्छन्ती व्रजभुवि बिम्बक्पातै-र्वंशीध्वानामृत-मधुरासारैस्ताम्
संसिञ्चन्ती स्वविरह-दावोच्छेत्री कार्ष्णी शोचिर्जलधरमाला रेजे॥

---

ध्वनि के सकेत द्वारा यूथ से बिछुड़ी गौओं को उनके नाम से बुला बुला कर अपने अपने यूथ में प्रवेश कराते हैं। तब उनको व्रज को ओर हाँकते हुए आप भी पीछे पीछे चलते हैं ॥७८॥

श्रीकृष्ण के अंग-गुञ्जा, वनमाला, चञ्चल अलकावली, केशपाश और मोरमुकुट—ये सब गौओं की रेणु सम्पात्ति द्वारा रञ्जित हो रहे थे। उनके पास गोदोहन-रज्जु (लोम्ना), मुरली, दल, (पत्र) लाठी व सींगा हैं। नेत्र चंचल व अरुण हैं और बड़े विस्तृत पलक युक्त हैं ७६॥

बनभ्रमण के श्रमजन्य शोभा रूप अमृत की वर्षा द्वारा व्रजवासियों के नयन-चकोरों को परितृप्त करते करते श्रीकृष्ण-ने अपने समान सखाओं के संग व्रज में प्रवेश किया ॥८०॥

उस समय श्रीकृष्ण की मेघमाला तुल्य अंगकान्ति, वंशी की सर्वत्र पतनशील (पड़ने वाली) कलध्वनि रूप अमृत की मधुर धारा की वर्षा से व्रजभूमि को सींचती हुई अपने विरह रूप दावानल की विनाशकर्त्री के रूप में सुशोभित हुई अर्थात्

श्रीकृष्णागम-भूपतेः सखिचमू-शृङ्गादि-कोलाहलं
श्रुत्वोद्यत्सुरभी-रजोध्वजचयान दूराद्विलोक्योद्विजन्।
घोषात्तद्विरहाख्य--दस्युनृपतिर्भीत्यापयातः क्षणा—
च्चिन्तातानवदीनतातिजड़तार्त्युद्वेग-सेनान्वितः ॥८२॥
वंशीगानामृतमुचि गवां धूली—जालाब्दमाले
हम्बाराव-स्तनित-वलिते श्रीहरेरागमाख्ये।
प्राबृट्कालेऽभ्युदयति मुदा सर्व्वतश्चोन्मुखीयं
प्रोद्यत्तृष्णा-व्रजजनततिश्चातकाल्यभ्युपेता।८३॥
व्रजेशो भ्रातृभिर्गोपैर्व्रजेशा सहयातृभिः।
तूर्णं दूरात् समभ्येत्य तनयौ परिषस्वजे ॥८४॥

---

श्रीकृष्ण रूपी मेघ ने वंशी-ध्वनि रूपा अमृत-धारा की वर्षा से विरह-दावानल से संतप्त व्रजवासियों को सुशीतल किया॥८१॥

अब श्रीकृष्णागमन की तुलना ससैन्य नृपागमन सहित करते हैं, यथाः—श्रीकृष्ण का आगमन तो भूपति है, सखावृन्द है सेना, शृंगादि का कोलाहल है वाद्य। उसे सुनकर तथा गौओं के खुरों से उड़ती हुई रज हैं ध्वजा-पताकाएँ—उन्हें दूर से ही देखकर, श्रीकृष्ण-विरह रूप दस्यु ( चोर-डाकू ) घबड़ा गये और चिन्ता, कृशता, दीनता, अतिजड़ता, आर्त्ति व उद्वेग रूपी अपनी अपनी सेना से मिलकर भय के मारे व्रज से क्षणभर में न जाने कहाँ भाग गये ॥८२॥

पुनः श्रीकृष्णागमन की तुलना एक दूसरी उपमा वर्षा-गमन से करते हैं, यथाः—श्रीकृष्णागमन रूपी वर्षाकाल के आते ही, आकाश में गोधूलि रूपा मेघमालाएं छा गयीं, वंशी गान रूपी अमृत की धारा बर्षने लगी और गौओं के रँभाने के रूप में मेघ गरजने लगा अतएव व्रजवासी रूपी चातक समूह अत्यन्त सतृष्ण हो ऊर्ध्व मुखी ही समीप आ पहुंचे ॥८३॥

त्यक्त्वा रसवतीं दासीः संरदय तदवेक्षणे।
रोहिण्यतुलयाभ्येत्य ननन्दालिङ्ग्य तौ सुतौ ॥८५॥
मुरली-नदनादुत्थितमदना गद्‌गद्‌गदना व्रजबिधुवदनाः।
सुशिखर-रदनाः श्लथितच्छदना ययुरपकदनाः सदनात् सदनात् ॥
उदयति वत कृष्णे चित्रभानौ पुरस्ताद्
व्रजवसति-जनानां फुल्लताद्युत्पलेऽभूत् ।
स्मित-कुमुद-बिकाशः स्विन्नताङ्गेन्दुकान्ते
बिरह-दहन-तप्तं जीवनं शीतलञ्च ।८७॥

---

व्रजराज श्रीनन्दराय ने अपने भाइयों के साथ और व्रज-रानी यशोदा ने अपने पति के भाइयों की स्त्रियों के साथ दूर से शीघ्र ही समीप आकर पुत्र को आलिंगन किया ॥८४॥

रोहिणी ने भी दासियों को पाक-सामग्री की देखभाल मे रख, अतुला के साथ पाकशाला को छोड़, शीघ्र ही जा कर दोनों पुत्र रामकृष्ण को सस्नेह आलिंगन किया ॥८५॥

तब व्रजललनाएँ भी घर घर से निकल आयीं। वे चन्द्र-बदनी हैं, गद्‌गद भाषिणी हैं, दाड़िम बीज से उनके दशन हैं, शिथिल उनके बसन हैं और मुरलीध्वनि से पीड़ित मदन है ॥८६

अब श्रीकृष्ण-दर्शन की तुलना एक बिचित्र सूर्योदय से करते हैं, यथाः—श्रीकृष्णरूपी बिचित्र सूर्यदेव के सम्मुख उदय होने पर व्रजबासियों के नयन रूपी कमल खिल उठे, मन्द हास्य रूपी कुमुद फूल उठे, अंगरूपी चन्द्रकान्तमणि पसीज चला और विरह ताप से संतप्त जीवन सुशीतल हो गया। कुमुद का खिलना, चन्द्रकान्तमणि का पिघलना और जीवन का शीतल होना ये सब चन्द्रोदय पर ही होते हैं। परन्तु यहाँ सूर्योदय पर हो रहे हैं। यही है श्री कृष्ण-सूर्य की बिचित्रता-आश्चर्य-रूपता ॥८७॥

उदयति बत कृष्णो नित्यपूर्णोऽद्भुतेन्दौ
व्रजयुवति-जनानां फुल्लमासीन्मुखाब्जम् ।
अरति-वियुति-चिन्ता-घूकपाली निलीना
मिलति च तनु-कोकीसंहति-प्राणकोकैः ॥८८॥
व्रजाङ्गनादृक् तृषितालिमाला विलङ्घ्य लज्जा-प्रतिकूलवात्याम् ।
समुच्छलत्कान्ति-मरन्दलुब्धा पपात कृष्णस्य मुखारविन्दे ।८९॥
लतान्तराल-स्थित-बल्लवीनां वक्त्राणि मत्वा विकचाम्बुजानि ।
ह्री-वात्यया संभ्रमितापि लुब्धा पपात शौरेर्दृगालिद्वयीह ॥९०॥

---

अब एक विचित्र चन्द्रोदय से तुलना करते हैं, यथा—श्री-कृष्ण रूपी नित्यपूर्ण अद्भुत चन्द्र के उदय होने पर व्रजयुवतियों के मुखकमल खिल उठे एवं अरति ( व्यथा ) वियुति (वियोग) व चिन्ता रूपी उलूकश्रेणी सब लोप हो गये; तथा देह रूपिणी चक्रवाकी ( चकई ) समूह प्राण रूप चक्रवाक से जा मिली—कमल का खिलना, उल्लुओं का छिप जाना और चकवा चकई का मिलन सूर्योदय पर ही होता है पर यहाँ चन्द्रोदय पर हो रहा है। यही है श्रीकृष्णचन्द्र का आश्चर्य ॥८८॥

तब व्रजांगनाओं की दृष्टि रूपिणी तृष्णातुर भ्रमरमाला लज्जारूपी प्रतिकूल वायु को पार करके श्रीकृष्ण के मुखकमल की उच्छलित कान्तिरूपी मकरन्द से लुब्ध होकर उस मुख-कमल पर जा जा कर पड़ने लगीं अर्थात् गोपियाँ लज्जा त्याग कर श्रीकृष्ण के मुखकमल का दर्शन करने लगीं ॥८९॥

उधर श्रीकृष्ण के नेत्र रूपी दो भ्रमर लतामध्यस्थित गोपियों के मुख को प्रफुल्लित कमलश्रेणी समझ पहले तो लज्जारूपी प्रतिकूल वायु के बाधा देने से इधर उधर भटकते रहे परन्तु अन्त में कान्तिरूपी मकरन्द से लुब्ध हो उन मुखकमलों पर जा

दर्शं दर्शं बदन-कमलं तद्वपुः सङ्गिवातं
स्पर्शं स्पर्शं तनुपरिमलं श्रीहरेर्गोपिकाल्यः ।
घ्रायं घ्रायं तदधर-मधु-स्फीत-वंशी-निनादं
स्वादं स्वादं पुपुषुरधिकं स्वानि पञ्चेन्द्रियाणि ॥६१॥
श्रीराधिकापाङ्ग-विलोकनेषुणा संस्पृष्ट-मर्म्मा स यथाकुलोऽभवत् ।
नान्याङ्गना-श्रेणिकटाक्ष-पत्रिभिः संभिन्न-सर्व्वावयवोऽप्यसौ तथा
यद्वत् सुनिर्वृतिमवाप स राधिकाया
वक्त्रेन्दु--मन्दहसितामृत-लेशसेकात् ।
तद्वन्न गोपसुदृशां बदनेन्दुवृन्द-
प्रोद्यत्स्मितामृतभर--प्रकरावगाहात् ॥६३॥

---

गिरे अर्थात् श्रीकृष्ण पहले लज्जावश इधर उधर देखते रहे अन्त में लज्जा छोड उनके दर्शन करने लगे ॥६०॥

अब गोपियों की अति तृष्णा का बर्णन करते हैं, यथा:—गोपियाँ श्रीकृष्ण के मुखकमल के दर्शन कर कर के नेत्रों को, उनके अंगस्पर्शी वायु को स्पर्श कर कर के अपनी त्वचा को, उनके अंग से लगी परिमल का आघ्राण कर कर के अपनी नासिकाओं को और उनके अधरमधु से फूली वंशीध्वनि का आस्वादन कर कर के अपने कर्णों को अर्थात् पाँचों इन्द्रियों को परिपुष्ट करने लगीं ॥६१॥

अब श्रीराधिका के प्रेम रसादि की अधिकता दर्शाने के लिये कहते हैं कि श्राराधा के कटाक्ष रूपी बाणों द्वारा मर्मस्थल स्पृष्ट ( छूने ) होने पर श्रीकृष्ण जैसे व्याकुल हुये, वैसे अन्यान्य गोपांगनाओं के कटाक्षबाणों से सर्वांग छिदने पर भी व्याकुल नहीं हुये ॥६२॥

पुनश्च:—श्रीराधा मुखचन्द्र के मन्द-हास्य रूप अमृत के

गोकुलैर्गोकुलं निन्ये गोकुलं गोकुलैर्हरन् ।
गोकुलं गोकुलस्त्रीणां गोकुलैर्गोकुलेश्वर: ॥९४॥
आसाद्याग्रे भविक-वलितं काननात् संमिलन्तं
प्राणप्राणं निधिमिव गतं दूरतो हस्तमाप्तम ।
चुम्बन्तौ तं हृदि निदधतौ लोकयन्तौ तदास्यं
संजिघ्रन्तौ शिरसि पितरौ प्रापतुर्वाञ्छितानि ॥९५॥
गोधूलि-धूम्रानलकान् सबर्हकान् वितुस्तयन्तौ बसनाञ्चलेन तौ ।
प्रक्षालयन्तौ स्तनहृक्पय:स्रवैरङ्गानि सूनो: पितरौ ननन्दतु: ॥९६॥

---

लेशमात्र के अभिषेक से श्रीकृष्ण को जो आनन्द प्राप्त हुआ वह आनन्द ब्रजसुन्दरियों के समुदित हास्यामृत के प्रवाह में स्नान करने पर भी प्राप्त नहीं हुआ ॥९३॥

गोकुलेश्वर श्रीकृष्ण ने सब गोकुलवासिनियों के गो-कुल अर्थात् नेत्रसमूह का हरण करते करते गोकुल अर्थात् "हीयो गंगा, हीयो यमुना, हीयो धौली" इत्यादि शब्दों का उच्चारण करते हुए गो-कुल अर्थात् धेनु-वृन्द को गो-कुल अर्थात् बैलों के साथ गोकुल गाँव में ला पहुंचाया ॥९४॥

अब श्रीनन्द-यशोदा का वात्सल्य वर्णन करते हैं:—जब श्रीकृष्ण का मंगलयुत श्रीविग्रह बन से आ पहुँचा; तो श्रीनन्द-यशोदा को लगा मानो उनके बनको गये प्राण प्राण में लौट आये, दूर देश को चली गयी निधि फिर हाथ में आ गयी और उन्होंने पुत्र को चूम कर, छाती से लगा कर, देख देख कर और सूँघ कर मनोरथ लाभ किया ॥९५॥

पिता—माता ने पुत्र के मोर-पंख सहित अलकावली को गोरज से धूसरित देख उन सबको अपने आँचल से पोंछ पोंछ कर परिष्कार किया। पिता ने आनन्द के अश्रु जल से व माता

तातादि-लोकैर्मिलनं बकीरिपोः प्रातर्यदासीदधुनापि किन्तु तत् ।
प्रातस्तनं तद्विरह क्रमोत्तारं सायन्तनं संयुति-संमदोत्तरम् ॥६७॥
सकलय्याथ गोजालमस्ताचल इवांशुमान् ।
बलयामास गोशाले केशवः स्वप्रवेशनः ॥६८॥
धेनूर्वस्कयनीर्वत्सतरीगृष्टीः परेष्टुकाः ।
सन्धिनीरुपसर्य्याश्च प्रष्ठौहीश्च पृथक् पृथक् ॥६६॥
वृषान् वत्सतरान् षण्डान् युग्य-प्रासङ्ग्यशाकटान् ।
यथास्थानं निवेश्यासौ पाययामास तर्णकान् ॥१००॥

---

ने आनन्दाश्रु जल व स्नेह से बहते हुए स्तनों की दुग्धधाराओं से मानों तो पुत्र का अंग प्रक्षालन ( पखाल ) कर परमानन्द प्राप्त किया ॥६६॥

पूतना नाशक श्रीकृष्ण का पिता नन्दराय प्रभृति स्वजनों के साथ संमिलन प्रातःकाल की ही भाँति होने पर भी प्रातःकाल के मिलन में दिनभर श्रीकृष्ण के वियोग का दुःख वर्तमान था और सायंकाल के मिलन में रात्रिभर कृष्ण के संयोग का सुख उमड़ रहा था ॥६७॥

सूर्य जैसे किरणमालाओं को समेट कर अस्ताचल में प्रवेश कर जाता है श्रीकृष्ण ने भी वैसे ही गौओं को समेट कर अपने प्रवेश करने से पहले उनको गौशाला में प्रवेश कराया ॥६८॥

श्रीकृष्ण ने धेनु ( नव प्रसूता ), वस्कयनी ( चिर प्रसूता ), वत्सतरी ( बड़ी बाछिया ), गृष्टी ( अलौकिक गौ ), परेष्टुका ( बहु प्रसूता ), सन्धिनी ( स्रवद्गर्भा ), उपसर्या ( ऋतुमती ) गौओं को तथा बैल, बड़े बछड़े, साँड़, युग्य (हल जोतने वाले) एवं प्रासंग्यशकट ( गाड़ी खींचने वाले ) बैलों को यथा स्थान स्थापना किया और तब सद्योजात वत्सों को उनकी अपनी

तल्लालनायोत्सुक-मानसाभ्यां यदा पितृभ्यां मुहुरर्थितोऽपि ।
नैच्छद्गृहं गन्तुमसौ गवालौ दोहोत्सुकस्तं जनकस्तदाह ॥१०१॥
विश्राम्यन्तु क्षणं गावः पिबन्तु तर्णकाः पयः ।
अहमत्रास्मि सन्त्येते गोपा गोदोहनोत्सुकाः ॥१०२॥
वत्सौ श्रान्तौ युवां यातं गृहं मातृभ्यां लालितौ ।
स्नानाद्यैः पुनरायातं गोदोहाय गतश्रमौ ॥१०३॥
कृष्णं कर्षन् बटुः प्राह क्षुत्तृड्भ्यां बाधिता वयम् ।
याहि कृष्ण गृहं प्राणान् रक्ष नः पान-भोजनैः ॥१०४॥
आम्रेडितो वत्सलया बलाम्बया मुहुर्व्रजेन्द्रेण कृताग्रहोत्करः ।
निजाम्बयाकृष्टकरः सहाग्रजः कृष्णः प्रतस्थे सखिभिर्निजालयम् १०५

---

अपनी माताओं का स्तन पान कराने लगे ॥९९-१००॥

उधर श्रीकृष्ण का लालन ( लाड़-प्यार ) करने की लालसा से उत्सुक चित्त हो माता पिता के बारम्बार बुलाने पर भी जब गोदोहन में उत्सुक श्रीकृष्ण को गोशाला से गृह गमन करने में अनिच्छुक देखा तो पिता नन्दराय उनसे कहने लगे ॥१०१॥

वत्स ! क्षणभर के लिए गौएँ विश्राम करें और बछड़े दूध पीवें । मैं यहाँ हूँ और गो-दोहन के लिए उत्सुक ये सब गोप भी यहाँ हैं । तुम दोनों भाई श्रान्त हो गये हो, सो दोनों ही घर को जाओ, माताएँ तुम्हारा लालन करेंगी, गृह में स्नानादि कर विगतश्रम हो फिर गोदोहन के लिये आना ।।१०२-१०३

इतने में मधुमंगल श्रीकृष्ण को खींचते हुये बोला, भाई कृष्ण ! हम तो क्षुधा व तृष्णा से अत्यन्त कातर हो रहे हैं, सो घर जाओ, खा-पीकर हमारे प्राणों की रक्षा करो ॥१०४॥

वात्सल्यमयी बलदेव की माँ रोहिणी ने भी दो-तीन बार बुलाया, व्रजराज नन्द अतिशय आग्रह करने लगे, और अपनी

सर्व्वान्नयन्तीं स्वगृहं व्रजेश्वरीं संप्राथ्य मार्गे सखि-मातरो हरेः ।
त्यागेऽप्यनाशाः स्वयमप्यनीश्वरं स्वस्वात्मजं निन्युरहो निजालयम्
गृहं व्रजेशया नीते सबटौ सबले हरौ ।
बलाम्बाऽतुलया धौतपादा रसवतीं ययौ ॥१०७॥
शमित-बिरह-तापालोकनाद्गोकुलेन्दो—
र्बिहित-तदनुयाना आव्रजान्तः प्रहृष्टाः ।
तदवकलन-विच्छेदार्त्ति-संबिग्न-चित्ता
निज-निज-भवनं श्रीराधिकाद्याः समीयुः ॥१०८॥

---

माँ यशोदा भी हाथ पकड़ कर खींचने लगी अतएव श्रीकृष्ण अग्रज बलराम व अन्यान्य सखाओं के साथ अपने भवन को चले ॥१०५॥

श्रीयशोदा सब बालकों को श्रीकृष्ण के साथ अपने भवन को ले जा रही थीं कि अन्यान्य बालकों की माताओं, यह बिचार कर कि यशोदा के भवन में हमारे पुत्रों के पहुँच जाने से वहाँ से उनको ले आने में हम समर्थ न होंगी, मार्ग में ही श्री-यशोदा के निकट प्रार्थना की। बालक श्रीकृष्ण को छोड़ कर जाने में असमर्थ थे तथापि उनकी माताएँ अपने अपने प्रभु को अपने अपने घर ले ही गयीं ॥१०६॥

ब्रजेश्वरी श्रीयशोदा, मधुमंगल व बलराम के साथ श्री-कृष्ण को घर ले गयीं और बलराम की माता रोहिणी ने अतुला के साथ अपने चरण धोकर पाकशाला में प्रवेश किया ॥१०७॥

श्रीराधा प्रभृति ब्रजसुन्दरियों को भी गोकुलचन्द्र श्रीकृष्ण के दर्शन कर बिरह-ताप से शान्ति मिली। वे सब प्रसन्न हृदय से ब्रज-बस्ती के मध्य स्थान तक श्रीकृष्ण के पीछे पीछे गयीं

सुतस्यापुत्राणां बहुकनकवृष्टिरधनिनां
महावृष्टिर्दावानल-वलित-वन्यार्थितियुपाम् ।
यथाऽकस्माल्लब्धिर्भवति परमानन्द-जननी
तथा घोषस्थानां पुनरपि हरेः सङ्गतिरभूत् ॥१०६॥
श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽस्मात्रपराह्ण-केलि-वलितोऽगादूनविंशाभिधः ॥१६॥

फिर श्रीकृष्णदर्शन के वियोग से दुःखी होकर उद्विग्न चित्त से अपने अपने गृह को चली गयीं ॥१०८॥

पुत्रहीनों को पुत्रलाभ, निर्धनों को अकस्मात् स्वर्ण की वर्षा अर्थात् धन प्राप्ति और दावाग्नि से चारों ओर से घिरे हुए वन के प्राणियों को अकस्मात् घनघोर वृष्टि जैसे महानन्द की जननी होती है अर्थात् महानन्द प्राप्त होता है, वैसे ही घोष-बस्ती के गोप-गोपियों को दिनान्त में पुनः श्रीकृष्णप्राप्ति भी वैसी ही आनन्ददात्री हुई ॥१०६॥

यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृत नामक महाकाव्य में अपराह्न-लीलामय यह उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ। यह श्रीगोविन्द-लीलामृत श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूपगोस्वामी की सेवा का फल है श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीजीवगोस्वामी के संग से उदय हुआ है तथा श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वरदान से प्रादुर्भूत हुआ है ॥१६॥

—❧—

# =❀+: अथ विंश: सर्ग: :+❀=
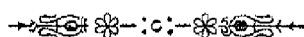
सायं राधां स्वसख्या निजरमण-कृते प्रेषितानेकभोज्यां
सख्यानीतेश-शेषाशन-मुदितहृदं तांश्च तञ्च व्रजेन्दुम् ।
सुस्नातं रम्यवेशं गृहमनु जननी-लालितं प्राप्तगोष्ठं
निर्व्यूढ़ोस्रालि-दोहं स्वगृहमनु पुनर्भुक्तवन्तं स्मरामि ।।१।।
अथागता सा सदनं व्रजेश्वरी सुतौ ।विधायास्नव-वेदिकां गतौ ।
नियुज्य दासानपि तन्निसेवने धनिष्ठिकामाह निजान्तिक-स्थिताम् ।।
राधां प्रयाहि वटकैः सह लड्डुकानि
स्वादूनि कृष्ण-रुचिदानि तया कृतानि ।
तां प्रार्थ्य पुत्रि शुभदान्यधुनानय त्वं
स्यातां सुतौ यददनाच्चिरजीविनौ मे ।।३।।

---

जो सायंकाल में अपनी सखी के द्वारा अपने रमण श्रीकृष्ण के लिए अनेक प्रकार की भोजन-सामग्री भेजती हैं तथा सखियों के द्वारा लाये हुए श्रीकृष्ण के भुक्त-शेष को भोजन कर हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं, उन श्रीराधा को तथा जिन्होंने सुन्दर स्नान किया है, मनोहर वेश धारण कर रखा है, गृह में जननी जिनको पुनः २ लाड़ प्यार करती हैं, जो गोष्ठ ( गौशाला ) को गमन कर, वहाँ गौ-दोहन समाप्त कर पुनः गृह को लौट कर भोजन कर रहे हैं, उन श्रीकृष्ण को भी मैं स्मरण करता हूँ ।।१।।

तदनन्तर, व्रजेश्वरी श्रीयशोदा गृह में आगमन कर दोनों पुत्रों को स्नान की वेदी पर बैठा उनकी सेवा में सेवकों को नियुक्त कर समीपस्थ धनिष्ठा से बोलीं ।।२।।

सा गत्वा राधिकामेतां व्रजेश्वर्य्या निदेशतः ।
भक्ष्याण्ययाचत्तैषां स्वयं प्रस्थापनोत्सुकाम् ॥४॥
मालती तावदभ्येत्य वृन्दया प्रहिता सखी ।
सङ्केत-कुञ्जमाचख्यौ श्रीगोविन्दस्थलाभिधम् ॥५॥
श्रीराधिकापि भक्ष्याणि तानि कृत्वा पृथक् पृथक् ।
वस्त्राच्छन्नास्य-सन्नव्य-मृत्पात्रेषु सुतान्यलम् ॥६॥
तानि चाधाय विस्तीर्णे चित्रिते दारु-संपुटे ।
सकस्तूर्य्यां तुलस्यां तं न्यस्य शुक्लाम्बरावृतम् ॥७॥
ताम्बूल-वीटिकाश्चास्यां न्यस्य तत्सकलं पुनः ।
ज्ञात-सङ्केत-कुञ्जायै धनिष्ठायै समर्पयत् ॥८॥

---

पुत्री धनिष्ठे ! ये जो श्रीराधिका हैं तुम उनकी प्रार्थना कर उनके बनाये हुए बड़े और लड्डुओं को ले आओ कारण कि उन वस्तुओं के भोजन से मेरे दोनों पुत्र चिरंजीवी होकर रहेंगे ॥३॥

धनिष्ठा ने व्रजेश्वरी के आदेशानुसार श्रीराधिका के समीप जाकर उनसे भक्ष्य वस्तुओं की प्रार्थना की । श्रीराधिका उनको भेजने के लिए स्वयं उत्सुक हो रही थीं ॥४॥

इतने ही में वृन्दादेवी की भेजी हुई मालती नाम की सखी ने आकर "गोविन्दस्थल नामक संकेत कुंज"–यह बात कही ॥५

तब श्रीराधा ने उन सब भक्ष्य वस्तुओं को पृथक् पृथक् करके नये मिट्टी के पात्रों में रखा और उनके मुख वस्त्र से ढक दिये, फिर उन पात्रों को एक काठ की बड़ी पिटारी में रख कर उसे भी एक मनोहर शुक्ल वस्त्र से ढक दिया और कस्तूरी नामक सखी के साथ तुलसी के हाथ वे सब वस्तु सौंप दीं । और फिर तुलसी को पान-बीड़ा देकर संकेत कुंज को विशेष रूप से जानने वाली धनिष्ठा के साथ सबको भेज दिया ॥६-८॥

सापि ताभ्यां तदानीय व्रजेश्वर्य्यै न्यवेदयत् ।
सा ताभिस्तानि पात्रेषु पृथक् पृथगकारयत् ॥९॥
तेषां तथा स्वालय-संस्कृतानां कियत् कियत् सा तदुपायनानाम् ।
बिधाय पात्रेषु ददौ तदादौ नारायणायार्पयितुं बटुभ्यः ॥१०॥
अङ्ग-प्रक्षालनाभ्यङ्गोन्मर्द्दनोद्वर्त्तनास्नवै ।
मार्ज्जनोद्गमनीयाच्छ-नव्यांशुक-समर्पणैः ॥११॥
केश-संस्कार-तिलकालेप-माल्य-विभूषणैः ।
कृष्णाद्याः सेविता दासैर्निविष्टा भोक्तुमासने ॥१२॥
क्रमान्माता तेभ्यो नारिकेलान्यथाम्रतः ।
पानकादि-रसालादि-फलानि विविधानि च ॥१३॥

---

धनिष्ठा ने भी कस्तूरी व तुलसी के द्वारा उन सब वस्तुओं को लाकर व्रजेश्वरी के अर्पण कर दीं तब यशोदा ने भी उनको धनिष्ठा, कस्तूरी और तुलसी के द्वारा पृथक् पृथक् पात्र में पृथक् पृथक् रूप से रखवाया ॥९॥

और अपने घर में भी जो कुछ प्रस्तुत हुई थीं, उन सब उत्तम उत्तम सामग्रियों में से थोड़ा थोड़ा लेकर पृथक् पृथक् पात्रों में सजाया तथा प्रथम श्रीनारायण देव को समर्पण करने के लिए ब्राह्मण कुमारों को वे सब वस्तुएँ दीं ॥१०॥

तब दासों ने श्रीकृष्ण-बलराम का अंगप्रक्षालन, तैल-मर्दन, सम्बाहन ( शरीर को दबाना ) उद्वर्तन ( उबटना ) करके उनको स्नान करवाया, श्रीअंगपर से जल पोंछा, निर्मल व नवीन वस्त्र पहनने और ओढ़ने के लिए अर्पण किये, केश-संस्कार किया, तिलक-रचना की, अगर-कुंकुमादि लेपन किये तथा माला एवं अलंकार धारण कराये । तब श्रीकृष्ण-बलरामादि सब बालक भोजन करने के लिए आसनों पर बैठे ॥११-१२॥

पीयूषग्रन्थि-कर्पूरकेलिकामृतकेलिकाः ।
बटकान् लड्डुकान्याज्यसंस्कृतान्नादिकानि च ॥१४॥ युग्मकम्
हसन्तो हासयन्तस्ते मधुमङ्गल-नर्म्मभिः ।
भुक्त्वा पीत्वा मुदाचम्य क्षणं तल्पे विशश्रमुः ॥१५॥
त एते सेविता दासैस्ताम्बूल-व्यजनादिभिः ।
गोशालं मिलितैर्मित्रैर्गोदोहाय पुनर्ययुः ॥१६॥
तद्भुक्तशेषं तत्सर्व्वं श्रीराधायै धनिष्ठिका ।
निभृतं प्रेषयामास स्वसख्या गुणमालया ॥१७॥
सालिवृन्दा तदास्वाद्य सारूढा चन्द्रशालिकाम ।
कृष्णं गोदोहनक्रीड़ं पश्यन्ती मुमुदे भृशम ॥१८॥

---

अब माता यशोदा ने क्रम से परोसना आरम्भ किया। पहले नारियल की गिरी ( कतरी हुई ), फिर शर्वत, शिखरन आदि और तब विविध भाँति के फल परोसे। फिर पीयूषग्रन्थि, कर्पूरकेलि, व अमृतकेलि नाम के बड़े बड़े लड्डू तथा घृतपक्व अन्न ( भात ) आदि पदार्थ दिये ॥१३-१४।

तदनन्तर कृष्ण-बलरामादि सखागण सबने मधुमंगल के परिहास वचनों पर हँसते हुए तथा औरों को हँसाते हुए, भोजन व पान समाप्त कर, प्रसन्न हो आचमन किया और वे कुछ क्षण के लिए शय्या पर विश्राम करने लगे ॥१५॥

दासों ने ताम्बूल प्रदान किया, तथा चवँर, व्यजनादि की सेवा की। तब वे श्रीकृष्ण-बलराम मित्रवृन्द सहित गौ-दोहन के लिए पुनः गौशाला को गये ॥१६॥

धनिष्ठा ने श्रीकृष्ण का भुक्तशेष सब-का सब अपनी सखी गुणमाला के द्वारा श्रीराधिका के समीप एकान्त में भेज दिया ॥१

श्रीराधा सखियों समेत उस कृष्णभुक्तशेष का आस्वादन

कच्चिद् ग्रीष्मे कृष्णः पथि सखि-कुलैः प्रार्थ्य जननीं
मर्मं तैः संस्नातुं सरति यमुनां क्वापि च सरः।
तदा दासा मात्रार्पित-विविध-भक्ष्याणि मुदिता
गृहीत्वा स्नानीयाभरण-वसनादीन्यपिययुः ॥१९॥
तत्र स्नाताः सुवेशास्ते भुक्त्वा पीत्वा गतश्रमाः।
गोदोहाय पथा तेन पुनर्यान्ति गवालयम् ॥२०॥
तदा राधापि सा सार्थं स्नान-व्याजात् सखीचयैः।
गत्वानुस्रोतसि स्नात्वा कृष्णाङ्ग-सङ्ग-वारिणि ॥२१॥
रहो भक्ष्याणि कृष्णाय कुन्दवल्ल्याऽर्पयत्यसौ।
भुक्त्वा तयाप्त-तत्शेषं पश्यन्ती याति तं गृहम् ॥२२॥ युग्मकम्

---

कर चन्द्रशालिका पर चढ़ गयीं और श्रीकृष्ण की गौ-दोहन क्रीड़ा का अवलोकन करती हुई परमानन्द प्राप्त करने लगीं ॥१८

ग्रीष्म काल में कभी श्रीकृष्ण गौशाला में प्रवेश न करके मार्ग में माता से प्रार्थना करते हैं कि हे माँ ! आज तो हम स्नान करने के लिए यमुना अथवा सरोवर को जायँगे। ऐसा कहकर जब वहाँ गमन करते हैं तो माता के दिये हुए भक्ष्य-पदार्थ एवं स्नानीय अलंकार व वसनादि लेकर दासगण भी प्रसन्नतापूर्वक वहाँ जाते हैं ॥१९॥

श्रीकृष्णादि सब बालक उस यमुना अथवा सरोवर में स्नान करते हैं, फिर वस्त्रालंकार धारण कर भोजन-पानादि कर विश्राम करते हैं, और पुनः उसी मार्ग से गौ-दोहन के लिए गौशाला को गमन करते हैं ॥२०॥

उस समय श्रीराधा भी स्नान के मिष से सखियों के साथ यमुना को गमन करती हैं तथा श्रीकृष्ण के अंगों के स्पर्श को लिये हुए जल-धारा में स्नान करती हैं। वे एकान्त में कुन्द-

दासा भृङ्गार-ताम्बूलपात्र-व्यजन-पाणयः ।
निर्योग-पाश-वेत्रादि-धारिणस्ते तमन्वयुः ॥२३॥
तातं स खट्टोपरि संनिविष्टं पुरोधृतानेक-पयोघटालिम् ।
गोपांश्च दासांश्च समादिशन्तं तदागतौ स्वाध्वनि दत्तदृष्टिम् ॥२४॥
हम्बारावैस्तृषितरुचतो वत्सकानाह्वयन्ती—
रुत्कर्णास्याः स्वपथि निहित-स्वावलोकोत्कनेत्राः ।
ऊधोभारैः स्थगित-चलना दुग्धपूरान् स्रवन्ती—
र्दुग्ध्वा दोह्याः कतिचिदपरा दुह्यमानाश्च धेनूः ॥२५॥

---

लता द्वारा श्रीकृष्ण के लिए भक्ष्य-पदार्थ भेजती हैं एवं उसके द्वारा प्राप्त श्रीकृष्ण के उच्छिष्टामृत का ग्रहण करके श्रीकृष्ण के दर्शन करती हुई गृह को गमन करती है ॥२१-२२॥

इधर सेवक वृन्द जलपात्र, ताम्बूलपात्र, व्यजन, निर्योगपाश ( दुहते समय गाय के पैरों को बाँधने के काम में आने वाली डोरी ) तथा बेंत आदि वस्तुओं को हाथों में लिये हुए श्रीकृष्ण के पीछे पीछे चले ॥२३॥

श्रीकृष्ण ने गृह में आकर देखा कि पिता नन्दराय पलंग पर बैठे हुए हैं, सामने बहुत-से दूध के कलशों की पंक्ति है तथा वे सेवकों और गोपों को अपने अपने कार्य्य के लिए आज्ञा कर रहे हैं किन्तु उनकी दृष्टि श्रीकृष्ण के आने के मार्ग की ओर ही लगी हुई है ॥२४॥

श्रीकृष्ण ने और भी देखा कि गौएँ रँभाती हुई तृषित व कोलाहलकारी वत्सों को बुला रही हैं, उनके कान ऊपर को उठे हुए हैं, उनके नेत्र उनके दर्शन के लिए उत्कण्ठित होकर उनके आने के मार्ग की ओर लगे हुए हैं, उनकी गति ऐन ( थन ) के भार से रुक गयी है जिनमें से दूध स्वतः बह रहा है । उनमें

तत्राद्धे नोमुहुरभिधया तां हिही पूर्वयोक्त्या-
स्तत्तन्मातुः पुनरभिधया वत्सकाश्चाह्वयन्तम् ।
दोहं दोहं पय इह गवां पूरयन्तं घटालि
विन्यस्ताक्षं स्वक-पथि गवां गोदुहा चापि पश्यन् ॥२६॥
स्वदर्शनोत्कं परिचारकाणां गणं पयोभार-वहञ्च कुम्भान् ।
पूर्णान्नयन्तं गृहमानयन्तं शून्यान्गृहाद्गोपपतेः पुरस्तात् ॥२७॥
शृङ्गैः खुरैर्दारयतो धरां मुहु-र्गम्भीर-तार-स्वन-नादिताम्बरान् ।
तान् बासिता-सङ्गतये परस्पर प्रयुध्यतः षण्डवरांश्च धावतः ॥२८॥
मस्तकामस्तकि क्रीड़ायुद्धं विदधतो मिथः ।
मुहुर्वत्सतरांश्चापि दृष्ट्वा संसुमुदे हरिः ॥२९॥ षड्भिः कुलकम्

---

से बहुत-सी गौएँ दुह ली गयी हैं, बहुत-सी अनदुही हैं और बहुत-सी दुही जा रही हैं ॥२५॥

गौदोहन कारी गोप प्रत्येक गाय का नाम लेते हुए "हियो हियो" की टेर के साथ उन उन गौओं और वत्सों को बुला रहे हैं और गौओं का दूध दुह दुह करके कलशों को भर रहे हैं और दुही जाने वाली गौएँ श्रीकृष्ण के आने के मार्ग की ओर दृष्टि लगाये हुयी हैं ॥२६॥

सेवक वृन्द सब श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए उत्कंठित हो दूध ढो रहे हैं—कोई दूध से भरे घड़ों को घर पहुँचा रहे हैं तो कोई शून्य घड़ों को घर से ला ला कर गोपराज नन्दराय के आगे रख रहे हैं ॥२७॥

इतने ही में श्रीकृष्ण ने देखा कि साँड़ सब अपने अपने सींगों और खुरों से भूमि को खोदते हुए, बार बार के गम्भीर नाद से आकाश गुँजाते हुए, गौओं से संगम करने के लिए एक दूसरे के प्रति दौड़ दौड़ कर युद्ध करने लगे ॥२८॥

विज्ञाप्य तातं दोहाय गतोऽसौ गाश्च ता मुदा ।
मिलिताः सर्वतः कृष्णः सान्त्वयामास सान्त्वनैः ॥३०॥
श्रीहस्त-मार्जनैः कण्डूयनैर्गोः प्रीणयन् हरिः ।
दुदोह दोहयामास वत्सांस्तैस्तैश्च पाययन् ॥३१॥
वत्सा निपीयोदरपूरमुच्चैस्तृप्तिं गता गोपगणा यथेप्सितम् ।
दुग्ध्वा निवृत्ताश्च गवां तथाप्यहो नोधःपयःपूरिरवापहीनताम् ॥३२
कृष्णाननाब्जार्पित--नेत्र--चेतसां
गवां स्वयं संश्रवदौधसं पयः ।
गोपाः स्तनाधो धृतकुम्भ--सञ्चयैः
सम्भृत्य निन्युः पुरतो व्रजेशितुः ॥३३॥

---

छोटे छोटे बछड़े भी मस्तक से मस्तक भिड़ाकर जूझ रहे थे—ये सब देख कर श्रीकृष्ण अत्यन्त आनन्दित हुए ॥२९॥

तब श्रीकृष्ण पिता से कहकर दुहने के लिए चले। गौओं ने भी हर्षित होकर उनको चारों ओर से घेर लिया तो वे अपने श्रीहस्त से उनके अंगों को सहलाते हुए उनको पुचकारने लगे ॥३०

इस प्रकार श्रीहस्त द्वारा मार्जन व कण्डुयन (खुजाने के) द्वारा गौओं को प्रसन्न करते हुए श्रीकृष्ण स्वयं दूध दुहने लगे तथा ग्वालाओं के द्वारा बछड़ों को चुखा कर दूध दुहाया ॥३१॥

बछड़े भर पेट दूध पी पीकर परम तृप्त हो गये, और दुहने वाले भी मन चाहा दूध दुह दुह करके शान्त हो गये परन्तु तथापि गौओं के ऐन (थन) सब पूर्ववत् भरे ही रहे—क्षीण नहीं हुए —यही आश्चर्य है ॥३२॥

अब भी गौओं के नयन और चित्त श्रीकृष्ण के मुखकमल पर ही लगे हुए हैं और उनके स्तनों से दूध की धाराएँ स्वतः चल रही हैं। उनके नीचे गोपों ने कलशे लगा दिये और भर-

प्रवेश्य गोपैर्निजमातृलालितान् वत्सालयं वत्सगणान् बलान्वितः
गास्ता यथास्थानमसौ निवेश्य च व्रजाधिपस्यागमदन्तिकं हरिः॥३४॥
प्रस्थाप्य दुग्धानि गृहं स भारिकै—
गवालय—द्वार्षु नियुज्य किङ्करान्।
समं सुताभ्यां सुहृदाञ्च सञ्चयै—
राजा व्रजस्याव्रजदात्ममन्दिरम् ॥३५॥
शालग्राम–शिलायां ते पूजाकृद्वटुना कृतम् ।
सान्ध्यमारात्रिकं विष्णोर्द्दृशुः क्षालिताङ्घ्रयः ॥३६॥
सदस्येषूपविष्टेषु प्रहितानि व्रजेशया।
नानाविधानि सर्पिष्कान्येत्त्वाणि फलानि च ॥३७॥
स्रग्गन्ध-वीटिकादीनि नैवेद्यानि रमापतेः।
यानि तानि व्रजाधीशः सर्व्वेभ्यो व्यभजन्मुदा ॥३८॥ युग्मकम्

---

भर कर व्रजपति नन्दराय के आगे ला रखा ॥३३॥

पश्चात् श्रीकृष्ण ने बलराम सहित वत्सगण को, जिनको माताएँ प्यार कर रही थीं, गोपों के द्वारा वत्सालय में और गौ गण को यथास्थान में प्रवेश कराया। फिर व्रजराज नन्दराय के समीप गये —३४॥

तब व्रजराज नन्दराय ने भारवाहियों के द्वारा समस्त दूध गृह को भिजवा दिया तथा गौशाला के द्वार पर नौकर-चाकरों को रखवाली में लगा कर दोनों पुत्र व सुहृद्‌जनों के साथ अपने मन्दिर को गमन किया ॥३५॥

घर जा चरण धोकर श्रीनन्दादि सब गोपों ने पुजारी ब्राह्मण-बालक द्वारा की जाती हुई शालिग्राम-शिला की संध्या आरती के दर्शन किये ॥३६॥

संध्या–आरती के दर्शन कर सदस्यों के सभा में बिराजमान

इष्टगोष्ठीं क्षणं कृत्वा कृष्णेक्षां त्यक्तुमक्षमाः ।
कृष्णे न्यस्तेन्द्रियप्राणाः सुहृल्लोका गृहं गताः ॥३९॥
सुभद्रादीन् भ्रातृपुत्रान् राजा कृष्णेन सग्धये ।
सदा निमन्त्रयत्येष सहजांस्तु कचित् कचित् ॥४०॥
तद्दिने तांस्तु सर्व्वान् स निमन्त्र्य स्वगृहेश्वरीम् ।
तेषां भोजन-सिद्ध्यर्थं बटुद्वारा समादिशत् ॥४१॥
ततो व्रजेश्वरी तुङ्गीं पीवरीं कुबलां तथा ।
स्वयातॄ राह्वयत्तत्रास्नुषापुत्रादि-संयुताः ॥४२॥

---

हो जाने पर व्रजेश्वरी श्रीयशोदा ने नाना प्रकार के घृत-शक्कर के पाक, पुष्प, माला, सुगन्ध द्रव्य, पान-बीड़ा आदि भगवान विष्णु का प्रसाद भेजा जिसे व्रजराज नन्दराय ने सबों को बाँट दिया ॥३७-३८॥

सुहृद् गोपलोग कुछ समय तक इष्टगोष्ठी ( परस्पर वार्त्तालाप ) करते रहे। वे श्रीकृष्ण=दर्शन त्याग कर जाने में असमर्थ थे। अन्त में वे अपने इन्द्रियों व प्राणों को श्रीकृष्ण में अर्पण करके अपने अपने घर को चले गये ॥३९॥

तदनन्तर व्रजराज श्रीनन्द भोजन किया करते। उस समय श्रीकृष्ण के साथ एकत्र भोजन करने के लिए वे अपने भाईयों के पुत्र सुभद्रादि सब को सर्वदा निमंत्रित-करते और कभी कभी सहोदर उपनन्द आदि को भी निमंत्रण दिया करते ॥४०॥

एक दिन उन्होंने उपनन्द, सुनन्द आदि भाईयों को निमंत्रण दिया और उनके लिए भोजन की सामग्री प्रस्तुत करने के लिए एक ब्राह्मण--बालक द्वारा गृहेश्वरी श्रीयशोदा को कहला भेजा ॥४१॥

तब व्रजेश्वरी श्रीयशोदा ने तुङ्गी, पीवरी, कुवला आदि

आहूता बटुना राज्ञ्या तत्र प्रक्षालिताङ्घ्रयः ।
भोजनायोपविविशुर्मध्ये कृत्वा व्रजेश्वरम् ॥४३॥
दक्षिणेऽस्याग्रजौ वामेऽनुजौ पुत्रौ पुरःस्थितौ ।
सुभद्राद्या हरेर्वामे बटवो बल-दक्षिणे ॥४४॥
तुङ्गी सुभद्र--जननी--जन-नीति--विज्ञा
विज्ञापिता व्रजपत्या परिवेशनाय ।
भोज्यं क्रमात् परिविवेश स-रोहिणीका
विप्रात्मज--स्वधव--देवर--पुत्रकेभ्यः ॥४५॥
सत्सौरभैः कनकवर्णघृताभिषिक्तै—
स्तूपीकृतैर्विविध--तेमन--पात्रयुक्तैः ।
स्थालीभृताः सुमृदुलैर्विशदोदनैः सा
सन्दानिकोपरि पुरो निदधे स्म तेषाम् ॥४६॥

---

अपनी देवरानी-जेठानियों तथा कुन्दलता आदि उनकी पुत्र-वधुओं और कन्याओं को बुला भेजा ॥४२॥

व्रजेश्वरी ने ब्राह्मण-बालक द्वारा नन्द-भ्राताओं को भी बुला भेजा। वे आकर शीतल जल से चरण धो व्रजराज को मध्य में कर भोजन के लिए बैठ गये ॥४३॥

व्रजराज नन्दराय के दक्षिण में दो ज्येष्ठ भ्राता, और दो कनिष्ठ भ्राता, सन्मुख दोनों पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम तथा श्रीकृष्ण के बाँये ओर सुभद्रादि भ्रातृगण और बलराम के दाँये ओर ब्राह्मण बालक-वृन्द इस क्रम से वे सब भोजन के लिए बैठे ॥४४॥

लोक-व्यवहार की नीति में कुशल सुभद्रजननी तुङ्गी एवं रोहिणी को श्रीयशोदा ने परोसने के लिए कहा तो वे क्रम से ब्राह्मण-कुमारों, अपने स्वामी, देवरों व पुत्रों को परोसने लगीं ४५

जेमत्सु तेषु परिवेशयति क्रमात् सा
शेषाणि भूरिविध--षड्रस--तेमनानि ।
सशाव--पायस--लसद्वटकानपूपान्
सद्भाजनान्तर--धृता मृदु--रोटिकाश्च ॥४७॥
यस्य यस्य प्रियं यद्यत्तत्तज्ज्ञात्वाथ रोहिणी ।
इङ्गितेन व्रजेश्वर्यास्तस्मै तत्तादृदौ मुहुः ॥४८॥
दुग्धं घनं शिखरिणीं मथितं रसालां
सन्धाड्वं दधि घनं बहुसन्धितानि ।
पक्वाम्र-सद्रसमपि व्रजराज--राज्ञी
तेभ्यः क्रमेण परिवेशयतिस्म शश्वत् ॥४९॥

---

रोहिणी के साथ तुङ्गी ने थालों में सुगन्धित पीले रंग के घृत से सिक्त ( तर ) शुभ्रवर्ण के भात की मध्य में ढेरी लगा, उसके चारों ओर सारा—व्यंजन की कटोरियों से थालों को भर भर कर, उनको छोटे छोटे पीढ़ों के ऊपर रख दिया ॥४६॥

वे सब भोजन करने लगे तो श्रीयशोदा शेष जो नाना प्रकार के कटु, तिक्त व अम्लादि व्यंजन थे उनको क्रम से परोसने लगीं तथा रोहिणी अथवा तुङ्गी द्वारा सुन्दर पात्रों में रक्खे हुए दूध में बना हुआ दलिया, खीर, सुन्दर बड़े, पूआ और नरम रोटी परोसवाने लगीं ॥४७॥

बड़े गोपों में जिनको जो जो वस्तु प्रिय हैं उन्हें व्रजेश्वरी के संकेत से रोहिणी जान कर, उनको वही वस्तु बार बार परोसने लगीं ॥४८॥

पश्चात् , गाढ़ा दूध, शिखरन, घैया, रसाला, श्रेष्ठ साडव, गाढ़ा दही, अचार-मुरब्बा, और उत्तम अमरस—इनको व्रज-राजरानी श्रीयशोदा स्वयं परोसने लगीं ॥४९॥

सर्व्वं भोजयितुं समुत्सुक-मनोवागूहक् प्रकाशीकृते—
गूढैर्मातृतते स्फुटैः पितृतते: स्नेहद्रवस्तेरसः ।
बाष्पक्लिन्नतनोस्तदाग्रहशतैः कृष्णादयः प्रेरिता:
संतृप्ता अपि ते मुहुर्बुभुजिरे नान्तं मुदां चाययुः ॥५०॥
द्वयं व्यस्तमभूत् प्रातराशात् सायन्तनाशने ।
गाम्भीर्यं नर्म्मणि बटोर्गूढता मातुराग्रहे ॥५१॥
अस्वाच्छन्द्यं यदपि लपितान्योन्यहास-क्रियादौ
कृष्णादीनामभवदशने लालने चापि मातुः ।

---

श्रीनन्दराय आदि गोपों के समीप रहने के कारण श्री-यशोदा, रोहिणी, तुङ्गी आदि पत्नीगण लज्जावशतः जोर से नहीं बोल सकती हैं तथापि मन अत्यन्त उत्सुक हो उठता है, नेत्र-जल से शरीर भीग जाता है और वे अपने मन, वचन और नेत्र द्वारा श्रीकृष्ण आदि सब बालकों को परोसा हुआ सब कुछ भोजन करने के लिए शत शत बार आग्रह करती हैं। पितृ-गण के भी चित्त स्नेह से द्रवीभूत हो जाते हैं और वे स्पष्ट रूप से कह कह के बिशेष आग्रह करते हैं। तब तो श्रीकृष्णादि बालकगण, परितृप्त हो जाने पर भी, बार बार भोजन करने लगते हैं और अपार आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥५०॥

प्रातःकाल के भोजन से सायंकाल के भोजन में दो बातें बिपरीत हुईं एक तो मधुमंगल के परिहास में गम्भीरता और दूसरी माता के आग्रह मे गूढ़ता। कारण कि नन्दराय आदि बड़े गोपों के निकट परिहास और आग्रह अशोभनीय होने से गम्भीर व शान्त रूप से हीं हुई, जब कि प्रातःकाल दोनों बाते इच्छानुसार हो सकीं थी ॥५१॥

यद्यपि श्रीकृष्णादि बालकों के भोजन के समय उनके परस्पर के

प्रातर्भुक्तेस्तदपि शतधा सग्धितस्तातमुख्यै—
स्तेषां सौख्यं तदवकलनात् कोटिधासीच्च तस्याः ॥५२॥
वक्त्रेन्दोः स्मित-सम्पदा व्रजविधोस्तद्वाक्सुधाविन्दुभि—
स्तत्सौरभ्य-विमिश्र-धूप-विसरैस्तच्चाल-वृन्तानिलैः ।
तच्छ्रीसग्ध्यमृताभिषिक्त-मधुरैर्भोज्यैश्च संलेभिरे
ते पञ्चेन्द्रिय-तृप्तिजामुलितमां संभोजनीयां मुदम ॥५३॥
भुक्त्वा पीत्वाचम्य पल्यङ्किकालौ विश्रान्तास्ते सेविता दास-सङ्घै ।
सताम्बूलैर्वीजनाद्यैः पिता स्वै-र्वर्गैर्वेद्यां सूनुरट्टालिकायाम् ॥५४॥

---

वाक्य, हास्य व क्रियादिकों में तथा माता के लाड़-प्यार में भी स्वच्छन्दता नहीं थी, तथापि प्रातःकालीन भोजन से संध्या-कालीन भोजन पितृजनों के साथ होने से श्रीकृष्णादि बालकों को सुख कोटि गुना अधिक ही हुआ तथा बड़े-बूढ़े गोपों के साथ बालकों का एकत्र भोजन देखकर श्रीयशोदादि माताओं को भी प्रातःकाल से अधिक आनन्द संध्याकाल में ही हुआ ॥५२॥

इस भोजन-वेला में माता-पिताओं की पाँचो इन्द्रियों को अतिशय तृप्तिकर आनन्द प्राप्त हुआ नेत्रों को श्रीकृष्ण के मुख-चन्द्र का मधुर स्मित मिला, कर्णों को श्रीकृष्ण के वचनरूप सुधाकण मिले, नासिकाओं को उनके अंग-सौरभ से विमिश्रित धूप की सुगन्धि मली, त्वचा को उनके अंग-स्पर्श से संयुक्त ताल-पंखे की वायु मिली, तथा बालकवृन्द के सहभोज रूपी सुधा से सिंचित मधुर भोज्य वस्तुएँ रसना को मिलीं । इस प्रकार उनकी पञ्चेन्द्रियाँ परमानन्द को प्राप्त हुईं ॥५३॥

तब उपनन्द आदि गोपों ने भोजन-पान समाप्त करके आच-मन किया और पलंगों पर विश्राम करने लगे तथा सेवकगण ताम्बूल व व्यजनादि के द्वारा उनकी सेवा करने लगे । पिता

सर्व्वं भोजयितुं समुत्सुक-मनोवागदृक् प्रकाशीकृतै—
र्गूढैर्मातृतते स्फुटैः पितृततेः स्नेहद्रवच्चेतसः ।
बाष्पाक्लिन्नतनोस्तदाग्रहशतैः कृष्णादयः प्रेरिताः
संतृप्ता अपि ते मुहुर्बुभुजिरे नान्तं मुदां चाययुः ॥५०॥
द्वयं व्यस्तमभूत् प्रातराशात् सायन्तनाशने ।
गाम्भीर्य्यं नर्म्मणि बटोर्गूढता मातुराग्रहे ॥५१॥
अस्वाच्छन्द्यं यदपि लपितान्योन्यहास-क्रियादौ
कृष्णादीनामभवदशने लालने चापि मातुः ।

---

श्रीनन्दराय आदि गोपों के समीप रहने के कारण श्री-यशोदा, रोहिणी, इन्नी आदि पत्नीगण लज्जावशतः जोर से नहीं बोल सकती हैं तथापि मन अत्यन्त उत्सुक हो उठता है, नेत्र-जल से शरीर भीग जाता है और वे अपने मन, वचन और नेत्र द्वारा श्रीकृष्ण आदि सब बालकों को परोसा हुआ सब कुछ भोजन करने के लिए शत शत बार आग्रह करती हैं। पितृ-गण के भी चित्त स्नेह से द्रवीभूत हो जाते हैं और वे स्पष्ट रूप से कह कह के विशेष आग्रह करते हैं। तब तो श्रीकृष्णादि बालकगण, परितृप्त हो जाने पर भी, बार बार भोजन करने लगते हैं और अपार आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥५०॥

प्रातःकाल के भोजन से सायंकाल के भोजन में दो बातें विपरीत हुईं एक तो मधुमंगल के परिहास में गम्भीरता और दूसरी माता के आग्रह में गूढ़ता। कारण कि नन्दराय आदि बड़े गोपों के निकट परिहास और आग्रह अशोभनीय होने से गम्भीर व शान्त रूप से ही हुई, जब कि प्रातःकाल दोनों बातें इच्छानुसार हो सकी थी ॥५१॥

यद्यपि श्रीकृष्णादि बालकों के भोजन के समय उनके परस्पर के

प्रातर्भुक्तेस्तदपि शतधा सन्धितस्तातमुख्यै—
स्तेषां सौख्यं तदवकलनात् कोटिधासीच्च तस्याः ॥५२॥
वक्त्रेन्दोः स्मित-सम्पदा व्रजविधोस्तद्वाक्सुधाविन्दुभि—
स्तत्सौरभ्य-विमिश्र-धूप-विसरैस्तत्ताल-वृन्तानिलैः।
तच्छ्रीसख्यमृताभिषिक्त—मधुरैर्भोज्यैश्च संलेभिरे
ते पञ्चेन्द्रिय-तृप्तिजामतितमां संभोजनीयां मुदम् ॥५३॥
भुक्त्वा पीत्वाचम्य पल्यङ्किकालौ विश्रान्तास्ते सेविता दास-सङ्घैः
सत्ताम्बूलैर्वीजनाद्यैः पिता स्वै-र्वर्गैर्वेद्यां सूनुरट्टालिकायाम् ॥५४॥

---

वाक्य, हास्य व क्रियादिकों में तथा माता के लाड़—प्यार में भी स्वच्छन्दता नहीं थी, तथापि प्रातःकालीन भोजन से संध्या—कालीन भोजन पितृजनों के साथ होने से श्रीकृष्णादि बालकों को सुख कोटि गुना अधिक ही हुआ तथा बड़े-बूढ़े गोपों के साथ बालकों का एकत्र भोजन देखकर श्रीयशोदादि माताओं को भी प्रातःकाल से अधिक आनन्द संध्याकाल में ही हुआ ॥५२॥

इस भोजन—वेला में माता—पिताओं की पाँचो इन्द्रियों को अतिशय तृप्तिकर आनन्द प्राप्त हुआ नेत्रों को श्रीकृष्ण के मुख—चन्द्र का मधुर स्मित मिला, कर्णों को श्रीकृष्ण के वचनरूप सुधाकण मिले, नासिकाओं को उनके अंग-सौरभ से विमिश्रित धूप की सुगन्धि मली, त्वचा को उनके अंग—स्पर्श से संयुक्त ताल—पंखे की वायु मिली, तथा बालकवृन्द के सहभोज रूपी सुधा से सिंचित मधुर भोज्य वस्तुएँ रसना को मिलीं। इस प्रकार उनकी पञ्चेन्द्रियाँ परमानन्द को प्राप्त हुईं ॥५३॥

तब उपनन्द आदि गोपों ने भोजन-पान समाप्त करके आचमन किया और पलंगों पर विश्राम करने लगे तथा सेवकगण ताम्बूल व व्यजनादि के द्वारा उनकी सेवा करने लगे। पिता

अट्टालोदय-शैलतः प्रसृमरां कृष्णाननेन्दु-द्युति-
ज्योत्स्नां सालिचयेश्वरा स्वबड़भीजालाध्व-दृत्तानना ।
पायं पायमपाय-शून्यमपुषच्छ्रादक्चकोर्यौ निजे
सर्व्वत्रैव हि सर्व्वदा फलवती सद्भाग्यभाजां स्पृहा ॥५५॥
तस्या मुखाब्ज--सुषमा--मकरन्दधारा-
माराद्गवाक्षमुखतो मिलितां पिबन् सः ।
कृष्णः पुपोष तृषितौ निज--नेत्रभृङ्गा-
वुत्कण्ठतैव महतां हि फलाप्ति-हेतुः ॥५६॥
अथ व्रजेशा तुलसीं सहालिकां कृताग्रहा भोजयितुं धनिष्ठया ।
अभाणि सेयं प्रथमं न राधिकां विनापि भोज्यं न जलं पिबत्यपि ॥५७

---

नन्द भी आत्मीय जनों के साथ वेदिका पर और श्रीकृष्ण जाकर अट्टालिका पर विश्राम करने लगे-दासगण सुगन्धि, ताम्बूल व व्यजनादि के द्वारा उनकी सेवा करने लगे ॥५४॥

और व्रजेश्वरी यशोदा ने सखियों के सहित, अपने नेत्रों को गवाक्ष ( खिड़की ) के द्वार पर लगा दिये जहाँ से वे अट्टालिका रूपी उदयाचल से छिटकती हुई श्रीकृष्णमुखचन्द्र की कान्तिरूपा मधुर ज्योत्स्ना का निर्विघ्न पान पुनः पुनः करती हुई अपनी दृष्टिरूपिणी दो चकोरियों को पुष्ट करने लगी ! सच है, भाग्य-शाली जनों की अभिलाषाएँ सर्वकाल में, सर्वस्थान में फली-भूत होती हैं ॥५५॥

उधर श्रीकृष्ण भी दूर से गवाक्ष द्वार में से आती हुई श्री-राधा की मुखशोभा रूपिणी मकरन्द-धारा का पान करते हुए तृष्णातुर अपने दो नयन-भ्रमरों को पुष्ट करने लगे कारण कि महत् पुरुषों की उत्कण्ठा ही फल-प्राप्ति में हुआ करती है ॥५६॥

तदनन्तर श्रीयशोदा ने कस्तूरी नाम की सखी के साथ तुलसी

सा श्रुत्वा स्नेहरीतिं तां प्रीताहान्नं सतेमनम् ।
ससखीवृन्दराधार्थमाभ्यां प्रस्थापय द्रुतम् ॥५८॥
ततो धनिष्ठा हरिभुक्तशेषं सतेमनान्नं निभृतं विधाय ।
ददौ तुलस्यै तत-सम्पुटेऽन्यद्बलाम्बया दत्तमपि स्फुटं सा ॥५९॥
व्रजेशा भोजयित्वादौ दासीर्दासान् सगोपकान् ।
सस्नुषाभिः सपुत्रीभिर्यातृभिः सग्धमाचरत् ॥६०॥
अन्नमादाय यातायां तुलस्यां सुबलाय सा ।
धनिष्ठाख्यत् केलिकुञ्जं ददौ च वीटिका रहः ॥६१॥

---

को भोजन कराने के लिए धनिष्ठा से आग्रह किया तो उसने कहा कि यह तुलसी तो श्रीराधा के बिना भोजन तो क्या जल तक भी नहीं लेती है ॥५७॥

तुलसी ऐसी स्नेहवती है सुनकर श्रीयशोदा प्रसन्न हो कर बोलीं कि धनिष्ठे ! तुम कस्तूरी व तुलसी के द्वारा श्रीराधा और अन्य - सखियों के लिए व्यंजन सहित अन्न ( भात ) भेज दो ॥५८॥

तब धनिष्ठा ने श्रीकृष्ण का अधरामृत तथा बलदेव-जननी रोहिणी के दिये हुए अन्न व व्यंजन को एक चौड़ी-सी पिटारी में रख कर तुलसी के हाथ सौंपा ॥५९॥

अब श्रीयशोदा ने पहले दासी, दास और सब गोपों को भोजन कराया और फिर पुत्रबधुओं, कन्याओं एवं देवरानी-जेठानियों के समेत भोजन करने लगीं ॥६०॥

उधर तुलसी जब अन्न-सामग्री लेकर चली गयी तो धनिष्ठा ने एकान्त में सुबल को केलि-कुंज का संकेत बताया और पान-बीड़ा भी दिया ॥६१॥

अथागतासौ तुलसी तदन्नं सख्यै समस्तं समदर्शयत् सा ।
तद्गन्धवर्णानुभवेन चादौ नासा-दृशोस्तृप्तिरभूदमूषाम् ॥६२॥
तद्रूपमञ्जरी नीत्वा तुलस्या भोजनालयम् ।
ससखीवृन्द-राधायै पृथक् पात्रेष्वकल्पयत् ॥६३॥
अथाहूयाह जटिला विशाखां मत्सुतो गतः ।
गोशालां शयितुं भुक्त्वा भोक्तुमाह्वय मे स्नुषाम् ॥६४॥
साह सास्ते गृहे सुप्ता श्रान्तारण्य-परिक्रमात् ।
तत्रैवात्स्यति देह्यन्नं सा ददेऽन्नं सतेमनम् ॥६५॥
सापि हृष्टा तदानीय चाधाय भोजनालये ।
श्रीराधामेत्य तस्यै तद्वार्त्तामावेदयन्मुदा ॥६६॥

---

तुलसी ने आकर उस अन्न-व्यंजन का श्रीराधिका को दर्शन कराया। उस अन्न की सुगन्धि और वर्ण की सुन्दरता से पहले ता उनकी नासिका और नयन तृप्त हो गये ॥६२॥

रूपमंजरी ने तुलसी से वह अन्न लेकर श्रीराधा और उनकी सखियों के लिए उसे पृथक् पृथक् पात्र में रक्खा ॥६३॥

इतने ही में जटिला ने बिशाखा को बुलाकर कहा कि मेरा पुत्र अभिमन्यु भोजन करके शयन करने के लिए गोशाला चला गया है। अब तुम मेरी पुत्रबधू श्रीराधा को भोजन करने के लिए बुलाओ ॥६४॥

बिशाखा ने कहा कि आप की पुत्रबधू बन-भ्रमण के श्रम के कारण गृह में ही शयन कर रही है, वे वहीं भोजन करेंगी, सो मुझे अन्न दे दो। इस पर जटिला ने बिशाखा को अन्न-व्यंजन दे दिये ॥६५॥

बिशाखा ने भी उस अन्न-व्यंजन को ले लिया और प्रसन्न होती हुई उसे भोजनालय में रखकर श्रीराधा के समीप आ

ततः समेत्योपविवेश भोक्तुं भृङ्गार-पीठालि-विराजि-वेद्याम् ।
सहालि-पालिः प्रियभुक्त-शेषं राधा मरालीव सुधां समुत्का ॥६७॥
अमव्ये ललिता सव्ये विशाखास्या उपाविशत् ।
पुरतः पार्श्वतश्चान्या यथास्थानं सखीततिः ॥६८॥
ताभ्यः परिविवेशान्नं तुलस्या रूपमञ्जरी ।
स्नेहेन मोहिनी यद्वद् देवताभ्योऽमृतं क्रमात् ॥६९॥
प्रणयिजन-विसृष्टं श्रीहरेर्भुक्तशिष्टं
तदधर-मधुमिष्टं तत्करेणाभिमृष्टम् ।
निज-निखिल-गणेष्टं राधया नेत्रदृष्टं
मितमपि च तदासीदक्षयं वण्टनेऽन्नम् ॥७०॥

---

यह वार्ता सहर्ष निवेदन कर दी ॥६६॥

तब श्रीराधा ने भोजन के लिए आगमन किया और जैसे हंसिनी सुधापान के लिए उत्सुक होती है वैसे ही प्रियतम के अधरामृत भोजन करने के लिए उत्सुक होकर वेदिका पर सखियों सहित आ आसीना हुई । वह वेदिका जलपात्र और पीढ़ाओं की पंक्ति से सुशोभित थी ॥६७॥

श्रीराधा के दक्षिण में ललिता, बाँये विशाखा तथा सन्मुख व पार्श्व में यथास्थान पर अन्यान्य सखियाँ सब बैठ गयीं ॥६८॥

पूर्वकाल में समुद्र-मन्थन के पश्चात् श्रीकृष्ण ने जैसे मोहिनी रूपधारण कर देवताओं को अमृत परोसा था, वैसे ही रूपमंजरी तुलसी के साथ सखियों को यथाक्रम से वही सुधा-विनिन्दि अन्न परोसने लगीं ॥६९॥

वह अन्न अत्यल्प होने पर भी परोसते समय अक्षय हो उठा । क्यों न हो ? जो वस्तु प्रेमी जनों-की दी हुई हो, श्री-कृष्ण की पायी हुई हो, उनके अधरामृत से मीठी बनी हुई हो,

रमण—कवलशिष्टं सन्मृणालं मरालय:
किशलय-कुलमेण्य: श्रीमरन्दं भ्रमर्य्य: ।
अमृतमिव चकोर्य्यश्चैन्दवं राधिकाद्या:
मुमुदुरधिकमन्नं प्रास्य कृष्णावशिष्टम् ॥७१॥
आचम्यास्वादयन्त्यस्ता कृष्ण-ताम्बूल-चर्व्वितम् ।
दासीभि: सेविताम्तृप्ता पल्यङ्कालौ विशश्रमु: ।७२॥
तुलसी-रूपमञ्जर्य्यौ तराच्छेषान्न तेमनम् ।
वृन्दायै मालती-द्वारा प्रेषयामासतुर्मुदा ॥७३॥

---

उनके हस्तकमल से मीठी हुई हो, अपने सबों की मनभायी हो तथा श्रीराधा के नेत्रों की सुदृष्टि जिस पर पड़ी हुई हो, वह अपरिमित हो जाय तो आश्चर्य ही क्या ॥७०॥

हँसनी जैसे हँसों के खाये हुए मृणाल को खाती हैं, हरिणियाँ जैसे किशलय का भक्षण करती हैं, भ्रमरीवृन्द जैसे मकरन्द का पान करती हैं और चकोरियाँ जैसे सुधाकर का सुधापान करती हैं, उसी प्रकार श्रीराधिका अपने रमण श्रीकृष्ण के अधरामृत—अन्न का कुछ अधिक भोजन करके परमानन्द को प्राप्त हुईं ॥७१॥

श्रीराधा आदि सखियों ने भोजन समाप्त करके श्रीकृष्ण के चर्बित ताम्बूल का आस्वादन किया और परम तृप्ति को लाभ करके अपने अपने पलंग पर विश्राम करने लगीं—दासियाँ उनकी सेवा करने लगीं ॥७२॥

इधर तुलसी व रूपमंजरी ने जो कुछ भुक्तावशेष अन्न व व्यंजन था उसे मालती द्वारा आनन्दपूर्वक वृन्दादेवी के समीप भेज दिया ॥७३॥

ततस्ते भोजयित्वान्या वयस्या दासिका अपि ।
गणैः सह संहृष्टैः स्वेशा-शेषान्नमादतुः ॥७४॥
तत्रेष्टव्यञ्जनादीनामन्योन्य-परिवेशने ।
भोजनादौ तयोरासीद्व्यतिदान-कलिः क्षणम ॥७५॥
भुक्त्वाचम्य तदायाते राधायाश्चरणान्तिकम ।
ताम्बूल-चर्वितं तस्या अश्नन्त्यौ तामसेवताम् ॥७६॥
हृदमृतरुचिरत्नद्राविणी हर्षसिन्धुं
नयन--कुवलयालिं चालमुत्फुल्लयन्ती ।
व्रजबसति जनानां साधु सायन्तनीया
जयति विशद-लीला-कौमुदी गोकुलेन्दोः ॥७७॥

---

फिर तुलसी व रूपमंजरी, अन्यान्य समवयस्काओं और दासियों को भोजन करा कर, अपने गण के साथ प्रफुल्लित चित्त से अपनी ईश्वरी श्रीराधा के अधरामृत–अन्न व व्यंजन को पाने लगीं ॥७४॥

उस समय अपनी अपनी प्रिय वस्तु को वे एक दूसरी को परोसने लगीं-इस प्रकार परस्पर लेने-देने के कारण भोजन के आरम्भ में कुछ क्षण के लिए एक प्रकार का कलह-सा मच गया ॥७५॥

भोजन के अन्त में आचमन करके तुलसी व रूपमंजरी श्रीराधा के समीप गयीं और उनका चर्वित ताम्बूल भक्षण करती हुईं श्रीराधा की सेवा करने लगीं ॥७६॥

श्रीगोकुलचन्द्र की सायंकाल को प्रकाशित होनेवाली यह उज्ज्वल–लीला–रूपा कौमुदी सदा जययुक्त होवे। यह लीला–कोमुदी व्रजबासियों के हृदय रूपी चन्द्रकान्तमणि को द्रवीभूत करने बाली है तथा हर्षसिन्धु एवं नेत्र रूप नीलोत्पलों को विकसित करने बाली है ॥७७॥

श्रीचैतन्य-पदारविन्दमधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सायंकेलिमयोऽत्र विंशतितमः सर्गोऽगमत् पूर्णताम् ॥२०॥

## :०:<sup></sup>× अथ एकविंशतिः सर्गः ×:०:

राधां सालीगणान्तामसित-सित-निशायोग्यवेशां प्रदोषे
दूत्या बृन्दोपदेशादभिसृत-यमुनातीर-कल्पाग-कुञ्जाम्।

---

इस प्रकार श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य में सायंलीलामय यह बीसवाँ सर्ग सम्पूर्ण हुआ। यह गोविन्दलीलामृत श्रीकृष्ण-चैतन्यमहाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूपगोस्वामी की सेवा का फल है, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीमज्जीवगोस्वामी के सत्संग से उदित हुआ है तथा श्रीरघुनाथ-भट्ट गोस्वामी के बर के प्रभाव से आविर्भूत हुआ है ॥२०॥

अब ग्रन्थकार प्रदोषकाल की लीला का आरम्भ करते हुए श्रीराधा-कृष्ण का स्मरण करते हैं। श्रीराधा (कभी) कृष्ण-पक्ष व (कभी) शुक्लपक्ष की रजनी के उपयुक्त कृष्णवर्ण व शुक्ल-वर्ण के बस्त्रों से बेश रचना करती हैं और फिर सखियों के सहित सायंकाल को बृन्दादेवी के प्रिय उपदेश के अनु-

कृष्णां गोपैः सभायां विहित-गुणि-कलालोकनं स्निग्धमात्रा
यत्नादानीय संशायितमथ निभृतं प्राप्त-कुञ्जं स्मरामि ॥१॥
अथाययौ हरेः पिता बहिः सभां व्रजेशिता
निजाग्रजानुजैर्वृतः सुमुत्समुद्र-संप्लुतः ।
सहाखिल-व्रजप्रजास्तथागमन् गुणिव्रजा
हरेर्विलोकनाशया समृद्धया सिताशयाः ॥२॥
श्रेणिमुख्य-लोक-विप्र-गोपवृन्द-सङ्गिनः
स्वस्व-विद्ययाऽघवैरि-तोषणातिरङ्गिणः ।

---

सार दूती के साथ यमुनातीरवर्ती कल्पवृक्षों से सुशोभित कुञ्ज को गमन करती हैं । श्रीकृष्ण भी गोपों के सहित सभा में गुणी-जनों के कला:-कौशल का अवलोकन करते हुए स्नेहमयी माँ यशोदा द्वारा सभा से आदरपूर्वक गृह को लिवाये जाकर शय्या पर शयन कराये जाते हैं । पश्चात् वे उठकर गुप्तरूप से संकेत-कुञ्ज को गमन करते हैं । ऐसे कुञ्जगमनकारी श्रीराधाकृष्ण का मैं स्मरण करता ( करती ) हूं ॥१॥

अनन्तर ( बीसवें सर्ग के ५४ वें श्लोक में वर्णित विश्राम के अनन्तर ) श्रीकृष्ण के पिता व्रजराज श्रीनन्द, ज्येष्ठ व कनिष्ठ भ्राताओं के सहित आनन्द सागर में निमग्न होते हुए बाहर सभा में पधारे तथा व्रजवासी प्रजावृन्द के सहित समस्त गुणी-जन भी श्रीकृष्ण के सुन्दर दर्शन की आशा से उत्कण्ठित होकर श्रीनन्दमहाराज के समीप आये ॥२॥

तब श्रेणीवर्ग ( तेली, तमोली आदि तेल-मलने, तिलक रचना करने वाले और पान सजाने वाले ) के लोगों के साथ ब्राह्मण तथा गोपों के साथ सूत ( कथावाचक ) मागध ( भाट ), नर्तक, गायक व बन्दी जन अघारि श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के

आययुः स्वगीतवाद्य--हास्यलास्य- नन्दिनः
सूतवंश-शंसि-नृत्य-गान-कर्तृ वन्दिनः ।।३।।
ते गोपराज्ञा मिलता यथायथं सगौरवं सप्रणयानुकम्पितम् ।
सम्मानितास्तेन मुदान्विता स्थिताः कृष्णेक्षणोत्कण्ठितनेत्रचेतस ।
शेते सुतः श्रमभराद्विहिताशनोऽसौ
लोकास्तदीक्षणतृषो बत किं विधेयम् ।
इत्थं विचिन्तयति गोपपतावकस्मात्
कृष्णः स्वयं सखिकुलैः सहितः समायात् ।।५।।
स्वान्ताम्बुधिं नेत्र-चकोरवृन्दं रोमौषधीश्च स्मित-कैरवालिम् ।
संफुल्लयन् घोषकृतालयानां सभोदयाद्राबुदितो हरीन्दुः ।।६।।

---

लिए गाते, बजाते, हँसते हँसते और नाचते हुए आनन्द मग्न होकर सभा में आ उपस्थित हुए ।।३।।

वे व्रजराज श्रीनन्द महाराज से आकर मिले और उन्होंने उनको यथायोग्य आदर ( बड़ों प्रति ) प्रेम ( समान प्रति ) व कृपा ( छोटों प्रति ) के द्वारा सम्मानित किया। वे भी सब बड़े आनन्दित हुए तथापि उनके नेत्र व चित्त श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए ही उत्कंठित बने रहे ।।४।।

"पुत्र श्रीकृष्ण तो बहुत अधिक आहार कर श्रम के भार से सो रहा है और इधर कृष्ण-दर्शन के लिए ये सब लोग उत्कं-ठित हो रहे हैं। हाय ! अब क्या करना चाहिये"-इस प्रकार श्रीनन्दराय चिन्ता कर ही रहे थे कि अकस्मात श्रीकृष्ण आप ही सखाओं के सहित वहाँ आ पहुँचे ।।५।।

( मानो तो ) श्रीकृष्ण रूपी चन्द्रमा घोषनिवासी आभीरों के हृदय रूप समुद्र, चकोर रूपी नयनों, रोमरूपी औषधियों

विप्रान् गुरून् स्वाञ्जलिबन्ध—वन्दनैः
समान्सखींश्च स्मितमिश्रितेक्षणैः ।
पाल्यांस्तथान्यान् सदयावलोकनैः
सम्भाष्य तान् सोऽपि विवेश सङ्गिभिः ॥७॥
वेदध्वानैर्जयजय-रवैः पूर्ववंश्यानुवादै-
स्तत्ताल्लीला-विरुद्-पठनैर्वादिसैर्भूरि-वाद्यैः ।
हर्षोद्घोषैः स्तुति-कलकलैः सङ्कुलानां जनानां
घोषः कृष्णे व्यतनुततरां स्वस्य नाम्नो निरुक्तिम् ॥८॥
व्रजेन्द्र प्रेरितः क्षत्ता लोकानुत्कर-चालनैः ।
कोलाहलान्निवार्य्यैतान् यथास्थानं न्यवेशयत् ॥९॥

---

एवं हास्यरूपी कौमुदी को प्रफुल्लित करता हुआ सभारूपी उदयाचल पर उदित हुए। ६॥

श्रीकृष्ण ने सभा के समीप आते ही ब्राह्मणों व गुरुजनों को अंजलि बाँध कर प्रणाम किया तथा समान वयस वालों के प्रति मुस्कराते हुए और पालन के योग्य भृत्य आदि अन्यान्य जनों के प्रति करुणापूर्ण दृष्टि से निहारते और सम्भाषण करते हुए, सखाओं के साथ सभा में प्रवेश किया ॥७॥

सभामण्डप में समागत व्यक्तियों की वेदध्वनि, जय जय ध्वनि, पूर्व पूर्व वंशजों का नाम-कीर्तन, उन उन लीलाओं का बिरद्-पाठ, अनेकानेक वाद्य, सहर्ष उच्चध्वनि, एवं स्तुतियों की कलकल ध्वनि—इन सब ध्वनियों के कोलाहल द्वारा श्रीनन्दराय की 'घोष' बस्ती श्रीकृष्ण के समीप अपने नाम की सार्थकता सिद्ध कर रही थी। तात्पर्य 'घोष' शब्द का अर्थ १. कोलाहल-ध्वनि, और २. अहीरों की बस्ती। अतएव अहीरों की बस्ती में कोलाहल होने से उसका नाम सार्थक सिद्ध हो रहा था ॥८॥

तेषूपविष्टेषु नृपेङ्गितेन ते विचक्षणाः स्वस्व-कलाः पृथक् पृथक् ।
प्रदर्शयन्तः क्रमशः कलाविदः सलालसान् सभ्यजनानतोषयन् ॥
छालिक्यादि-नृत्यमेकेऽन्ये लास्यं ताण्डवं परे ।
नृसिंह-राम-चरित-रूपकाभिनये परे ॥११॥
विद्यां वंशनटीमन्ये सूत्रसञ्चारिकां परे
नानेन्द्रजालान्यपरे निपुणाः समदर्शयन् ॥१२॥
आवयामासुरितरे पुण्याः पौराणिकीः कथाः ।
गीतानि विविधान्येके केचित् वंशानुवर्णनम् ॥१३॥

---

अग्रवर्ती वेत्रधारी चोबदार ने ब्रजराज श्रीनन्द द्वारा आदिष्ट होने पर ( हुकम पाने पर ) हाथ ऊचा करके हिला हिला कर लोगों को कोलाहल करने से बन्द किया और सबों का अपने अपने स्थान पर बैठाया ॥६॥

श्रीनन्दमहाराज आदि सब गोपों के सभामण्डप में आसीन होने पर ( बैठ जाने पर ) वाद्य, गायन, नृत्यादि अनेक कलाओं के विलक्षण गुणीजन क्रमशः अपनी अपनी कला का पृथक् पृथक् रूप से प्रदर्शन करके (सुनने व देखने के लिए) लालायित सभासदों को संतुष्ट करने लगे ॥१०॥

कोई थाल पर खड़े होकर नृत्य करते, तो कोई लास्य ( स्त्री-नृत्य ) और कोई ताण्डव ( पुरुष-नृत्य ) दिखलाते । कोई नृसिंह तो कोई रामचन्द्र के चरित्र का अभिनय करते । कोई बांस के ऊपर नट-कला दिखलाते, कोई सूत से नाचने वाली कठपुतलियों का खेल करते, और कोई अनेक निपुण जन नाना प्रकार के इन्द्र-जाल का प्रदर्शन करते ॥११-१२॥

कोई पुण्य-पुराण-कथा कहते, कोई नानाविध गायन करते और कोई वंशावली वर्णन करते । कोई चतुर्विध श्रवण-सुखद

चतुर्व्विधानां विद्यानां भेदानन्ये श्रुति-प्रियान् ।
केचित् कृष्णस्य जन्मादि-लीलाढ्यां विरुदावलीम् ॥१४॥
तेभ्यो व्रजेशादि-सभासदो ददु-र्वासोधनालङ्करणान्यनेकधा ।
ते तानि कृष्णेक्षणपूर्णमानसा स्वीचक्रुराचारतया न तृष्णया ॥१५
कृष्णाननेन्दोः स्मितकौमुदीं भृशं निपीय सभ्याक्षिचकोरसन्ततिः ।
वमन्त्यपि स्वाश्रुमिषादतृप्तिभाक् पिबत्यहो प्रेमगतिः सुदुर्गमा ॥१६
तावद्व्रजेशा-प्रहितः स रक्तकः सभां समेत्याह नमन् व्रजेश्वरम् ।
व्रजावनीशोत्कमना व्रजेश्वरी दिदृक्षते श्रीयुत-भर्तृदारकम् ॥१७॥

---

वाद्य विद्या के भेद दर्शाते ( १. तत=वीणावाद्य; २. आनद्ध=मृदंगादि वाद्य ३. शुषिर=वंशी, मुहचंग आदि वाद्य, तथा ४. घन=झांझ, मंजिरा आदि वाद्य) और कोई श्रीकृष्ण के जन्मादि लीलाचरितों का गुणगान करने लगे ॥१३-१४॥

तब नन्दराय आदि सभासदों ने प्रसन्न होकर उन उन गायक, वादक व नर्तकों को बहुत-सा वस्त्र, धन और भूषण प्रदान किया किन्तु उन लोगों ने आचार-परम्परा के अनुसार ही वे सब वस्तुएँ स्वीकार की, तृष्णा-लोभ के वशीभूत होकर नहीं कारण कि श्रीकृष्ण के दर्शन से ही वे पूर्णमानस (पूर्णकाम) हो गये थे ॥१५॥

उस समय सभासदों के नेत्र रूपी चकोर श्रेणी श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र पर से छिटकती हुई स्मित रूप ज्योत्स्ना को अतिशय पान कर करके अश्रु-जल के रूप में उसे वमन कर रही थी। तथापि अहो उन्हें तृप्ति नहीं हो रही थी कारण प्रेम की गति अत्यन्त दुर्गम होती है। तात्पर्य उनके अंग अश्रु-पुलकावली से व्याप्त हो रहे थे और उन्हें श्रीकृष्ण के मुख-दर्शन से तृप्ति नहीं हो रही थी ॥१६॥

ततो व्रजेन्द्रेण कृताग्रहोत्करः सभ्याश्रिजालोक-वियोग-कातरान्।
सिञ्चन् सहार्द्र स्मित-वीक्षणामृतैः कृष्णः प्रपेदे निजमातृमन्दिरम्
तावागतौ समधुमङ्गल—मित्रवृन्दौ
माता सुतावथ निवेश्य सुमृष्ट--वेद्याम्।
दुग्धं घनं सशशि--शर्करमीषदुष्णं
स्तन्यास्रु--सिक्त--सिचयालमपाययत्सौ ॥१६॥
ततो गते मित्रगणे निजालयं सरोहिणीका जननी सुवत्सला।
आनीय शय्या-निलये निजे निजे बटुं बलं कृष्णमशीशयत् पृथक्॥२

---

इतने ही में श्रीयशोदा का भेजा हुआ रक्तक नामक श्रीकृष्ण का एक दास सभा में आकर व्रजराज श्रीनन्द को नमस्कार करके बोला कि हे व्रजराज! व्रजेश्वरी अतिशय उत्कण्ठित बनी हुई श्रीयुत कुमार श्रीकृष्ण के दर्शन की अभिलाषा कर रही हैं॥१७

तब व्रजराज के अत्यन्त आग्रह करने पर श्रीकृष्ण अपने वियोग में व्याकुल सभासदों को अतिशय करुणापूर्ण मधुर स्मित व दृष्टि सुधा से सींचन करते हुए अपनी जननी के भवन के लिए पधारे ॥१८॥

जब राम-कृष्ण मधुमंगल आदि बालकों के साथ माता के समीप आ पहुँचे तो माता ने दोनों पुत्रों को सुमार्जित वेदिका के ऊपर बिठा कर कपूर व शक्कर मिश्रित गाढ़ा औटाया हुआ किंचित् उष्ण दूध पान कराया। उस समय जननी के स्तनों से भी दूध की धारा बहती हुई उनके बसनांचल को भिगोने लगी॥१९

पश्चात् मित्र-वृन्द अपने अपने घर को चले गये और वात्सल्यमयी यशोदा ने रोहिणी के साथ दोनों पुत्र और मधु-मंगल को अपने भवन में अपनी अपनी शय्या में पृथक् पृथक् शयन करा दिया॥२०॥

शाययित्वाऽथ तांस्तत्तद्दासान् संयुज्य सेवने ।
तेषां स्वच्छन्द-निद्रायै चलिता सा निजालयम् ॥२१॥
यान्ती दासानवददथ मा स्नेह-विक्लिन्नचित्ता
वत्सा वत्सो वन-विहरणैः श्रान्तिभाङ्मे यथासौ ।
आप्रायातान् विविदिषु-जनान् वारयद्भिर्बहिस्थै-
राप्रत्युषं स्वपिति निभृतं तद्विधेयं भवद्भिः ॥२२॥
श्रीराधिकाप्यशकलेन्दु--कराेज्ज्वलायां
रात्राविहात्म--रमणाप्ति--समुत्सुकासौ ।
सङ्केत--कुञ्जगमन--त्वरिता सखीभिः
शुक्लाभिसार--रचनां चतुरा चकार ॥२३॥
हंसांशुका सशशि-चन्दन-लिप्त-काया
मुक्ताविभूषण--चिता धृतमल्लिकास्रक् ।
यत्नेन मूकित--सुनूपुर--किङ्किणीका
राधा ययौ स्वसदृशालियुता निकुञ्जम् ॥२४॥

---

शयन करा कर उनके निर्बाध सुख-निद्रा के निमित्त सेवा में कुशल उन उन दासों को नियुक्त करके माँ यशोदा अपने भवन को चली गयीं ॥२१॥

जाते समय उन्होंने स्नेह में विह्वल होकर भृत्यों से कहा कि बेटाओ ! मेरा पुत्र वन-भ्रमण से अत्यन्त थक गया है अतएव उषाकाल तक जैसे सुख से सो सके वैसे ही यत्न करना, और कोई कुछ कहने आवें तो बाहर ही उनको रोक देना ॥२२॥

इधर चतुर श्रीराधा ने पूर्ण-चन्द्र की किरणमालाओं से उज्ज्वल रजनी में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक होकर सखियों के साथ शीघ्रतापूर्वक ज्योत्स्ना बेला के उपयुक्त शुक्ल वेश धारण किया ॥२३॥

कदाचित्तामस्यामसितवसना सा मृगमदै—
र्विलिप्ताङ्गी कालागुरु--तिलक-चित्रोत्पलकुलैः।
कृतोत्तंसा नानासितमणि-कृतालङ्कृति-युता
निराबाधा राधा प्रियमभिमरत्यालिसहिता ॥२५॥
वृक्षच्छाये पथि पथि भिया वञ्चयन्ती स्वगम्यं
स्थानं वंशीवट-विटपिनः शाखया लक्षयन्ती।
न्यस्य स्वीये हृदय-कमले सोहसाना निगूढं
यन्त्राकारे व्रजवन--भुवा प्राप कृष्ण-समीपम् ॥२६॥

---

वह शुक्ल वेश ऐसा था:--श्रीराधा ने हंस के समान शुभ्र तो वस्त्र धारण किये, कपूर व चन्दन का अंगों में लेपन किया, मुक्ताभूषणों से अंग सजाये, तथा मल्लिका की मालाएँ धारण की। फिर बड़े यत्न से नूपुर और किंकिणी (कौंधनी) को बजने से बन्द किया और तब समानवेश-धारिणी सखियों के सहित कुञ्ज को गमन किया ॥२४॥

अन्य किसी दिन रात्रि अँधेरी थी अतएव कृष्णवर्ण के वस्त्र धारण किये, कस्तूरी का लेप अंगों पर किया, कृष्णवर्ण के तिलक-चित्र बनाये, नीलोत्पल के कर्णभूषण बनाये तथा नाना प्रकार के कृष्णवर्ण-मणि निर्मित अलंकार धारण किये। और तब श्रीराधा ने सखियों के साथ निर्बाध रूप से प्रियतम के समीप अभिसार किया ॥२५॥

वे वृक्षों की घनी छाया से आवृत मार्ग में से होकर जाती है इस भय से कि किसी को अपने गन्तव्य स्थान का ज्ञान न होने पावे। तथापि वंशीवट नामक विशाल वृक्ष की शाखा द्वारा संकेत स्थल को लक्ष्य में रख कर चल रही हैं। व्रज-वन में स्थित उस स्थल को यन्त्र सदृश अपने हृदयकमल में स्थिर रूप से

जानुदघ्नजलं तीर्त्वा यमुना-निर्झरं मुदा ।
द्वीपायमानं सङ्केतीकृत--कृष्णातटं ययौ ॥८७॥
श्रीगोविन्दस्थलाख्यं तटमिदममलं कृष्ण-संयोगपीठं
वृन्दारण्योत्तमाङ्गं क्रमनतमभितः कूर्म्मपृष्ठस्थलाभम ।
कुञ्जश्रेणीदलाढ्यं मणिमयगृह-सत्कर्णिकं स्वर्णरम्भा-
श्रेणी-किञ्जल्कमेषा दशशतदल-राजीवतुल्यं ददर्श ॥८८॥

---

धारण करके श्रीराधा सखियों समेत यमुना को पहुँच गयीं । तात्पर्यः—व्रजभूमि की यह एक अद्भुत शक्ति है कि श्रीकृष्ण के परिकर वृन्द जब जहाँ जाने की इच्छा करते हैं, तब ही यह तुरत वहाँ पहुँचा देती है । जैसे लौहयान, वायु-यान, विमानादि यंत्र क्षण भर में दूर देश को पहुँचा देते हैं, वैसे ही श्रीराधा आदि सखियाँ अपने अत्यन्त वेगशाली हृदय-विमान-यंत्र पर आरूढ़ होकर क्षणभर में दूर यमुना के तट पर जा पहुँचीं ॥८६॥

जानु पर्यन्त जल वाली यमुना की एक धारा को पार करके द्वीप के समान संकेत-स्थल जो यमुना-तट है वहाँ वे जा उपस्थित हुईं ॥८७॥

यहाँ श्रीराधा ने सहस्रदलकमल के समान 'श्रीगोविन्दस्थल' नामक श्रवण नयन मनोहर तट के दर्शन किये । यहाँ श्रीराधा-कृष्ण का संयोग-सम्मिलन-होता है अतएव इसे 'योगपीठ' कहते हैं, वह श्रीवृन्दावन का शीर्षस्थानीय अर्थात् मस्तक स्वरूप है । यह चारों ओर क्रमशः कच्छप की पीठ की भाँति झुका हुआ है, ( सहस्रदल कमल के समान इसका संस्थान-रचना है, ) इस भूमि पर कुञ्ज-निकुञ्ज की जो श्रेणियाँ हैं वही मानो कमल के अनन्त दल हैं ( 'सहस्र' शब्द अनन्त वाची है ) मणिमय गृह समूह की कर्णिका ( कमल गट्टा ) के सदृश है, तथा स्वर्ण

बहन्त्या कृष्णयोदीच्यां पूर्व-पश्चिम-भागयोः ।
निर्येन्निर्झर-बाहुभ्यां क्रोडीकृतमिवाभितः ॥२६॥
शालैस्तालैस्तमालैश्चलदल-बकुलै-र्नारिकेलै रसालैः
कुद्दालैः सप्रियालैर्दधिफल-सरलैः श्रीफलोलूखलैश्च ।
उद्दालैः कन्दरालैः सलकुच-तिलकैर्जम्भलैः पीतशालैः
सप्लक्षैस्तूलैः पलाशैरबलु-गुडफलैर्गालवैर्ग्रन्थिलैश्च ॥३०॥
गोलीढैः कण्टकिफलैर्मधुष्ठीलैर्मधुलकैः ।
कृतमालैर्द्रु किलिमैः फलाढ्यद्वैर्हलिप्रियैः ॥३१॥
मञ्जुलैर्वञ्जुलैः कोलैर्वञ्जलैर्वञ्जुलैरपि ।
द्रुमोत्पलैः कर्पुरालैः कुलकैर्देववल्लभैः ॥३२॥

---

वर्ण कद्दली की श्रेणियाँ ही केशर के तुल्य हैं ॥२८॥

इस योगपीठ को उत्तरवाहिनी श्रीयमुना ने पूर्व व पश्चिम भाग में अपनी दो धारा रूप भुजाओं के अंक में मानो ले रक्खा है ॥२६॥

और इस तट के समस्त अंग लताओं से सुशोभित और वृक्षों से व्याप्त हैं। ( अब पाँच श्लोकों में वृक्षों का वर्णन करते है ) शाल, ताल, तमाल, अश्वत्थ, बकुल (मौलसिरी), नारियल, रसाल, आम, कोबिदार, प्रियाल, ( चिरौंजी ), दधिफल (कैंथ), सरल, श्रीफल, ( बेल, ) गुग्गुल, उद्दाल ( लिसौड़ा ), कन्दराल ( पहाड़ी पीलू ), बड़हर, तिलक ( तालमखाना ), जंबीरानीबू, पीतशाल, प्लक्ष ( पाकर ), तूल ( ब्रह्मदारु ), पलाश, अवलु ( ? ), पीलु, लोध, ग्रन्थिल ( कटाय ), गोलीढ ( लोध विशेष ), कंटकीफल ( कठहल ), महुआ, जलमहुआ, अमलतास, देवदारु, खिरनी, कदम्ब, मनोहर अशोक, बद ( बेर ), मौलसिरी, गजपिप्पली, स्थलपद्म, पहाड़ी पीलू, कुलक ( कुचिला ), देव–

कल्पद्रुमैर्वाञ्छित-दानकल्पै-रपारिजातैरपि पारिजातैः ।
मन्दार-वृक्षैरपि राङ्कमदारैः सन्तानकैः सम्मदतानकैश्च ॥३३॥
शश्वद्धरेश्चित्त-शरीर-चन्दनै र्यश्चन्दनैः श्रीहरिचन्दनैरपि ।
महावदान्यैरितरैश्च भूरुहैर्व्याप्तं लताराजि-विराजिताङ्गकैः ॥३४॥
पञ्चभिः कुलकम्

श्रीवासन्ती-सप्तला-स्वर्णयूथी-जाती-यूथी-मल्लिका-मुद्गराद्यैः ।
विष्णुक्रान्ता कृष्णाला भीरुबिम्बाकुञ्जास्फोताद्यैश्च वल्लीसमूहैः ॥
लवङ्गाशोक-कुन्दाम्र-लताभिश्चान्वितञ्च यत् ।
द्राक्षाभुजग-वल्लीनां वलजैश्च क्वचित् क्वचित् ॥३६॥ युग्मकम्

---

बल्लभ ( केसर ), अप्राकृत कल्पवृक्ष जो प्राणियों के तो क्या श्री-कृष्ण आदि के भी वाञ्छा पूर्त्तिकारी है, पारिजात वृक्ष जो अपारिजात हैं अर्थात् जो १. नित्य नवनवायमान हैं और २. जिनके निकट प्राप्त होते ही प्राणियों के काम-क्रोधादि, क्षुत्पि-पासादि समस्त शत्रुसमूहों का लोप हो जाता है, दारिद्रनाशक मन्दार वृक्ष, इष्टवस्तुप्रद सन्तानक, एवं सम्मदतानक ( सब के आनन्द प्रद ) ये पाँच प्रकार के कल्पवृक्ष, श्रीहरिचन्दन जो सर्वदुखहारी श्रीहरि के चित्त व शरीर को सदैव आह्लाददायक सुशीतल चन्दन के भी चन्दन हैं अधिक कहाँ तक वृक्षों को गिनावें—ऐसे ऐसे और भी अनेक महा उदार वृक्षसमूहों से वह योगपीठ सर्वत्र व्याप्त है ॥३०–३४॥

अब दो श्लोकों द्वारा लतावल्लियों का वर्णन करते हैं। श्री-वासन्तीलता ( माधवी ), सप्तला ( नवमल्लिका ) स्वर्णयूथी (सोन-जुही), जाति ( चमेली ) यूथी ( जूही ) मल्लिका, मुद्गर ( १. ), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) कृष्णाला (गुञ्जा), शतमूली, बिम्ब-फललता, अपामार्ग, आस्फोता ( जंगली बेला ) आदि लताओं

बल्लयः सर्वा यत्र ताः कल्पवल्लयो वृक्षाः सर्वे कल्पवृक्षा वकारैः। गोपीनाञ्चाभीष्ट-पूर्त्तौ समर्था जात्या या ये तादृशाः किन्तु तास्ते ॥
पुष्पवत्योऽप्यमालिन्याः संदृष्टरजसोऽप्यहो ।
सुकुमार्य्यः सप्रसवा अपि मुग्धा लता इह ॥३८॥
यत्रानिशं कृष्णसङ्गाद्गोप्यः श्यामलतां गताः ।
स्तब्धाः स्थावरतां प्राप्ताः सन्ति श्यामलताच्छलात् ॥३९॥

---

से जो स्थान व्याप्त है तथा कहीं कहीं लवंगलता, कुन्दलता, अशोकलता व आम्रलताओं से और कहीं कहीं द्राक्ष बल्ली व ताम्बूललताओं से आवृत है ॥३५-३६॥

उस स्थान पर जितने भी वृक्ष हैं वे कल्पवृक्ष हैं, और जितनी भी लताएं हैं, ये सब कल्पलता हैं अतएव बकार श्री-कृष्ण व व्रजांगनाओं के अभीष्ट पूर्णकरने में समर्थ हैं, तथापि जो वृक्ष और जो लता जिस जाति के हैं, वे उसी जाति के ही हैं अर्थात् अपनी अपनी जाति का ही फल देते हैं, अन्य जातियों के फलों को समर्थ होते हुए भी नहीं देते ॥३७॥

इस पीठ की लताएँ स्त्रीजाति की होने पर भी स्त्रियों से बिलक्षण भी हैं, यथाः—ये लताएँ पुष्पवती ( पुष्पसहित ) होती हुई भी अमालिनी अर्थात् अ-पुष्पवती हैं, ये भलीभाँति रजो-युक्त दिखायी देती हुई भी सुन्दर कोमल शाखा पत्र वाली कुमारी हैं, तथा फलवती प्रसवा होने पर भी मुग्धा-शृङ्गार रस से अजान हैं—पुष्प व फल का एक काल में उदय होना ही आश्चर्य का विषय हैं ॥३८॥

इस योगपीठ पर गोपीगण निरन्तर कृष्णसंग के कारण श्यामलता अर्थात् श्यामवर्ण को प्राप्त हो कर श्याम-लता के मिष से स्तब्ध होकर स्थावर रूप को प्राप्त होकर रहती हैं ॥३९॥

सहचर्यश्च दास्यश्च राधेशालोकमोदतः ।
स्तब्धाः कण्टकिता मूर्त्ति-भेदैर्गुल्मतया स्थिताः ॥४०॥ युग्मकम्
श्रीभूलीलाः सेवने नन्दसूनोर्लुब्धाःलब्धाः स्थास्नुतां भूरिपुण्यैः ।
जाती-धात्री-श्रीतुलस्यात्मनाद्धा कुर्व्वन्त्यस्तद्यत्र नित्यं वसन्ति ॥
ब्राह्मी हैमवती चात्र कृष्णालोकन-तृष्णया ।
सोमवल्ली-हरीतक्योश्छलेन स्थास्नुतां गते ॥४२॥
कृष्णाया नन्ददा भान्ति पद्मिन्योऽत्र जले स्थले ।
चरस्थिरतया तद्वज्जले राजीव-पालयः ॥४३॥

---

सहचरी व दासीबृन्द राधाकान्त श्रीकृष्ण अथवा श्रीराधा-कृष्ण के दर्शन-जनित आनन्द से स्थावर रूप लाभ कर पुलकिता जो होती हैं उससे वे कण्टकयुक्त गुल्मलता की भाँति मूर्त्तिभेद के कारण भिन्न भिन्न प्रकार से शोभा प्रकाशित करती हुई अवस्थान करती हैं ॥४०॥

इस स्थान पर श्री, भू व लीला शक्तियाँ भूरि भूरि पुण्य-प्रताप से क्रम से जाती, धात्री व तुलसी रूप में साक्षात् स्थावर रूप को लाभ कर नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की सेवा करती हुई निवास करती हैं ॥४१॥

तथा ब्रह्मपत्नी सावित्री व हिमालय पुत्री पार्वती श्रीकृष्ण-दर्शन की लालसा से यहाँ पर सोमलता व हरितकी के छल से स्थावर वृक्ष बनी हुई स्थित रहती हैं ॥४२॥

यहाँ जल में पद्मिनी ( कमलिनी ) और स्थल में भी पद्मिनी ( हस्तिनी ), जल में चंचल रूप से राजीव पालि ( तिमिनामक ) मत्स्यगण और स्थल में भी, स्थिर रूप से राजीवपालि ( कमल-श्रेणी) श्रीकृष्ण के लिए आनन्दप्रद होकर अथवा कृष्णा यमुना के लिए शोभाप्रद होकर प्रकाशित हो रहे हैं ॥४३॥

यत्र भाति स्थिरा फुल्ला रजनी दिवसेऽप्यहो ।
दिनेऽपि कृष्णपक्षेऽपि ज्योत्स्नी च स्थास्नुतां गता ॥४४॥
शरालिर्भात्यप्सु चरा शरालिश्च स्थिरा स्थले ।
चरस्थिरतया यत्र झषा भान्ति जले स्थले ॥४५॥
शाला भान्ति चरास्तोये यत्र शाला स्थिरा स्थले ।
रोहितोऽप्सु चरस्तीरे रोहितौ च चरस्थिरौ ॥४६॥
कमला भान्ति कुञ्जेषु यत्र कृष्णस्य तुष्टये ।
दीव्यन्ति कमलास्तीरे कमले कमलान्यपि ॥४७॥

---

इस स्थान पर रजनी ( एक लता ) दिन में भी प्रफुल्लित हो स्थिर भाव से शोभित रहती है तथा दिन में कृष्णपक्ष में भी ज्योत्स्नी ( एक लता ) स्थावर बन कर स्थित रहती है । यहाँ विरोधाभास अलंकार है अर्थात् विरोध न होते हुए भी विरोध का आभास होता है ॥४४॥

यहाँ जल में शरालि ( एक प्रकार पक्षी ) चंचल तथा स्थल के शरालि ( शर=मुंज; शरालि=मुंज की श्रेणी ) स्थिर रूप से शोभा देते हैं, उसी प्रकार जल में झष (मछली विशेष) चंचल रूप में तथा स्थल में झष ( गोरखभट ) स्थिर रूप से शोभा देते हैं ॥४५॥

यहाँ जल में चंचल शाल ( रोहितमत्स्य ) और स्थल में स्थिर शालवृक्ष, तथा जल में चंचल रोहित मत्स्य और स्थल में स्थिर रोहित वृक्ष शोभायमान हैं ॥४६॥

यहाँ श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए कुंज में कमला नायिका, तीर पर कमला मृगी तथा जल में कमलराशि प्रकाशित हो रहे हैं ॥४७॥

विरहितमपि रक्ताद्यैः प्राणिभिरभितः सदा यदिदम्।
रक्ताद्यै रक्ताद्यै रक्ताद्यैश्चान्वितं सततम् ॥४८॥
वियुतं कलिकारैर्यत् संयुतं कलिकारकैः।
भीमैः सत्त्वैर्विहीनञ्च स्थिरैर्भीमैः सदान्वितम् ॥४९॥
विहीनमपि खर्ज्जुरैररिष्टैश्च पलाशकैः।
खर्ज्जुरैरप्यरिष्टैश्च पलाशैश्चान्वितं सदा ॥५०॥
कनकाचितभूः कनकैः कनकैः कनकैः कनकैः कनकैश्च वृता।
विबभाविह सा क्रमुकैः क्रमुकैः क्रमुकैः क्रमुकैरपि या निचिता ॥५१

---

यह स्थान सर्वत्र सर्वदा रक्ताक्षी ( लाल आँख वाले क्रूर ) प्राणियों से रहित होने पर भी यहाँ तीन तीन रक्ताक्ष सदैव निवास करते हैं, रक्ताक्ष सारस, रक्ताक्ष पारावत् ( कबूतर ) व रक्ताक्ष चकोर। ( यहाँ श्लेष और विरोधाभास अलंकार है। एक शब्द का अनेक अर्थ में प्रयोग होना श्लेषालंकार तथा विरोध न होते हुए भी विरोध का आभास होना विरोधाभास अलंकार है। इन श्लोकों में आगे भी सर्वत्र ये ही अलंकार हैं। अलंकार द्वारा भाषा की शोभा-वृद्धि तथा अर्थ—चमत्कार उत्पादन किया जता है ) ॥४८॥

यह स्थल कलिकारों ( कलह करने वालों ) से रहित होने पर भी कलिकारों ( करंज–करौंदा के वृक्षों ) के सहित है तथा भीम अर्थात् भयानक सत्त्व अर्थात् प्राणियों से विहीन होने पर भी भीम अर्थात् बड़े बड़े स्थिर वृक्षों से सदैव संयुक्त हैं ॥४९॥

यह स्थान खजूर ( दुर्ज्जन ) अरिष्ट ( सुतिकागृह ) तथा पलाशकों ( राक्षसों ) से विहीन होने पर भी सदा खजूर के, अरीठा व पलाश के वृक्षों से संयुक्त है ॥५०॥

प्रियकैर्जङ्गमैर्युक्तं प्रियकैः प्रियकैः स्थिरैः ।
मयूरैर्जङ्गमैस्तद्वन्मयूरैः स्थावरैरपि ॥५२॥
बकुलैश्च नवकुलैस्तमालैर्नतमालकैः ।
सद्रुमा बिद्रुमा चेति वृताश्चर्य्यास्ति यन्मही ॥५३॥
कृष्णसारैः कृष्णसारैरुरुभीरुरुभिश्च यत् ।
शम्बरैः शम्बरैर्व्याप्तं रोहिषैरोहिषप्रियैः ॥५४॥

---

इस योगपीठ की कनकाचित भू अर्थात् स्वर्णमयी भूमि कनक ( चम्पा वृक्ष ), कनक ( किंशुक वृक्ष ), कनक (नागकेशर), कनक ( धतूरा ) एवं कनक वर्ण वृक्षों से आवृत है तथा क्रमुक ( लोध ), क्रमुक ( नागरमोथा ), क्रमुक ( सुपारी के वृक्ष ) एवं क्रमुक ( शहतूत ) के वृक्षों से व्याप्त है ॥५१॥

यह स्थान जंगम ( गमनशाली ) प्रियक ( मृग ) समूह से युक्त होने पर भी स्थावर प्रियक ( कदम्ब ) समूह से युक्त है तथा जंगम मयूरों से युक्त होने पर भी स्थिर मयूरों (वृक्ष विशेष) से परिवृत है ॥५२॥

यह भूमि आश्चर्यमयी है—यह न-बकुल बकुलों से, न-तमाल तमालों से एवं बि-द्रुम द्रुमों से युक्त होकर शोभित हो रही । अर्थात् नव-कुल, नवीन नवीन समूह बकुल वृक्ष के, नत-माल, नम्र श्रेणी तमाल के तथा विद्रुम-प्रवाल (मूँगा) के वृक्षों से संयुक्त होकर शोभा पा रही है ॥५३॥

यह योगपीठ कृष्णसार ( कृष्ण ही जिनके जीवन हैं ) कृष्ण-सारों ( मृगों ), उरु ( बड़े बड़े ) रुरु नामक मृगों, शम्बर ( सुखेच्छुक ) शम्बर नामक मृगों, तथा रोहिष प्रिय (तृणप्रिय) रोहिष प्रिय नामक मृगों के द्वारा व्याप्त है ॥५४॥

यत् कर्णहारि-हारीत-भरद्वाज-शुकोक्तिभिः ।
वत्स-गालव-शाण्डिल्यान्वितं मुनिसदो यथा ॥५५॥
श्रुति-ऋतु-वसुकोणैर्मण्डलाङ्गैश्च कैश्चि—
द्विविध-मणि-विचित्रैर्दिक्षु सोपान-युक्तैः ।
गलहृदुदर-नाभिश्रोणि-जानूरुदघ्नै—
र्वलित-ललित-मूला कुट्टिमैः सालबालैः ॥५६॥
नीलरक्तमणि-वद्ध-कुट्टिमाः केचिदिन्दुमणि-जालबालकाः ।
नीलरक्तमणि-जालबालकाः केऽपि चन्द्रमणिबद्धकुट्टिमाः ॥५७॥

---

मुनियों के आश्रम जैसे हारीत, भरद्वाज व शुकदेव मुनियों के श्रवण सुखकर वचनों, तथा वत्स, गालव व शाण्डिल्य मुनियों के द्वारा अलंकृत होते हैं वैसे ही यह योगपीठ भी हारीत, भरद्वाज व शुक पक्षियों के श्रवण सुखकर शब्दों; तथा वत्स ( कुटज ), गालव ( लोध ) व शाण्डिल्य ( बेल ) के वृक्षों से शोभित है ॥५५॥

इन सब वृक्षों की शाखाएँ लतावल्लरियों से आलिंगित व प्रफुल्लित होकर इस योगपीठ पर निरन्तर शोभायमान् हो रही है ( ५८ वें श्लोक से अन्वय है )। इन वृक्षों के मूल चारों ओर से मण्डलाकार वेदियों ( चबूतरों ) से युक्त हैं जो चार छः अथवा आठ कोण वाले हैं, विविध मणियों से जटित हैं, गला, वक्ष, उदर, नाभि, नितम्ब, जानु एवं उरु परिमाण ऊंचे हैं, प्रत्येक दिशा में सोपानावली है, तथा जल के लिए आलबाल (थाली) सहित हैं ॥५६॥

अब विविधमणिनिर्मित वेदिकाओं के भेदों का वर्णन करते हैं:—कोई वृक्ष की वेदी नीलमणि व रक्तमणि की है तो उसमें आलबाल चन्द्रकान्तमणि का है। किसी वेदी चन्द्रकान्तमणि

वृक्षा हैमा हरिमणिमयैः काञ्चनैरैन्द्रनीला-
वैदूर्याभाः स्फाटिकमणिजैः स्फटिकाः पद्मरागैः ।
गौकान्ताङ्गा मरकतमयैस्तैश्च तेऽन्ये तथान्यै—
र्दीव्यन्त्यस्मिन् व्रतति-वलयैः श्लिष्टशाखाः प्रफुल्लाः ॥५८॥

सन्दानितकम्

हरिमणि-भुवि हेमा वैद्रुमा वैद्रुमाश्च
स्फटिक--मणि--धरायां स्फाटिकाः स्वर्णभूमौ ।
अरुणमणि--धरायां शाक्रनीलाश्च यस्मिन्
मरकत-मणि-धात्र्यां पाद्मरागा विभान्ति ॥५६॥
स्वर्णस्कन्धाः शिति-सितमणि-स्थूलशाखोपशाखाः
केचिद्वृक्षा मरकतदलाः पद्मराग-प्रवालाः ।

---

निर्मित है तो आलबाल नीलरक्तमणि निमित है । जो सब वृक्ष स्वर्णवर्ण के हैं, उनकी वेदियाँ इन्द्रनीलमणि निर्मित हैं और जो सब वृक्ष इन्द्रनीलमणि सदृश हैं वे स्वर्णमयी वेदिका से आवृत हैं, वैदूर्यमणि सदृश वर्ण वाले वृक्ष स्फटिकमणि निर्मित वेदिकाओं से निबद्ध ( बँधे हुए ) हैं तो स्फटिक सदृश वृक्ष पद्मराग-मणि निर्मित वेदिकाओं से आबद्ध है और चन्द्रकान्तमणि वर्ण वाले वृक्ष मरकतमणि निर्मित वेदिकाओं से आवृत हैं । इस प्रकार जो वृक्ष जिस वर्ण का है उससे भिन्न वर्ण की वेदी से वह आबद्ध है । इन सब वृक्षों की शाखाएँ लतावल्लरियों से आलिङ्गित व प्रफुल्लित होकर इस योगपीठ पर प्रकाशित हो रही हैं ॥५७–५८॥

इस योगपीठ पर इन्द्रनीलमणिमय भूमि पर हेमवर्ण के वृक्ष, स्वर्णवर्ण भूमि पर स्फटिक वर्ण के वृक्ष, अरुणवर्ण भूमि पर इन्द्रनीलमणिवर्ण के वृक्ष तथा मरकतमणिमय भूमि पर पद्मराग-वर्णों के वृक्ष शोभा दे रहे हैं ॥५६॥

विभ्राजन्ते स्फटिक-कुसुमाः स्थूल-मुक्ताफलौघा—
अन्ये तरान्मणिविरचना वैपरीत्येन यस्मिन् ॥६०॥
तेषां फलान्यखिलवाञ्छितदान्यगानां
दीव्यन्ति रत्न-पृथु-सम्पुट-सन्निभानि ।
श्रीकृष्ण-कृष्णरमणीचय--योग्यवस्त्रा—
लङ्कार--गन्ध--पटवास युतानि यत्र ॥६१॥
स्वभावमालाकृति-पुष्पभाजां फलानि तासां रुरुचुर्लतानाम् ।
कुष्माण्ड-तुम्बी सदृशानि यत्र श्रीकृष्णलीलोचितवस्तुभाञ्जि ॥६२
कुसुम-रचित-शय्योल्लोच-भूषोपधानैः
समधु-चषक-ताम्बूलाम्बुगन्धादि-पात्रैः ।

---

इस योगपीठ पर किसी किसी वृक्ष का स्कन्ध स्वर्ण-वर्ण का और शाखा-उपशाखाएँ कृष्णवर्ण व शुभ्र वर्ण के,पत्रावली मरकत ( हरे ) वर्ण के, नवीन किसलय पद्मराग ( लाल ) वर्ण के, कुसुमसमूह स्फटिक वर्ण के तथा फल समूह मुक्ता सदृश हैं। ऐसे ही अन्य सब वृक्षों के जो जो वर्ण हैं, उन से भिन्न वर्ण के उनके स्कन्ध, शाखा व पत्रादिक शोभायमान हैं ॥६०॥

उन वृक्षों के फल समस्त वाञ्छितफल प्रदानकारी हैं एवं रत्नों की बड़ी बड़ी पिटारियों के समान हैं जिनमें श्रीकृष्ण व श्रीकृष्ण-प्रियाओं के लिए उपयुक्त वस्त्र, अलंकार, गन्ध, गन्धचूर्ण सर्वदा शोभा देते रहते हैं ॥६१॥

इस योगपीठ की लताओं का आकार स्वभावतः ही माला जैसा होता है और उनमें सर्वदा ही फूल खिले रहते हैं और उनके कुम्हड़ा और तूम्बी जैसे फल भी श्रीकृष्ण की लीला के उपयुक्त वस्तुओं से संयुक्त शोभित रहते हैं ॥६२॥

इस योगपीठ पर जो कुंजसमूह हैं उनकी मणिमय भूमि

व्यजन-मुकुरसिन्दूराञ्जनामत्रकैश्चा—
न्वित-मणि-निचितान्तभूमयो भूरिचित्राः ॥६३॥
कुसुमित--बहुवल्ली--मण्डलैर्भित्तिकल्पै—
रुपरि च पटलाभैः श्लिष्ट--शाखासमूहैः ।
निबिड़--दलफलानां छादिताः पादपानां
मणिमय-गृहतुल्या यत्र कुंजा विभान्ति ॥६४॥
यत्रातिचित्राम्बर--पुष्पचित्रिता
शाखासु सत्कल्प--पलाशिनां सिताः ।
दीव्यन्ति नानामणिभिः सुचित्रिता
हिन्दोलिकाः श्रीहरि--राधिका--प्रियाः ॥६५॥
कपोत-पारावत-कोकिलानां हारीत-कपिञ्जल-टैट्टिभानाम् ।
मायूर-चाकोरक-चातकानां चाषालि-लावावलि-वर्त्तिकानाम् ॥६६॥

---

कुसुमरचित शय्या, चन्द्रातप ( चँदोआ ), भूषण, उपाधान ( तकिया ), मधुपूर्ण चषक ( प्याला ), ताम्बूल जल व गन्ध के पात्रों, व्यंजन, चँवर, दर्पण, सिन्दुर व अजंन के पात्रों द्वारा बिचित्र शोभा को प्राप्त हो रही है। उन कुंजों की चारों ओर दिवालों की भाँति अनेक कुसुमित लतामण्डल हैं जिनके ऊपर सघन पत्र व फल युक्त वृक्षों की परस्पर गुँथी हुई शाखाओं का आच्छादन ( पटाव ) बना हुआ है अतएव वे कुंज मणिमय गृह सदृश शोभा देते हैं ॥६४-६४॥

इस योगपीठ पर श्रेष्ठ कल्पवृक्षों की शाखाओं से बँधे हुए हिंडोलाएँ शोभा दे रहे हैं जो अत्यन्त बिचित्र वस्त्र पुष्पों, और बिबिध मणियों से चित्रित हैं और श्रीराधाकृष्ण को सुख-दायी हैं ॥६५॥

कपोत ( घरेलु कबूतर ), पारावत (जंगली कबूतर), कोयल,

यच्छौक-शारीतति-चाटकानां कालिङ्ग-पादायुध-तैत्तिरीणाम् ।
व्याघ्राट-भाषावलि-कौक्कुभानां स्वनैर्विलासैः श्रुतिनेत्रहारि ॥६७॥

युग्मकम्

विस्तीर्णा रत्न-चित्रान्ता तदन्तः कनकस्थली ।
निकुञ्ज-मण्डलैः कल्पद्रुमाणामस्ति वेष्टिता ॥६८॥
मध्ये विचित्र-मणि-मन्दिरमस्ति तस्याः
कल्पद्रुमाङ्कमनुकुट्टिम-शोभि दिक्षु ।
सोपान-पालि-ललितं बलितं विदिक्षु
सन्तानकाद्यपरवृक्ष--चतुष्टयेन ॥३६॥
स्वकान्ति-जालायत-लोलपक्षै-रूर्ध्वक्रमात् कुञ्चित-पूर्वपादैः ।
पश्चादधोन्यस्त-दरायतान्य-स्वीयाङ्घ्रि-युग्मार्पित-देहभारैः ॥७०..

---

हारिल, कपिंजल ( ? ), टिटिहरी, मोर, चकोर, चातक (पपैया), चास, लवा, वत्तख, शुक, सारिका ( मैना ), चटक ( गौरैया ) कलिंग, कुक्कुट ( मुर्गा ), तीतर, भरद्वाज, भाष, वलि ( ? ) और कौकुभ आदि विविध पक्षियों की ध्वनि व विहार से यह योग-पीठ श्रवण और नयन को आकर्षण करता है ॥६६-६७॥

पुनः योगपीठ का वर्णन उन्नीस श्लोकों में वर्णन करते हुए कहते हैं कि उसके मध्य-भाग में विस्तृत सुवर्णमयी भूमि है जो रत्नों से चित्रित है और कल्पतरुओं के निकुंजमंडल द्वारा वेष्टित है ॥६८॥

उस सुवर्णमयी भूमि के मध्य भाग में कल्पतरु के तले विचित्रमणि मन्दिर है जो पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशाओं में मनोहर सोपानावली युक्त चार वेदियों के द्वारा और अग्नि, ईशान आदि उपदिशाओं में सन्तानक, पारिजात आदि चार कल्पतरुओं के द्वारा परिवेष्टित है ॥६६॥

माणिक्यनेत्रै रविकान्तगात्रै-रुत्पुच्छ-कर्णैः कपिशोच्छटौघैः ।
उड्डीयमानैरिव रत्नसिंहै-र्यदुह्यमानं वियतीव दिक्षु ॥७१॥
सुचेल-तूलीयुत-हेमकर्णिकं खट्वायमानं मणिकान्ति-केशरम् ।
यस्यान्तरष्टच्छद-पद्म-सन्निभं कृष्णस्य सिंहासनमस्ति काञ्चनम् ॥
।।७२।। सन्दानितकम्
लघुरत्नालयस्वाङ्कैः कुञ्जैः कल्पलतावृतैः ।
अष्टभिः कल्पवृक्षाणां वहिर्येदिक्षु शोभितम् ॥७३॥

---

इस मन्दिर के भीतर सुवर्ण निर्मित अष्टदलकमल सदृश श्रीकृष्ण का सिंहासन है (७२ वें श्लोक से अन्वय है) (सिंहासन सिंह चिन्हित आसन ॥ ७०–७१–७२ वें श्लोकों का अर्थ सुबोध बनाने के लिए विपरीत क्रम से लिखा जाता है) स्वर्णकर्णिका ही उस सिंहासन के सुन्दर वस्त्र के समान है, मणियों की कान्तिजाल ही केसर तुल्य हैं, और अष्टदलों में विभक्त होने के कारण वे अष्टदल ही अष्ट पाद (पाये) सदृश हैं जिनसे वह पद्मतुल्य सिंहासन अष्टपादयुक्त खट्वा (खटोला–पलंग) तुल्य बन गया है ऐसे पद्मतुल्य व खट्वातुल्य सिंहासन (अर्थात् आसन) को चार कोनों से चार रत्ननिर्मित सिंह धारण किये हुए हैं। वे सिंह आकाश में उड़ते हुए-से प्रतीत होते हैं और वह सिंहासन अधर (शून्य) में स्थित जैसा प्रतीत होता है । उन सिंहों के अंगों के कान्तिजाल ही मानों तो उनके बड़े बड़े चंचल पंख हैं, आगे के दोनों पैर सिमटे हुए हैं मानों तो ऊपर को उछलना चाहते हों और पीछे के दोनों पैर पुच्छों के नीचे दबे हुए देह के भार को सम्हाले हुए हैं। दोनों नेत्र माणिक्य (रत्नों) के बने हुए हैं, सूर्यकान्तमणि के समान कान्तिमान शरीर हैं, दोनों कर्ण व पुच्छ उन्नत हैं और अंगों की छटा पिंगलवर्ण की है ॥७०–७३॥

बल्लीयुकल्पवृक्षाणि कुञ्जानां तद्बहिर्बहिः ।
क्रमाद्द्विगुण-संख्यानां बहुभिर्मण्डलैर्वृतम् ॥७४॥
भास्वता मृग-पक्ष्यादि मिथुनै रत्न-चित्रितैः ।
शून्य-हेमस्थली-प्रान्तभागेन तद्बहिर्वृतम् ॥७५॥
तद्बहिः कदलीषण्डैः सफलैः शीतलच्छदैः ।
वृतं नानाजातिभेदैः कर्पूराकर-बल्कलैः ॥७६॥
तद्बहिर्वेष्टितं पुष्पोद्यानेनातिप्रथीयसा ।
पृथक् तत्तत्पुष्पवाटी-बलितेन समन्ततः ॥७७॥

---

इस मन्दिर के बहिर्भाग में आठ दिशाओं में कल्पवृक्षों के आठ कुंज शोभायमान हैं। वे कल्पलताओं से आवृत क्षुद्र क्षुद्र रत्नालय के समान हैं ॥ ७३ ॥

उन अष्टकुञ्जों के बहिर्भाग में क्रमशः दुगुनी संख्या में कुन्ज समूह वर्तमान हैं अर्थात् अष्ट कुंज के बाहर सोल्ह कुंज इनके बाहर बत्तीस, इनके बाहर, चौंसठ, फिर एक सौ आठ इस प्रकार कल्पलता व कल्पवृक्षों सेर चित्त क्रमशः दुगुने कुंज–मंडलियों से आवृत वह मूल-मन्दिर विराजमान है ॥७४॥

इन कुंजमंडलियों का वहिर्भाग ( लता वृक्षादिकों से ) शून्य प्रकाशमान सुवर्णमय प्रान्तभाग से आवृत है जिसमें रत्नचित्रित मृग-पक्षी आदि के मिथुन ( जोडी ) शोभायमान हैं ॥७५॥

उस प्रान्त देश का वहिर्भाग नाना जाति के केले के वृक्षों से आवृत है जो सर्वदा फल, शीतल–दल व कपूर सहित होते हैं ॥ ७६ ॥

उस कदलीखण्ड का वहिर्भाग चारों ओर से एक सुविस्तृत पुष्पोद्यान से आवृत है जिसमें मालती, मल्लिका आदि पूर्वोक्त पुष्पों की पृथक् पृथक् पुष्प वाटिकाएं हैं ॥ ७७ ॥

तद्बहिर्भूरिभेदानां नम्राणां फलभारतः ।
आराम-मण्डलैस्तैस्तैर्वेष्टितं फलभूरुहाम् ॥७८॥
तयोर्मध्येऽरण्यदेवी-कुञ्जदासी-शतान्वितैः ।
सेवोपकरणागार-निकरैः परितो वृतम् ॥७९॥
वहिर्वहिः क्रमात्तस्माद्वृतं तत्तल्लतायुतैः ।
स्वान्तरालैः पृथक् तैस्तैः श्रेणीभूतैर्द्रुमण्डलैः ॥८०॥
करलभ्य-हरित्पीतारुणाच्छफल-गुच्छकैः ।
तद्बहिर्वृतकण्ठानां पूगानां मण्डलैर्वृतम् ॥८१॥
आलवाल-निटिलोपरि सुप्तै-र्वेष्टितं सुफल-गुच्छक-वृन्दैः ।
भूषणालिभिरिवाङ्कित-कण्ठै-र्नारिकेल-वलयैर्वहिरस्मात् ॥८२॥

---

उसका वहिर्भाग फलों के भार से विनत ( झुके हुए ) विभिन्न जातियों के वृक्षों के उपवन-मंडल से वेष्टित है ॥ ७८ ॥

और उन पुष्प-वाटिकाओं तथा उपवनों मे शत शत वन देवियों और कुंज दासियों के चारों ओर गृह समूह है जो पुष्प-फल-वस्त्र-अलंकार-भक्ष्य-भोज्य-सुगन्ध आदि सब सेवा सामग्रियों से सुसज्जित हैं ॥ ७९ ॥

उन उपवनों का वहिर्भाग पूर्वोक्त विभिन्न लताओं से वेष्टित पूर्वोक्त विभिन्न वृक्षसमूह की पृथक् पृथक् सावकाशयुत ( बीच-बीच में जगह छोड़ कर ) श्रेणियों के द्वारा आवृत है ॥८०॥

इसका वहिर्भाग सुपारी के वृक्षों से वेष्टित है जिनके हरे, पीले व लाल फल व गुच्छों तक अनायास ही हाथ पहुँच जाते है ॥ ८१ ॥

इसका वहिर्भाग नारियल के वृक्षों की श्रेणियों से वेष्टित है जिनके फल आलवालों ( थाल-घेरा ) के ऊपर गिरे पड़े हैं और जिनके कंठ फलों के गुच्छों के भूषण पहने हुए हैं अर्थात् जिनमें

चम्पकाशोक-नीपाम्रादीनां कृष्णातटोपरि ।
पुन्नाग-बकुलादीनां निकुञ्जैस्तद्बहिर्वृतम् ॥८३॥
तार-नीरानम्रशाखैः फुल्लवासन्तिकावृतैः ।
मञ्जुलैर्वञ्जुलैः कुञ्जैर्वञ्जुलैश्चाभितो वृतम् ॥८४॥
स्वपार्श्वयोः श्रीवकुलावलिभ्यां संच्छादितान्यत्र चितानि रत्नैः ।
आमन्दिराद्यामुन-तीर्थगानि, चत्वारि वर्त्मानि विभान्ति दिक्षु॥
यस्यैशान्यां दिशि मणितटं ब्रह्मकुण्डं यदास्ते
तस्यैशान्यां शिव इह सदा सोऽस्ति गोपीश्वराख्यः ।
तस्योदीच्यां तटभुवि तरुः सोऽस्ति वंशीवटाख्य—
स्तिष्ठन् वंश्याश्वयति रमणीः कुट्टिमे यस्य कृष्णः ॥८६॥

उनविंशत्या कुलकम्

---

नारियल के गुच्छे लगे हुए हैं ॥८२॥

उसका बहिर्भाग यमुना तटस्थ निकुंजों से आवृत है, जो चम्पा, अशोक, कदम्ब, आम, पुन्नाग, बकुलादि वृक्षों की श्रेणियों द्वारा रचित हैं ॥८३॥

यमुना तटवर्ती जल चारों ओर से प्रफुल्लित माधवी लतायुक्त विनत शाखावान मनोहर अशोक व वेतस् वृक्षों के कुञ्जों से आवृत हैं ॥८४॥

इस स्थान पर मन्दिर से आरम्भ कर श्रीयमुना के घाट पर्यन्त चारों ओर को चारमार्ग शोभा दे रहे हैं जिनके दोनों पार्श्व शोभा सम्पन्न वकुल वृक्षों से युक्त हैं तथा जिनकी भूमि रत्नों द्वारा जटित है ॥८५॥

इस योगपीठ के ईशान कोण में मणिखचित तटयुक्त ब्रह्म-कुण्ड है जिसके ईशान कोण में गोपीश्वर नामक शिव सदा वर्त्तमान हैं। उनके उत्तर में यमुना तट पर वंशीवट नामक वृक्ष

जानूरुदघ्नैः कटिनाभिमात्रै-र्हृत्कण्ठमूर्द्धद्वयसैः क्वचिच्च ।
कुत्राप्यगाधैः सलिलैरपारैः सम्पादयित्री जलकेलि-सौख्यम् ॥८७॥
कह्लार-कोकनद-कैरव-पुण्डरीकै-रिन्दीवराम्बुरुह-हल्लक-हेमपद्मैः ।
फुल्लैर्लसन्मधुकरैः सरसैर्मनोज्ञा तत्पातपरागमकरन्दसुगन्धतोया ॥
चक्राङ्गमद्गु-प्लव-चक्रवाक-शरारि-कोषष्टिक-सारसानाम् ।
कादम्ब-कारण्डव-खञ्जनानां स्वनैर्विलासैर्युत-तीर-नीरा ॥८९॥
गोकर्ण--रोहिषिक--शम्बर--कृष्णसारै--
र्न्यङ्क्वेण-रङ्कु-पृषतैर्गवयैः शशैश्च ।

---

स्थित है जिसकी वेदिका पर स्थित हो कर श्रीकृष्ण वंशी बजा-कर गोपियों का आह्वान करते हैं ॥८६॥

पुनः योगपीठ का वर्णन करते हुए उसके विशेषण रूप से यमुना का वर्णन करते हैं:—यह यमुनादेवी कहीं अल्प अर्थात् जानु, ऊरु, कटि, नाभि, वक्ष, कण्ठ व मस्तक परिमित जल से और कहीं अगाध जल से जलकेलि सम्पादन करती हैं ॥८७॥

यह यमुना प्रफुल्लित, सरस, शोभन व मधुकर युक्त कह्लार ( श्वेत कमल ), कोकनद ( लालकमल ), श्वेत कुमुद, पुण्डरीक ( श्वेतकमल ), इन्दीवर ( नील कुमुद ), अम्बुरुह ( कमल ) हल्लक ( त्रिकाल फूलने वाले रक्तकमल ), स्वर्णकमल आदि कमलों द्वारा मनोहारिणी है तथा उन पुष्पों के पराग से इसका जल निरन्तर सुवासित रहता है ॥८८॥

इस के जल व थल हंस, मद्गु ( जलमुर्गी ), प्लव ( जल-कौआ ), चक्रवाक ( चकवा ), शरारि ( आड़ी ) टिटिहरी, सारस, कलहंस ( बत्तख ), कारण्डव ( करडुआ—एक प्रकार का बत्तख ) और खंजन पक्षियों की विलासपूर्ण ध्वनि से गूँजते रहते हैं ॥८९॥

गन्धर्व-रोहित-समूरु-चमूरु-चीनै—
रन्यैर्मृगैर्वलित-तीर-बनान्तभागाः ॥६०॥
एकानि निर्झर-वृतान्यभितोऽपराणि
प्रान्तेऽतिमुक्तक-निकुञ्ज-शतान्वितानि।
अन्यानि दिक्षु कुसुमोपवनावृतानि
पूर्णेन्दु--मण्डल--निभानि मनोहराणि ॥६१॥
कर्पूर-चूर्णमद-निन्दक-बालुकानि
पूर्णामृत-द्युतिकर-द्विगुणोज्ज्वलानि।
श्रीकृष्ण--बल्लवबधूचय--रासनृत्य—
लक्ष्मान्वितानि पुलिनानि च भान्ति यस्याः ॥६२॥
यस्योत्तरायां यमुना दिशि स्वयं सारण्यतीरैः पुलिनातिराजितैः।
स्वैर्निर्झरैर्भूरिभिरन्तरान्तरा संवेष्ट्य रास-स्थलिकां बिभाति सा
॥६३॥ सप्तभिः कुलकम्

---

इसके तट व बन गोकर्ण, रोहिषिक, शम्बर, कृष्णसार, न्यकु, ऐण, रंकु, पृषत्, गवय, शश, गन्धर्व, रोहित, समरु, चमरु एवं चीन नामक विभिन्न जातीय मृगों के द्वारा सदा व्याप्त रहते हैं ॥६०॥

इसके पुलिन का कोई भाग झरनों अर्थात् यमुना की धाराओं तो कोई भाग मालती के सुन्दर निकुंजों द्वारा आवृत है, कोई भाग में चारों ओर कुसुमित उपवन हैं तो कोई प्रान्त चन्द्रमण्डल तुल्य कपूर के चूर्ण के मद को चूर्ण करने वाले मनोहर बालुकाओं से व्याप्त है जो पूर्णचन्द्र की चाँदनी में दुगुनी उज्ज्वल चमक रही हैं तथा जिन पर श्रीकृष्ण और गोपियों के रासनृत्य के चिन्ह विद्यमान हैं—ऐसे पुलिन समूह यमुना के तट पर शोभायमान हैं ॥६१-६२॥

इस योगपीठ का उत्तरी भाग स्वयं श्रीयमुना की ओर है,

कल्पद्रुमाधःस्थितरत्नमन्दिरं गोपाल-सिंहासन-योगपीठकम् ।
यमागमज्ञाः प्रवदन्ति यं हरेः प्रियागणाः केलि-निकुञ्जमाह च ॥६
एवम्विधं तं स्थलराज--तल्लजं
कन्दर्पलीला--सुखसत्र--मन्दिरम् ।
गोविन्द--संस्मारकमात्मनो गुणैः--
र्वीक्ष्याप-राधा समखीततिमुदम् ॥६५॥
वृन्दा सवृन्दात्र विभूषयन्ती कुञ्जानि नानारचनोपचारैः ।
निजेशयोर्वर्त्मनि दत्तदृष्टि स्वेशामकस्मान्मिलितां ददर्श ॥६६॥
अभ्युद्गतास्यै विनिवेद्य हल्लके सा केशवोत्तंसचरे मुदान्विता ।
संदर्शयन्ती वनकुञ्ज-मञ्जुतां निकुञ्जराजं प्रति तामनैषीत् ॥६७॥

---

जो पूर्वोक्त मार्ग–युक्त पुलिन से अति सुशोभित है और जहाँ यमुना बीच बीच में अपनी धाराओं स रासस्थली को वेष्टित कर शोभा पा रही है ॥६३॥

जिस स्थान पर कल्पतरु के नीचे रत्नमन्दिर स्थित है तथा आगमविद् ( तन्त्रशास्त्रविद् ) पण्डित जन जिसे श्रीगोपाल का सिंहासन रूप गोगपीठ कहते हैं और श्रीकृष्ण की प्रेयसीवर्ग जिसे केलिकुंज कहती हैं, ऐसा जो कन्दर्पलीलायज्ञ का सुखमय मन्दिर है और अपने गुणों से श्रीगोविन्द का स्मरण कराने वाला है, उस उत्कृष्ट स्थान के दर्शन कर श्रीराधिका को सखियों सहित परमानन्द प्राप्त हुआ ॥६४–६५॥

इस योगपीठ पर वृन्दादेवी अपनी दासी वृन्दों के साथ नानाविध रचनाओं व उपचारों द्वारा कुंज समूहों को विभूषित करती हुई अपने स्वामी श्रीराधाकृष्ण के आगमन के मार्ग की ओर दृष्टि लगाये हुए थीं कि अकस्मात् उन्हें अपनी स्वामिनी श्रीराधा पधारती हुई दर्शन हुए ॥६६॥

शोभां बनस्येन्दुकरानुरञ्जितां सोद्दीपनीं भाबततेः स्वभावतः ।
निकुञ्जबृन्दस्य च बृन्दया चितां बीक्ष्यास लोला हरिसङ्गमाप्तये ॥
तस्या उद्दीप्त-भावाली-बात्ययोच्चालितं मनः ।
कृष्णाप्त्याशापगोत्कण्ठावर्त्तौ तूलमिबापतत ॥९९॥
कुञ्जं मुहुर्बिशति पश्यति तत्र चित्रा—
गयस्मान्निरेति सरणिं सरति प्रियस्य ।
पत्रे क्वचिश्चलति तं मनुते समेतं
बृन्दाञ्च पृच्छति तदागममुत्सुकेयम् ॥१००॥

---

बृन्दादेवी श्रीराधा के निकट आकर श्रीकृष्ण के धारण किये हुए कर्णभूषण स्वरूप दो रक्तसन्ध्यक ( लाल कह्लार ) पुष्प श्री-राधा को प्रदान करके तथा कानन की शोभा दिखाते दिखाते उनको निकुंजराज श्रीकृष्ण के समीप ले जाने लगीं ।।९७।।

इधर श्रीराधा बृन्दादेवी के साथ निकुंजों की शोभा के दर्शन करके श्रीकृष्ण से मिलने के लिए अतिशय चंचल हो उठीं । वे निकुंज एक तो स्वभावतः भावलहरियों को उद्दीप्त करने वाले हैं, उस पर बृन्दादेवी के साजे-सम्हारे हुए हैं ।।९८।।

उस समय श्रीराधा का मन ( सात्त्विक विकारों में से चौथी दशा को प्राप्त ) उद्दीप्त भावों से अत्यन्त चलायमान होकर श्री-कृष्ण-प्राप्ति की आशा रूप नदी के उत्कण्ठा रूप भँवर में रूई की भाँति जा पड़ा , अर्थात् उनका चित्त मिलने के लिए अति-शय अधीर हो उठा ।।९९।।

उत्कण्ठा के भँवर में पड़ा हुआ श्रीराधा का मन कभी कुंज में प्रवेश करता और वहाँ के आश्चर्य का अवलोकन करने लग जाता, तो कभी कुंज से बाहर निकल आता और प्रियतम के आने के मार्ग पर चलने लग जाता तथा कभी बन में पत्ता

सङ्कल्पान् हरिणा बिलास-बितते: प्राप्तौ बिकल्पान् हरे:
संजल्पान् स्फुरतामुना च पुरत: सन्तन्वती भूरिश: ।
आकल्पं स्वतनो: सुकल्पमपि सा तल्पञ्च संस्कुर्वती
स्वल्पं कालमनल्पकल्पसदृशं मेने प्रियाभ्युत्सुका ॥१०१॥
अथात्र घोपेश-सुत: सवित्र्यां स्वं शायचित्वा स्वगृहं गतायाम् ।
क्षणं स विश्रम्य बहि: स्वदासान् प्रस्थाप्य गेहाच्छयनादुदस्थात् ॥
कीलयित्वा पुरोद्वारं दासान् प्रस्थाप्य तद्बहि: ।
गन्तुमुत्कमना: कुञ्जं पक्षद्वारेण निर्ययौ ॥१०३॥

---

हिलने पर प्रियतम ही आ रहे हैं सोचता, तो कभी उनके आगमन के लिए उत्सुक हो वृन्दादेवी से जिज्ञासा करने लग जाता ॥१००॥

श्रीराधा प्रियतम से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुका होने के कारण कभी तो श्रीकृष्ण सहित विविध बिलासों का संकल्प ( मन-ही-मन बिचार ) करती हैं और कभी विकल्प करती हैं अर्थात् श्रीकृष्ण आयेंगे कि कोई बाधा के कारण नहीं आ पायंगे ऐसी शंका करती हैं, कभी श्रीकृष्ण की स्फुर्त्ति होने पर उनके साथ नाना विध कथोपकथन करती हैं और कभी अपने भूषणों को उत्तम रूप से सँबारती हुई, अल्प काल को भी कल्प के समान समझती हैं ॥१०१

उधर गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ने जननी यशोदा के उनको शय्या पर शयन करा कर अपने गृह चले जाने के पश्चात्, दासों को बिदा कर दिया और क्षण भर बिश्राम करके शय्या से उठ पड़े ॥१०२॥

दासों को गृह के बाहर नियुक्त कर, फाटक को अर्गला ( कीली ) दे बन्द करके श्रीकृष्ण कुंज-गमन के लिए उत्सुक होकर खिड़की के मार्ग से निकल बाहर हुए ॥१०३॥

अनाच्छन्नं हित्वा शशिकर-चितं घोषबसतेः
पुरद्वारं सम्भावित-बिबिध-लोकागमगमम् ।
सुखं पश्चात् सृत्या बिटपि-बृतया यामि बिपिनं
बिचार्य्येत्थं गन्तुं पदयुगमधादूयर्हि स पुरः ॥१०४॥
तदैब सा स्वे ब्रजभूरतर्कितं निधाय यन्त्रापित-यान-सन्निभे ।
मनोजबे हृत्कमले निनाय तं कुञ्जालयं तन्मनसा सह द्रुतम् ॥१०५
ज्योत्स्नापूर्णं तूर्णमुल्लङ्घ्य यत्ना—
च्छायाच्छन्नं बर्त्म गृह्नंस्तरूणाम् ।
आयातोऽहं प्रेयसी सागता मे
किम्बा नेत्थं कृष्ण आसीत्तदोत्कः ॥१०६॥

---

नन्दभवन का पुरद्वार ( सदर दरवाजा ) अनाबृत ( खुला ) एवं ज्योत्स्ना व्याप्त है तथा वहाँ अनेकानेक लोगों का गमनागमन भी सम्भव है—ऐसा विचार कर उस मार्ग को त्याग, वृक्षों से आबृत गृह के पश्चाद् भाग के मार्ग से ही जाना सुखकर है विचार कर जब आपने गमन करने के लिए चरण युगल उठाये ॥१०४॥

तो श्रीचरण आगे रखते ही श्रीबृन्दावन की भूमि ने अतर्कित भाव से श्रीकृष्ण को अपने हृदय में ऐसे पधरा लिया मानो तो वह ( भूमि ) कोई यंत्रार्पित बाहन हो अथबा बेगवान मन हो और श्रीकृष्ण के मनके संकल्प के साथ ही उनको कुंजभवन में उपस्थित कर दिया, अर्थात उन्होंने "कुंज के लिए चलूं" संकल्प करके ज्यूं ही चरण उठाये त्यूं ही कुंज पहुँच गये। और यह क्रिया "अतर्कित" रूप से हुई अर्थात् श्रीकृष्ण तक को यह शंका नहीं हुई कि कैसे तुरत ही हम कुंज पहुँच गये । मूलतः यह श्रीकृष्ण का ही ऐश्वर्य-वैभव होने पर भी लीला में वह आच्छन्न है और बृन्दावन का वैभव ही प्रकाश्य है, ( इसी सर्ग के २१ वें श्लोक में इसका स्पष्ट उल्लेख आ चुका है ) ॥१०५॥

इतस्तावज्ज्योत्स्नोज्ज्वलित-पवनान्दोलितदलं
तमालं राधारात् कनकचितमालोक्य मुदिता ।
प्रियं मत्वायान्तं विहसितुममुं कौतुकवती
निलीनासीत् कुञ्जालयमनु वयस्याल्यनुमता ॥१०७॥

रत्न-प्रदीपादिकधारि-भित्ति-प्रलग्न-हैम-प्रतिमालि-मध्ये ।
स्थिता प्रियं प्रेक्ष्य पुरः स्फुरन्तं दृष्टास्म्यनेनेति मुहुर्निलिल्ये ॥१०८

---

"मैं तो ज्योत्स्ना द्वारा आलोकित मार्ग को त्याग कर वृक्षों की निविड़ छाया द्वारा आच्छन्न मार्ग से आ गया परन्तु मेरी प्राणप्रिया भी ( ऐसे ही ) आ पायी हैं अथावा नहीं"—इस आशंका से श्रीकृष्ण अत्यन्त उत्कंठित हो उठे ॥१०६॥

इधर श्रीराधा को पवन से हिलते हुए, ज्योत्स्ना से उज्ज्वल बने हुए, मूल में कनक-वेदी से वेष्टित तमाल वृक्ष को देख कर प्रियतम श्रीकृष्ण के आगमन का भ्रम हो गया, अर्थात् श्रीराधा को भावावेश में ज्योत्स्ना जनित उज्ज्वलता में हास्य की भ्रान्ति, वृक्षमूलबद्ध कनक वेष्टन में पीताम्बर की भ्रान्ति, पवनकृत आन्दोलन ( हिलने ) में आगमन की भ्रान्ति एवं तमाल वृक्ष में श्रीकृष्ण की भ्रान्ति हो गयी । अतएव यह समझ कर कि प्रियतम आ रहे हैं, उनसे परिहास करने के लिए सखियों की अनुमति से श्रीराधा कौतुहलवती होकर कुंजालय में छिप कर रह गयीं ॥१०७

श्रीराधा जिस स्थान में छिपी हुईं थीं उसकी दिवाल के एक किनारे पर रत्न-प्रदीप व स्वर्ण-प्रतिमा होने के कारण, प्रियतम को सन्मुख-स्फूर्त्ति में दर्शन करके, श्रीराधा को और एक यह भ्रम होता है कि इन्होंने मुझे देख लिया है और ऐसा सोच छिपी हुई फिर छिपना चाहती हैं ॥१०८॥

तावत् कृष्णोऽपि तत्रायाद् वृक्षाच्छन्नेन वर्त्मना।
वृन्दाभ्येत्य ददौ तस्मै कर्णिकारावतंसकौ ॥१०६॥ सन्दानितकम्
पुलक-मुकुलजाला बाष्पधारा-मरन्दा
विकृति-मलय-वातोत्कम्पिता सालिपालिः।
स्मित-कुसुम-सिताङ्गी गद्गदालि-स्वनासी—
दुदयति दयितेऽस्मिन् माधवी माधवीव ॥११०॥
कृष्णोऽपि तासामवलोकजातानन्दोत्थ भावालि-विभूषिताङ्गः।
कान्तावलोकोत्तरलाक्षिचेताः कान्तामपश्यन्नवदत्तदालीः ॥१११॥
वयस्या वः सख्यः क नु निजगृहे तद्विरहिताः
कथं यूयं प्राप्ताः कुसुममवचेतुं रविकृते।
कुतस्तत्सौरभ्यं प्रसरति तदङ्गेन मिलिता—
च्छरीरादस्माकं वितथमिदमस्त्वेव वितथम् ॥११२॥

---

इतने ही में श्रीकृष्ण भी वृक्षों द्वारा आच्छन्न मार्ग से समीप आ गये तो वृन्दा देवी ने उनके समीप आकर उनको कर्णिकार-पुष्प-रचित दो कर्ण भूषण समर्पण किये ॥१०६॥

श्रीकृष्ण के उदित होने पर ललितादिक सखियाँ वसन्त-कालीन माधवी-लता सरीखी बन गयीं—उनकी देह लताओं से पुलक ही बौर हो गये, आनन्द की अश्रुधाराएँ ही मकरन्द बन गयीं, कन्दर्प जनित विकार ही मलयसमीर बन कर उनकी देह-लता को कंपाने लगा, हास्य रूपी कुसुमों से वे शुभ्रांगी बन गयीं तथा गद्गद अस्फुट स्वर ही भ्रमर-गुंजार बन गया ॥११०॥

श्रीकृष्ण की देह भी उन सखियों के दर्शनानन्द में भावों से विभूषित हो गयी और वे प्रियतमा श्रीराधा के दर्शन के लिए चंचल नयन व चंचल चित्त होकर उनको न देख सखियों से कहने लगे ॥१११॥

तां बिना न वने युष्मद्‌गतिः सम्भाव्यते क्वचित् ।
चन्द्रमूर्त्तिं बिनाकाशे नेक्ष्यन्ते तन्मरीचयः ॥११३॥
नेयं चन्द्रतनूः किन्तु श्रीरियं वृषभानुजा ।
यैकदेशे स्थिता व्याप्नोत्यमुं त्वां च स्वदीप्तिभिः ॥११४॥
एवं नर्म्मालिभिस्तन्वन् वृन्दयासौ दृशेरितः ।
कान्ता-सन्दर्शनोत्कण्ठः प्राविशत् स्वर्णमन्दिरम् ॥११५॥

---

सखियो ! तुम्हारी सखी श्रीराधा कहाँ हैं ? ( सखी ) अपने गृह में, ( श्रीकृष्ण ) उनको छोड़ तुम क्यों आयीं ? ( सखी ) हम सूर्य पूजा के लिए फूल बीनने आयीं हैं। ( श्रीकृष्ण ) तो उनके अंग का सौरभ कैसे आ रहा है ? ( सखी ) हमारे अंगों से उनके अंग का मिलाप हुआ है इसी से हमारे अंगों से ही राधा-अंग का सौरभ निकल रहा है, ( श्रीकृष्ण ) यह बात मिथ्या है, ( सखी ) अच्छा, मिथ्या ही सही ॥११२॥

श्रीकृष्ण सखियों के बचन को मिथ्या सिद्ध करने के लिए कहते हैं: जैसे चन्द्रमा बिना आकाश में चाँदनी के दर्शन नहीं होते वैसे ही श्रीराधा बिना तुम्हारा यहाँ बन में आना सम्भव ही नहीं है ॥११३॥

सखियाँ बोलीं, ये श्रीराधा चन्द्रांगी नहीं हैं ये हैं बृषभानुजा-श्री अर्थात् बृषराशि में स्थित भानु अर्थात् ज्येष्ठ मास के सूर्य की कान्ति हैं जो एक स्थान में रहकर ही चन्द्रमा और तुमको अपनी कान्ति द्वारा व्याप्त कर रही है अर्थात् चन्द्रमा को मलिन कर तुमको उत्कंठित कर रही है ॥११४॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण सखियों के साथ उपहास का बिस्तार करते हुए प्रियतमा के दर्शन के लिए उत्कंठित होकर बृन्दादेवी के संकेत पर स्वर्णमन्दिर में जा प्रविष्ट हुए ॥११५॥

राधा-कान्त्युच्छलत् स्वर्णगेहकान्त्याखिले कृते ।
पीताद्वैतेऽन्तरेऽपश्यत् सर्व्वं हेममयं हरिः ॥११६॥
तावत् स्वकान्ति-मिलनात् प्रोच्छलन्त्या च तत्त्विषा ।
व्याप्तं सापश्यदत्रत्यं सर्व्वं मरकत-प्रभम् ॥११७॥
पञ्चालिकान्तरेऽन्विष्य पश्यन्नपि मुहुः प्रियाम् ।
स्तब्धां स्वालोकमुद्भीभ्यां मेने पञ्चालिकां प्रियः ॥११८॥
तां लालसा दयित-सङ्गतये पुरस्ता—
द्द्राग्वामतापसृतये च चकर्ष पश्चात् ।
तावन्मुदुत्थजडतैत्य नि वार्य्य तां तां
बामा सखीव निरुरोध हरेः पुरस्तात् ॥११९॥

---

उस स्वर्णमन्दिर की स्वर्णकान्ति से जो श्रीराधाअंग की स्वर्णकान्ति से दुगुनी उज्ज्वल बन रही, वहाँ की समस्त बस्तुएँ पीतवर्ण से अभिन्न होने के कारण श्रीकृष्ण सब स्वर्णमय ही दर्शन करने लगे ॥११६॥

इधर मन्दिर में स्थिता श्रीराधा भी अपनी कान्ति के मेल से श्रीकृष्ण की कांति उच्छलित होने के कारण मन्दिर की समस्त बस्तुओं को मरकतवर्ण ( हरे रंग ) से रंजित देखने लगीं ॥११७॥

प्रियतम श्रीकृष्ण स्वर्ण-पंचालिकाओं ( प्रतिमाओं ) के मध्य में ढूँढते हुए प्रिया को बारंबार देखते तो हैं परन्तु अपने दर्शन के आनंद व भय से भी स्तब्ध बनी हुई प्रियतमा को स्वर्णप्रतिमा ही समझ बैठते हैं ॥११८॥

ऐसी अवस्था में श्रीराधा को प्रियतम से मिलने की लालसा आगे से खींचने लगी और शीघ्र गमन से हटाने के लिए वामता पीछे से खींचने लगी। इसी समय प्रतिकूला सखी की भाँति आनन्द जनित जड़ताने आकर वामता को निवारण कर श्री—

ता स्प्रष्टु मुत्सुकतयेरितमन्तिकात्तं
त स्तब्धताध्वनि रुरोध बलान्मुदुत्था ।
तां लालसेत्य विनिवार्य्य हठात् प्रियां तं
प्रापय्य तत्करमधारयदाशु सोग्रा ॥१२०॥
तत्स्पर्शतः पुलक--कम्प--दृगम्बुकीर्णा
वैवर्ण्य-घर्मजलभाक् तरलायताक्षी ।
पश्यन्त्यमुं कुटिल--चिल्लिलता--तिरोदृक्--
प्रान्तेन सा प्रिय-करात् स्वकरञ्चकर्ष ॥१२१॥
स्मेरारुणान्त--कुटिलाश्रु--कलाञ्चिपद्म--
हेलोल्लसच्चपल--लोचनमुत्स्मिताद्रम् ।

---

राधा का निरोध कर लिया अर्थात् वे श्रीकृष्ण की ओर गमन करने में असमर्थ हो गयीं। तात्पर्यः श्रीकृष्ण के दर्शन होने पर श्रीराधा में प्रथम लालसा, वामता और अन्त में स्तम्भ नामक सात्त्विक भाव उदय हुआ ॥११९॥

तब उत्सुकता ने श्रीराधा को स्पर्श करने की इच्छा से श्रीकृष्ण को उनके समीप प्रेरित किया। परन्तु आनन्दजनित स्तब्धता ( निश्चेष्टता ) ने बीच में ही रोक लिया अर्थात् समीप न जा सके। तब उग्र लालसा आकर स्तब्धता को हठात् निवारण कर श्रीकृष्ण को श्रीराधा समीप ले गयी और उसने श्रीराधा का हस्त श्रीकृष्ण के हस्त में समर्पित कर दिया ॥१२०॥

श्रीकृष्ण के कर-स्पर्श से श्रीराधा के अंगों में कम्प, अश्रु, वैवर्ण्य ( रंग का परिवर्त्तन ) व स्वेद व्याप्त हो गये, नेत्र चंचल व आयत हो गये और उन्होंने नेत्रों के कोने से कुटिल कटाक्षपात करते हुए अपने हस्त को प्रियतम के हस्त से खींच लिया ॥१२

कण्ठाध्व--खञ्जित--सहुङ्कृति--भर्त्सनोक्ति
प्रेद्याभितां मुदमवाप हरिः प्रियास्यम् ॥१२२॥
नासारसज्ञा-श्रुतिनेत्रवर्णाभिलुब्धैः स्वतत्ताद्विषये प्रियौ मिथः।
तौ लुण्ठयामासतुरङ्गनीभृतं प्रिया-छलाच्छन्नमयं बलात् स्फुटम ॥
गूढौ पुनः स्वर्ण-घटौ विमोषितु सरीसृपन्तं निजकञ्चुकान्तरे।
कामाङ्कुशाख्यं करतस्करं हरेः करेण साऽरुद्ध परं न वाञ्छितम् ॥१२४
इति सुमधुर--लीलानन्द--सिन्धौ निमग्ने
शिथिलित-तनुचित्तौ प्रेयसि प्रेयसी सा ।

---

जिस मुखमंडल पर नयनों में कुछ तो हँसी है, कुछ कोनों में लाली है और जो नयन कुटिल हैं, हेला ( सुरति प्रति अत्यन्त आसक्ति ) से उन्नमित और चंचल हैं, जिनकी पलकें अश्रुओं से कुछ भीगी हैं, जो मुखमंडल मधुर हँसी से स्निग्ध हैं, जहाँ कंठ से हुँकार निकलते न निकलते ही बीच में भंग हो गया है तथा जो मुख भर्त्सनावाक्यों से पूर्ण है, प्रियतमा का ऐसा मुख-मंडल अवलोकन कर श्रीकृष्ण को अपार आनन्द प्राप्त हुआ ॥१२२

नासिका, जिह्वा, कर्ण, नयन व देह ( ये सब इन्द्रियाँ अपने अपने विषय गन्ध, रस, शब्द, रूप व स्पर्श में लुब्ध होने के कारण श्रीराधा व श्रीकृष्ण दोनों अपनी अपनी इन्द्रियों के द्वारा अपने अपने विषय अर्थात् परस्पर के अंगों का हरण करने लगे अर्थात् दोनो दोनो के श्रीअंग से अपना अभीष्ट सिद्ध करने लगे ॥१२३॥

श्रीकृष्ण के हस्त रूपी तस्कर गुप्त दो कनक कलश चुराने के लिए श्रीराधा की कंचुकी में कामांकुश की भाँति प्रवेश करने पर श्रीराधा उन तस्करों को रोक देने में तो सफल हुई परन्तु श्रीकृष्ण की उस वासना को रोकने में असमर्थ ही रहीं ॥१२४॥

प्रियसह--निज--लीलालोकनायागताली—
वलितमुदित-वाम्या कुट्टिमं प्राप गेहात् ॥१२५॥
हरिरपि रसभङ्गैः प्रापितस्तत्समीपं
तदवकलनभीत्या सा निलिल्ये सखीषु ।
स पुनरिह विचिन्वन् तासु तां तच्छलात्ताः
प्रणय—कुटिल--दृष्टीः संस्पृशन् मोदमाप ॥१२६॥
यदपि हृदि विवृद्धां काञ्चिदाशान्तयोस्तां
न्यरुणदतिवलिष्ठा वामतैव प्रियायाः ।
तदपि सुखसमृद्धिं प्रापतुस्तावुदग्रां
प्रथयति हि सुखाब्धीन् वामताप्यङ्गनानाम् ॥१२७॥

---

इस प्रकार श्रीकृष्ण के सुमधुर लीला के आनन्द सागर में निमग्न होने पर उनके अंग व मन शिथिल हो गये, तो प्रियतमा श्रीराधा प्रियतम सहित अपनी लीला के दर्शन को आयी हुई सखियों को लेकर बाम स्वभाव के कारण गृह मध्य स्थित न रह वहाँ से निकल बाहर वेदी पर आ विराजीं ॥१२५॥

श्रीकृष्ण भी रसतरंगों द्वारा प्रेरित हो श्रीराधा के समीप आ उपस्थित हुये तो उनको देखकर श्रीराधा इस भय से कि ये मुझे पकड़ लेंगे सखियों के बीच में जा छिपीं। तब श्रीकृष्ण प्रिया को ढूंढते हुए प्रणय कुटिल दृष्टि वाली सखियों के अंगों को स्पर्श करते हुए परमानन्द को प्राप्त हुए ॥१२६॥

श्रीराधाकृष्ण के मन में जो आशा बढ़ती जा रही थी, उसको श्रीराधा की अतिशय बलवती बामता ने आकर हठात् निरोध कर दिया ( रोक दिया )। तथापि उससे दोनों को अपार सुखसमृद्धि ही प्राप्त हुई कारण कि स्त्रियों की बामता अर्थात् प्रतिकूलता भी सुख सागर को बढ़ाया ही करती है ॥१२७॥

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः पूर्वनिशाविलास-वलितोऽगादेकविंशाभिधः ॥२१॥

## :XX: ❀ अथ द्वाविंशः सर्गः ❀ :XX:

तावुत्कौ लब्धसङ्गौ बहुपरिचरणैर्वृन्दया राध्यमानौ
प्रेष्ठालीभिर्लसन्तौ विपिन-विहरणैर्गानरासादिलास्यैः ।
नानालीला-नितान्तौ प्रणयि-सहचरीवृन्द-संसेव्यमानौ
राधाकृष्णौ निशायां सुकुसुम-शयने प्राप्तनिद्रौ स्मरामि ॥१॥

---

इस प्रकार यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य में पूर्वनिशा अर्थात् प्रदोषकालीन लीला वर्णनात्मक इक्कीशवाँ सर्ग समाप्त हुआ। यह श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूपगोस्वामी की सेवा का फल है, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीमज्जीवगोस्वामी के संग से उदित है, तथा श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वर के प्रभाव से प्रादुर्भूत है ॥२१।

जो श्रीराधागोविन्द प्रदोषकाल में परस्पर मिलन के लिए उत्कण्ठित होने के अनन्तर अब मिले हुए हैं एवं प्रिय सखी-समूह सहित वृन्दादेवी के बहुविध सेवा द्वारा आराधित हैं, तथा उन सखियों के संग वन-विहार, गान व रास नृत्यादि में अत्यन्त

वृन्दा सवृन्दाथ सहालिवृन्दौ वृन्दावनेशावनुनाथ्य नाथौ ।
तदालयालिन्दमनिन्दशोभं पूर्णेन्दु-कान्त्युज्ज्वलितं निनाय ॥२॥
सा तत्र तौ पुष्प-चितान्तरायां सुचीन-वस्त्रास्तरणान्वितायाम् ।
कलिन्द-कन्यानिल-शीतलायां न्यवीविशत् काञ्चनवेदिकायाम् ॥३
आवेशनादालिगणोपनीतै-र्विचित्रपुष्पाभरणैश्च माल्यैः ।
ताम्बूल-गन्ध-व्यजनैः सुतोयैः सा तौ निजेशौ सगणौ सिषेवे ॥४॥
तत् काननं तां रजनीं प्रियास्ताः कृष्णां च तां तत्पुलिनानि तानि ।
समीक्ष्य कृष्णो हृदि जातयाभवत् स प्रेरितो रासविलासवाञ्छया ;

---

श्रान्त होने पर प्रणयवती सहचरियों के व्यंजन, कर्पूर, रजल, ताम्बूल, पाद-सम्बाहन आदि सेवा द्वारा सेवित होकर निशा-काल में कुसुम-शय्या पर शयन करते हैं, मैं उन श्रीराधाकृष्ण का स्मरण करता हूँ ॥१॥

( पूर्व सर्ग के १२५ वें श्लोक में वर्णित लीला के ) अनन्तर श्रीवृन्दादेवी अपने गण सहित श्रीवृन्दावन के अधीश्वर श्रीराधाकृष्ण से प्रार्थना कर उनको उस रत्नमन्दिर के बरामदे पर पधरा कर ले गयीं। वह बरामदा उत्कृष्ट शोभायुक्त एवं पूर्णचन्द्र की ज्योत्स्ना से उज्ज्वल बना हुआ था ॥२॥

वहाँ उसके मध्यभाग मे कंचन-वेदी पर उनको विराजमान कराया। वह वेदी सूक्ष्मवस्त्र द्वारा आच्छादित एवं कलिन्द-कन्या यमुना स्पर्शकारी पवन से शीतल थी ॥३॥

तब शिल्पशाला से सखियों द्वारा लायी हुई विचित्र कुसुमा-लंकार, माला, ताम्बूल, गन्ध, व्यजन व शीतल जल से वृन्दा-देवी ने निजेश्वर श्रीराधाकृष्ण की यथोचित सेवा की ॥४॥

इधर श्रीकृष्ण ऐसी रजनी, प्रिया वर्ग व पुलिन का अव-लोकन कर हृदय में उत्पन्न रासविलास की वाञ्छा से प्रेरित हुए

सगणोऽरण्य-विहृतिश्चक्रभ्रमण-नर्तनम् ।
हल्लीसकं युग्मनृत्यं ताण्डवं लास्यमेककम् ॥६॥
तत्तत्प्रबन्धगानञ्च सनृत्यंरतिनर्मणी ।
जल-खेलेत्यमून्येष रासाङ्गानि व्यधात् क्रमात् ॥७॥ युग्मकम्
ज्योत्स्नोज्ज्वलं मन्दसमीर-वेल्लितं स्वसङ्गमोद्दीप्तवसन्तजृम्भितम् ।
नृत्यन्मयूरं पिक-भृङ्ग-नादितं वनं समीक्ष्यात्र विहर्तु मैच्छत् ॥८॥
वंशीगानेन तास्वेष ज्ञापयामास वाञ्छितम् ।
तन्नाम्नैवानुगानेन स ताभिश्चानुमोदितः ॥९॥

---

अर्थात् इन सब के दर्शन से उनके हृदय में रासविलास की इच्छा उदय हुई ॥५॥

रासलीला के अंगों का वर्णनः-श्रीकृष्ण ने रास में क्या क्या विषय होंगे, उनका क्रम से विधान किया, यथा समस्त गण सहित वन-विहार, चक्रभ्रमण सहित नृत्य, हल्लीसक, (स्त्रियों का मंडल-नृत्य) युग्मनृत्य (स्त्री-पुरुष की जोड़ी का नृत्य) तांडव (पुरुष-नृत्य), लास्य (स्त्रीनृत्य), एकाकी नृत्य, सखियों के रचित प्रबन्ध-गान, नृत्य, रति, परिहास व जलकेलि इत्यादि रास के अनेक अंगों का विधान किया ॥६-७॥

अब श्रीकृष्ण ने बन में विहार करने की इच्छा की। बन की शोभा-वर्णन करते है कि वह ज्योत्स्ना से उज्ज्वल, व मन्द मन्द वायु के झोंकों से चंचल बना हुआ था। श्रीकृष्ण के संगम से उद्दीप्त (अतिशय शोभायमान) एवं बसन्त की शोभा से समृद्ध था अर्थात् नवीन पल्लव, पुष्पादि से सुशोभित था। जहाँ तहाँ मोर नाच रहे थे, कोयलें गा रहे थे और भौंरे गुञ्जार कर रहे थे। ऐसे बन के दर्शन करके उसमें विहार करने की इच्छा की ॥८॥

कानने सुधांशु-कान्ति-शुभ्र-मञ्जु-विग्रहे
पुष्पिते समन्त्वयाद्य मे प्रियालिवर्ग हे।
रन्तुमत्र वाञ्छितानि चित्तवृत्तिरुद्वहे—
देवमस्तु कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कान्त हे ॥१०॥
उत्थितः स्वरमणीगणसङ्गी वृन्दयाप्यनुगतो मृदु गायन्।
प्रत्यगं प्रतिलतं प्रतिकुञ्जं स प्रदक्षिणतया भ्रमति स्म ॥११॥
मृदु-मलयानिलेजित-लतातरुपत्रचयं
सुमधुर-पञ्चमध्वनि-कलाचन-कोकिलकम्।
ध्वनदलि--बर्हिणं प्रणयिनीगण-गीतगुणो
वनमवगाह्य तत् स रमते हरिरत्र मुदा ॥१२॥

---

तब श्रीकृष्ण ने वंशी-गान के द्वारा अपनी अभिलाषा को गोपियों को जनाया और गोपियों ने प्रत्युत्तर में कृष्णनामयुक्त गीत गाकर उसका अनुमोदन किया ॥९॥

अनुमोदन का प्रकार:—

हे प्रियतमाओ! इस कानन में आज तुम लोगों के साथ बिहार करने के लिए मेरे चित्त में अनेक प्रकार की अभि-लाषाएँ उदय हो रही हैं। अहा! इस समय वृक्ष व लताओं के अंग चन्द्रमा की किरणमालाओं से शुभ्र व मनोहर हो रहे हैं। यह प्रस्ताव श्रवण कर सखियाँ सब प्रफुल्लित होकर बोल उठीं हे कृष्ण! ऐसा ही होवे! हे कान्त! ऐसा ही होवे (सखियाँ अनेक होने के कारण सम्बोधन पद अनेक हैं) ॥१०॥

प्रथम वनविहार वर्णन करते हैं:—गोपियों के ऐसे उत्तर को श्रवण कर श्रीकृष्ण अपनी रमणियों सहित उठे और मृदु मृदु स्वर से गान करते हुए प्रति वृक्ष, प्रतिलता एवं प्रतिकुंज की प्रदक्षिणा करते करते भ्रमण करने लगे वृन्दादेवी भी उनका अनुगमन करने लगी ॥११॥

मूर्च्छोत्थिता इव पुनर्नवतामिवाप्ताः
स्नाता इवामृतरसैर्मधुश्चित्रिता वा ।
वृन्दावने तरुलता-मृग-पक्षि-भृङ्गा
आसन् हरेर्वन-विहार-विलोक-हर्षात् ॥१३॥
कृत्वाग्रे द्विज--मृग--चञ्चरीक--वृन्दं
कृष्णेक्षोत्सुकमटवी--प्रहर्षिणीयम् ।
चन्द्रांशूत्कर--वलिता मरुच्चलारा--
द्यायान्तं स्वरितमिवाभ्युपैति कृष्णम् ॥१४॥
गौराङ्गीणां वपुःकान्ति-मिलितेन्दु-रुचा वनम् ।
विलिप्तं भाति धौतं वा जलेन कलधौतयोः ॥१५॥

---

अपने गुण-गान करती हुई प्रणयिनी गोपियों के साथ श्री-कृष्ण वन में प्रवेश कर आनन्दपूर्वक विहार करने लगे । उस विहार-वेला में वन के वृक्षों के पत्ते मृदु मलय समीर से हिलने लगे, सुमधुर पंचम स्वर में गान-निपुण कोयल बोलने लगे, एवं भ्रमर गुंजारने व मोर केका ध्वनि करने लगे ॥१२॥

मूर्च्छा भंग होने पर जैसे नवीन जीवन प्राप्त होता है, अमृत रस में स्नान करने के अनन्तर अथवा वसन्त ऋतु द्वारा जैसे लोकसमूह नवीन विलक्षणता को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार श्रीवृन्दावन के तरु-लता, पशु-पक्षी, भ्रमरगण-पहले श्रीकृष्ण-विरह से पीड़ित और क्षीण थे, अब वे श्रीकृष्ण के वन-विहार के दर्शन करके अतिशय आनन्द को प्राप्त हुए ॥१३॥

उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि यह वृन्दाटवी चन्द्रकिरणों संयुक्ता, पवनवेग से कम्पिता एवं श्रीकृष्ण-दर्शन से अत्यन्त हर्षिता होकर पक्षी, मृग व भ्रमरों को आगे कर समीप पधारे हुए श्रीकृष्ण का स्वागत-सत्कार कर रही हो ॥१४॥

श्रीराधिकाङ्ग-द्युतिवृन्दसङ्गमात् कृष्णाङ्गचक्रद्युतयो विरेजिरे।
सुधांशु-मूर्त्तेद्यु ति-पुञ्जरञ्जिताश्चलत्तमालाग्रदलालयो यथा ॥१६
स्वागताः स्थ सुखिनः खगा मृगाः शर्म्म वो लसति किं नगा लताः।
भव्यमव्यवहितं मधुपा वस्तानपृच्छदखिलानिति कृष्णः ॥१७॥
किशलय-करभाक् सुपुष्पिताग्रा मधुप-पिकालि-निनाद-मञ्जुगाना।
पवन-गुरु-विचालिताटवीयं हरिमवलोक्य ननर्त्त नर्त्तकीव ॥१८॥
राधा-कृष्णावन्वनुचलतोऽसंख्यान् भृङ्गान्
श्रान्तान् मत्वा पाययितुमिव स्वं माध्वीकम्।

---

उस समय गौरांगिनी ब्रजसुन्दरियों की पीत अंग कान्ति से सम्मिलित चन्द्रमा की धवल किरणें समस्त बन के ऊपर ऐसी छायी हुई थीं मानो तो सोना और चाँदी के जल से ( कलधौत सोना-चाँदी ) स्नान करके बन बिराजमान होवे ॥१५॥

ज्योत्स्ना-रजनी में तमाल-पत्र जैसे चन्द्र की किरणमालाओं से रंजित होकर शोभा देता है, वैसे ही श्रीकृष्ण की चंचल देह-कान्ति श्रीराधा की गौर—कान्ति से सम्मिलित होकर शोभा देने लगी ॥१६॥

"हे पक्षियो ! तुम सुखी तो हो ? हे वृक्षो ! हे लताओ ! तुम अब तो कुशल में हो ? हे भौंराओ ! कुशल हो न, कोई बाधा तो नहीं है ?" इस प्रकार श्रीकृष्ण वन के समस्त प्राणियों से कुशल-क्षेम पूछने लगे ॥१७॥

पुनश्च:-यह वृन्दाटवी श्रीकृष्ण का दर्शन करके नर्त्तकी की भाँति नाचने लगी जो इसके कुसुमित डालों के अग्रभाग में कोमल कोयल हैं वे ही इसके हस्त हैं, भौंरों व कोयल की ध्वनि ही इसके मनोहर गान हैं, पवन से अतिशय चंचल होना ही इसका नृत्य है ॥१८॥

वातालीवेल्लत्किशलय--हस्तेनोत्फुल्ला
शश्वत् प्रेमार्द्राह्वयति मुदा वासन्तीयम् ॥१६॥
निज-कुलधर्म्ममपोह्य गोपिका सुखयति कृष्णमितीव शिक्षया।
अपि सुरभौ स्फुटिताथ तन्मुदे तमलिरुतैरिह नौति मालती ॥२०॥
चञ्चन्मत्ताभ्रमर-विलसितापाङ्गालोका कुसुमविहसिता।
नृत्यन्तीवानिल-चल-वपुषा मल्ली-वल्ली हरिमुदमवधीत् ॥२१॥
स्वसविधमयितं वीक्ष्य कृष्णं लताली
प्रमुदित-विहगध्वान-नान्दीमुखीयम्।
मलयज--पवनोल्लालसत्पल्लवैजत्
कर-विवृति-नयै र्नृत्यतीव प्रमोदात् ॥२२॥

---

श्रीराधाकृष्ण के अंग-सौरभ से खिंचे हुए संग२ चलने वाले असंख्य भ्रमरों को श्रान्त जान यह माधवीलता प्रेम से स्निग्ध व प्रफुल्लित होकर अपना मधु-पान कराने के लिए ही मानो वायु से हिलते हुए पत्ररूपी हस्तों के द्वारा उनको बुला रही है॥१६॥

"गोपिका अपने कुलधर्म को परित्याग कर श्रीकृष्ण को सुख दे रही है"-इस प्रकार की शिक्षा पा कर मालतीलता वसन्त में विकसित होकर मानो तो श्रीकृष्ण के आनन्द के निमित्त भ्रमर-ध्वनि द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति-कर रही है ॥२०॥

मल्लिकालता भी वायु से हिलते हुए अपने चंचल अंग द्वारा नृत्य, चंचल भ्रमरों के विलास रूपी नेत्रों द्वारा अवलोकन एवं कुसुम समूह द्वारा हास्य करती हुई मानो तो श्रीकृष्ण के आनन्द को बढ़ा रही है ॥२१॥

अन्य लताओं ने भी श्रीकृष्ण को अपने समीप आगत दर्शन कर प्रमुदित पक्षीवृन्दों की ध्वनि द्वारा मानों तो मंगला-चरण-पाठ तथा मलय-समीर के वेग से अत्यन्त चंचल पल्लव

प्रणयति कुञ्जावलिरपि गुञ्जा-ततिकृत-चित्रा कुसुम-विचित्रा ।
नवदल-तल्पाऽत्यलि-पिक-जल्पा सदयितकृष्णादिक-हृदि तृष्णाः ॥

राधा-शम्पालिङ्गित-देहेऽमृतवर्षे
मन्द्रध्वाने कृष्णपयोदे स्फुरितेऽग्रे ।
केकाध्वानैरुन्नतपिञ्छैः शिखिनीभि—
र्नृत्यत्यारान्मत्तमयूरावलिरुच्चैः ॥२४॥

ध्वनदलि-विहगं शीतवातेरितं परिणत-फलयुक् चन्द्रिकारूषितम् ।
विकच-कुसुम-सत्सौरभं श्रीहरे-र्वनमिदमतनोदिन्द्रियाणां मुदम् ॥

---

रूपी काँपती भुजाओं द्वारा परमानन्द में नृत्य आरम्भ कर दिया ॥२२॥

कुञ्ज श्रेणी भी गुंजाओं द्वारा श्याम, रक्त, श्वेतादि रंगों से चित्रित व विविध कुसुमों द्वारा परम मनोहर बन कर तथा नवीन पल्लवों की शय्या से सयुक्त होकर भ्रमर व कोकिलों की ध्वनि द्वारा प्रियतमा सहित श्रीकृष्ण व सखीवृन्द के हृदयों में विलास की लालसा जगाने लगी ॥२३॥

श्रीकृष्ण रूपी जलधर को श्रीराधारूपिणी सौदामिनी द्वारा आलिंगित होकर रूप सुधा की वर्षा एवं कण्ठ व वंशी की गंभीर ध्वनि करते हुए सन्मुख प्रकाशमान दर्शन कर मोरों का दल उन्मत्त हो पंख फैला फैला कर मोरनियों के साथ—समीप ही नृत्य करने लगा ॥२४॥

तब तो यह वृन्दावन श्रीकृष्ण के समस्त इन्द्रियों को आनन्द प्रदान करने लगा—भ्रमर व पक्षीध्वनि से कर्ण, शीतल वायु से त्वचा, पके फलों से रसना, ज्योत्स्ना से नेत्र तथा विकसित पुष्पों के श्रेष्ठ सौरभ से नासिका प्रमुदित होने लगे ॥२५॥

अथ दरफुल्लमशोकलता स्तवकयुग्मं वृषभानुसुता ।
स्वयमवचित्य हरेः श्रवसोश्चपलकरेण ददौ सुमुखी ॥२६॥
तदनु चलिता स्वयं हरिणाऽप्यसौ
प्रणय—कलहे सदाऽप्यपराजिता ।
तदपि स च तत्करादपहृत्य तत्
स्तवक—युगलं प्रियाश्रवसोर्न्यधात् ॥२७॥
सुकण्ठीभिः कण्ठीरव—मधुर—मध्याभिरभितः
कलं गायन्तीभिः सरसमनु गीतामलगुणः ।
स्पृशन्नङ्गान्यासां स्तवककुसुमाद्यर्पण—मिषा—
दकुण्ठामुत्कण्ठां निभृत—रतयेऽवर्द्धयदयम् ॥२८॥

---

अब वृषभानुनन्दिनी सुमुखी श्रीराधा ने अशोक—लता के अल्प विकसित पुष्पों के दो गुच्छे स्वयं चुनकर भाव के आवेग से चंचल श्रीहस्तों द्वारा श्रीकृष्ण के कर्णों में अर्पण किये ॥२६॥

तब श्रीकृष्ण श्रीराधा के कर्णों में धारण कराने के लिए दो अशोक के गुच्छे लाने चले तो श्रीराधा भी संग चलीं । वे दुबारा दो गुच्छों को श्रीकृष्ण के धारण कराने के लिए अग्रसर हुईं परन्तु श्रीकृष्ण ने उनके श्रीहस्त से छीन कर उनके ही कर्णों में पहना दी । यद्यपि श्रीकृष्ण के साथ प्रणय-कलह में श्रीराधा की ही सर्वदा जय होती है तथापि श्रीराधा के कर्णों में अशोक—स्तबक धारण कराते समय श्रीकृष्ण की ही जय हो गयी ॥२७॥

इधर सुमधुर कण्ठवाली, सिंह से भी क्षीण कटि वाली गोपियाँ श्रीकृष्ण के विमल गुणों का सरस मधुर गान कर रही हैं, श्रीकृष्ण स्तबक व पुष्प धारण कराने के छल से उनके अंग—प्रत्यंग को स्पर्श करते हुए निर्जन रति-विलास के लिए उनको अत्यन्त उत्कण्ठा को बढ़ाने लगे ॥२८॥

किलकिञ्चित-विब्बोक-बिलास-ललितादिकैः ।
कृष्णास्ता भूषिताश्चक्रे स्वसङ्गाद्भाव-भूषणैः ॥२६॥
स्ववर्णिताभिर्वल्लीभिरलिध्वनि-मिषादसौ ।
अनुगीतोऽनन्दयत्ताः पुष्पादानमिषात् स्पृशन् ॥३०॥
यद्यज्जगौ चन्द्रलतादिकं हरि—
स्तेनैव पश्चात् प्रियया युतं हरिम् ।
बर्णार्थयोः कापि बिपर्य्ययेण ताः
कृष्णस्य नाम्नाऽनुजगुः क चालयः ॥३१॥

---

तब अपने संग के कारण श्रीकृष्ण ने गोपियों को किल-किंचित, बिब्बोक ब ललित आदि भाव रूपी भूषणों से बिभूषित कर दिया—अर्थात् श्रीकृष्ण—संग के कारण उनके अ ंगों में ये सब भाव उदय होने लगे, यथा किलकिंचित्=गर्व, अभिलाष, रुदन, स्मित, असूया, भय व क्रोध इन सात् भावों का मेल; विब्बोक=चित्त के चाहने पर भी गर्व व मान के कारण अना-दर भाव; ललित=अ ंगों की भंगी चाल, भ्रू-बिलास का कोमल, मनोहर होना—इत्यादि ॥२६॥

जिन लता-बेलों का बखान स्वयं श्रीकृष्ण करते चलते हैं और जिन पर बैठे हुए भौंरे अपनी गु ंजार के मिष से श्रीकृष्ण के पीछे पीछे गाते हुए चलते लगते हैं, उन लताओं को पुष्प-चुनने के छल से स्पर्श करते हुए श्रीकृष्ण उनको सुखी करते हैं ॥३०

किसी समय श्रीकृष्ण चन्द्रमा व लता आदि को लक्ष्य करके जो जो पद बर्ण, शब्द, स्वर, ताल, लय, ग्राम व मूर्च्छना सहित गाते हैं तो सखियाँ उसी क्षण उन उन पदों के बर्ण व अर्थ को बिपरीत करके प्रियायुक्त श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके श्रीकृष्ण के नामों को गाने लगती हैं ॥३१॥

जगदाह्लादकशीलः प्रमदाहृदि बर्द्धित-मनसिज-पीलः।
राधानुराधिकान्तर्विलसन् शुशुभे कलानिधिः सोऽयम् ॥३२॥
जगदाह्लादकशीलः प्रमदाहृदि वर्द्धित-मनसिज-पीलः।
राधानुराधिकान्तर्विलसन् शुशुभे कलानिधिः सोऽयम् ॥३३॥
सन्मालत्यामस्यां मालत्यां मालतीभिः फुल्लाभिः।
सवेष्टित इह परितः पुन्नागोऽयं विराजते गहने ॥३४॥

---

यथाः—श्रीकृष्ण ने प्रथम ऐसे गायन कियाः—जिसका स्वभाव जगत् को आनन्दित करन वाला है, जो प्रमदाओं ( रमणियों ) के मन में कामव्यथा को बढ़ाने वाला है, वह कलानिधि चन्द्र राधा व अनुराधा नामक दो नक्षत्रों के मध्यस्थित होकर शोभा को प्राप्त हो रहा है। ( यहाँ इस श्लोक में अर्थ चन्द्रपरक है-इसी का अर्थ अगले श्लोक में श्रीकृष्णपरक है। इसी प्रकार आगे भी ४१ वें श्लोक तक दो-दो श्लोक अक्षरशः समान-हैं। ४२-४३ में एक-दो अक्षर बदले गये हैं। एक ही प्रकार के शब्दों का होना अनुप्रासालंकार है तथा शब्द एक-से होते हुए भी अर्थ भिन्न होना श्लेषालंकार है ) ॥३२॥

गोपियों ने भी पूर्व श्लोक ही गाया परन्तु उसका अर्थ भिन्न है, यथाः—जिनका स्वभाव जगत् को आनन्दित करने वाला है, जो प्रमदाओं के हृदय में काम-व्यथा को बढ़ाने वाले हैं, वे कलानिधि अर्थात् विलास-वैदग्धी आदि सकल कलाओं के आश्रयस्वरूप श्रीकृष्ण, श्रीराधा व अनुराधा अर्थात् ललिता के मध्य में स्थित शोभायमान हैं ॥३३॥

श्रीकृष्ण ने गायाः—प्रशस्ता मालती अर्थात् ज्योत्स्ना उसके सहित इस मालती अर्थात् रजनी में प्रफुल्लित मालती नाम की लता द्वारा परिवेष्टित होकर पुन्नाग अर्थात् नागकेशर इस वन में शोभित है ॥३४॥

सन्मालत्यामस्यां मालत्यां मालतीभिः फुल्लाभिः ।
संवेष्टित इह परितः पुन्नागोऽयं विराजते गहने ॥३५॥
माधवालिङ्गिता माधवी भ्राजते माधवश्चानया फुल्लया राजते ।
विश्वमप्येतयोः सङ्गमानन्दत-श्चक्षुषीनन्दयन् मोदते सर्व्वतः ॥३६
माधवालिङ्गिता माधवी भ्राजते माधवश्चानया फुल्लया रजते ।
विश्वमप्येतयोः सङ्गमानन्दत-श्चक्षुषी नन्दयन् मोदते सर्व्वतः ॥३
संफुल्ला संफुल्लो मिलनान्मिथ इह वने सदालीनाम् ।
काञ्चनवल्ली चासौ सुखदा तापिच्छ-मौलिश्च ॥३८॥

---

गोपियों ने भी यही पद गाया परन्तु भिन्न अर्थ में—यथा:—प्रशस्ता ज्योत्स्ना युक्त इस रजनी में प्रफुल्लित मालती अर्थात् नायिकाओं द्वारा संवेष्टित होकर पुन्नाग अर्थात् पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्ण इस बन में विराजमान हैं ॥३५॥

श्रीकृष्ण ने गाया:—माधवी ( लता ) माधव ( बसन्त ) द्वारा आलिंगिता होकर शोभा पा रही है तथा माधव भी माधवी द्वारा आलिंगित होकर शोभा पा रहे हैं और इन दोनों के संगमानन्द से समस्त ब्रह्माण्ड ही सर्वतः आनन्दित हो रहा है ॥३६॥

गोपियों ने अर्थ बदल कर यही पद गाया, यथा माधवी ( श्रीराधा ) माधव ( श्रीकृष्ण ) द्वारा आलिंगिता होकर शोभा पा रही है तथा माधव ( श्रीकृष्ण ) माधवी ( श्रीराधा ) द्वारा आलिंगित होकर शोभा पा रहे हैं—इत्यादि पूर्ववत् ॥३७॥

श्रीकृष्ण:—इस बन में प्रफुल्लिता कंचनलता एवं प्रफुल्लित तमाल वृक्ष परस्पर सम्मिलन से सदा भ्रमरों के लिए सुखप्रद होकर शोभित हैं ॥३८॥

संफुल्ला संफुल्लो मिलनान्मिथ इह वने सदालीनाम् ।
काञ्चनवल्ली चासौ सुखदा तापिञ्छ-मौलिश्च ॥३९॥
शंसन्निव मदनाज्ञां मदयन् हृदयं कलं गायन् ।
नव-पद्मिनीषु रात्रौ बिलसति मधुसूदनश्चित्रम् ॥४०॥
शंसन्निव मदनाज्ञां मदयन् हृदयं कलं गायन् ।
नवपद्मिनीषु रात्रौ बिलसति मधुसूदनश्चित्रम ॥४१॥
रजनीरमणस्तमसां शमनो नलिनीकुलमुन्महसामपनुत् ।
शितिगुर्गगने शितिभे बिघने सुबभौ कुमुदावक एष मुदा ॥४२॥
रमणीरमणस्तमसां शमनः खलिनी-कुलमुन्महसामपनुत् ।
शितिगुर्गहने शितिभे विघने बिभवौ कुमुदाकर एष मुदा ॥४३॥

---

गोपियाँ:—इस बन में प्रफुल्लिता कंचनलता श्रीराधा व प्रफुल्लित तमाल वृक्ष श्रीकृष्ण परस्पर सम्मिलन द्वारा सदा सखियों के लिए सुखप्रद होकर विराजमान हैं ॥३६॥

श्रीकृष्ण :-मधुसूदन (भ्रमर) अपने मधुर गायन द्वारा श्रोताओं के हृदय को आनन्दित कर मानो तो मदन की आज्ञा का प्रचार करता हुआ रात्रि में नवपद्मिनियों के संग विलास कर रहा है-यह बड़ा आश्चर्य है ॥४०॥

गोपियाँ :-मधुसूदन ( श्रीकृष्ण ) अपने मधुर गायन द्वारा हृदय को आनन्दित कर मानो तो मदन की आज्ञा का प्रचार करते हुए रात्रि में नवपद्मिनियों ( नवीन उत्तम नारियों ) के संग चित्र ( नाना विध ) विलास कर रहे हैं ॥४१॥

श्रीकृष्ण:— यह अन्धकार नाशक रजनीकान्त शितिगु अर्थात् धवल कान्ति वाला शशधर ( चन्द्रमा ) विघन अर्थात् मेघशून्य उज्ज्वल गगन में स्थित होकर कुमुदसमूह की रक्षा करता हुआ कमल कुल के आनन्द को नष्ट कर रहा है ॥४२॥

कमलिनी-मलिनीकरणे पटु-र्विधुरिता धुरितानिह चक्रवान् ।
निविदधद्विदधद्भगणे धृतिं न स मुदे समुदेति विधुर्मम ॥४४॥
स सुदृशां सुदृशां रुचिकृद्रु चि-र्विरहिता रहिता निज-तारकाः ।
सुविदधद्विदधत् कुमुदावन वरमुदे स मुदेति विधुर्हि नः ॥४५॥
इत्थं गायन् मधुर-विपिन-श्रीभरालोकतृप्तः
कान्तावल्लीरपि विरचयन् स्वाभिमर्द्दन फुल्लाः ।
भ्रामं भ्रामं भ्रमर-निकरैः स्वानुगैर्वेष्टितोऽसौ
ताभिर्वंशीवट-विटपिनः कुट्टिमं प्राप कृष्णः ॥४६॥

---

गोपियाँ श्लोक के कोई कोई अक्षर को बदल कर कहती हैं:- रमणियों में रमण करने वाले, अन्धकार को नाश करने वाले, कृष्णकान्ति वाले ये श्रीकृष्ण विघन अर्थात् विशेष रूप से घने व शितिभ अर्थात् नीले बन में स्थित होकर कु-मुद अर्थात् कुत्सित (बुरे कामों) में ही मुद अर्थात् हर्ष मानने वाले खलिनी-कुल अर्थात् दुष्टजनों के आनन्द को नष्ट कर रहे हैं ॥४३॥

श्रीकृष्णः—कमलिनियों को मलिन करने में निपुण विधु ( चन्द्रमा ) चकोरों को अत्यन्त दुःख पहुँचाता हुआ और नक्षत्रों को धीरज बँधाता हुआ सम्यक् रूप से उदय हो रहा है ॥४४॥

गोपियाँ:—विधु अर्थात् ( १ ) विशेष प्रकार से दुःख खंडन करने वाले, एवं ( २ ) सुख का विधान करने वाले श्रीकृष्ण सुनयनी ब्रजांगनाओं के सुन्दर नयनों के रुचिकर बने हुए अपनी तारामंडली अर्थात् प्रेयसी वर्ग को विरहशून्य करते हुए तथा पृथिवी के आनन्द को बढ़ाते हुए हमें उत्कृष्ट आनन्द प्रदान करने के लिए उदय हो रहे हैं ॥४५॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण गाते हुए तथा बन की अतिशय शोभा से सुखी होते हुए गोपियों व लताओं को नख अथवा अंग के

तत्रोपविष्टः स ददर्श कृष्णां स्वदर्शनानन्द-विवृद्धतृष्णाम्।
फेनालिहासां खगनाद-गानां स्वसङ्गमायोत्क-हृषीक-वर्गाम् ॥४७
स्पर्शोत्सवायोच्छलदुर्मिहस्तां लोलाब्ज-रक्तोत्पल-फुल्लनेत्राम्।
समुच्छलन्नक्रमुखोच्चनासा-मावर्त्त-गर्त्तोत्सुक-कर्णपालीम् ॥४८॥
पुलिनानि समीक्ष्यासौ तत्र रन्तुमना हरिः।
कृष्णापारं गन्तुकामः समुत्तस्थौ प्रियागणैः ॥४९॥
अथागतानां स्वजलान्तिकं सा तेषां पदाब्जेषु तरङ्ग-हस्तैः।
समर्प्य पद्मान्यथ तानि कृष्णा तैस्तैः स्पृशन्तीव मुहुर्ववन्दे ॥५०॥

---

स्पर्श द्वारा सुखी करते हुए, पीछे पीछे उड़ते हुए भ्रमरों से वेष्टित होकर वंशीवट वृक्ष की वेदी पर जा पहुँचे ॥४६॥

तथा उस पर बैठ कर श्रीकृष्ण ने कृष्णा ( यमुना ) के दर्शन किये। श्रीकृष्ण के दर्शन के आनन्द से यमुना की तृष्णा ( लालसा ) अत्यन्त बढ़ चली। शुभ्र फेन ( झाग ) के रूप में उसके वदन पर सुन्दर हँसी छा गयी, जलचर-पक्षियों की ध्वनि के रूप में वह गाने लगी तथा श्रीकृष्ण से मिलने के लिए उसकी समस्त इन्द्रियाँ उत्सुक हो उठीं ॥४७॥

श्रीकृष्ण के अंग को स्पर्श करने के लिए उसके तरंग रूपी हस्त उछलने लगे, रक्तपद्मरूप नयन चंचल हो उठे, नक्र आदि जलजन्तु रूप नासिका ऊपर प्रकट हो आयी, तथा भँवर रूप कर्णश्रेणी उत्सुक हो उठीं ॥४८॥

तब—श्रीकृष्ण ने यमुना के मनोहर विस्तृत पुलिनस्थली के दर्शन कर वहाँ विहार करने की इच्छा की। अतएव यमुना पार जाने की इच्छा से प्रियाओं सहित वहाँ से उठे ॥४९॥

वे जब यमुना जल के समीप आये तो यमुना ने तरंग रूप हस्त द्वारा उनके चरणों पर कमलों को अर्पण किये तथा उन सब

गतिशिक्षिते मुररिपोर्वनितानां द्रुतमभ्यसन्निव निजैर्गति-नादैः
तमिहाभ्युपैति पुरतस्तटकच्छात् कलहंसिकालि-वलितः कलहंसः ।
स्खलद्गतितयाच्युतागति-मुदा समृद्धजलतां जगाम यमुना ।
स्वपारमयितुं समुत्कमथ तं समीक्ष्य तनुतां जलोद्धतगतिः ॥५२॥
जानुद्वयस-तोयायां कृष्णायां कृष्णतुष्टये ।
गुल्फदघ्नजला आसन् निर्झराः पुलिनावृताः ॥५३॥
तीर्त्वा तीर्त्वा सुखेनैतान् क्रमेण निर्झरान् हरिः ।
बभ्राम पुलिनेष्वेषु विहरन् स-प्रियागणः ॥५४॥

---

समर्पित कमलों को मानो स्वयं स्पर्श करके उनकी बारंबार बन्दना की ॥५०॥

श्रीकृष्ण प्रियाओं के गमन काल में उनके भूषणों की मधुर शिंजन ( ध्वनि ) को सुनकर मानो तो उस ध्वनि का अभ्यास करने के लिए, अर्थात् अपने कण्ठ से वैसा ही मधुर शब्द निकालने के लिए कलहंस हंसिनियों के साथ यमुना किनारे के जल से बाहर भूमि पर निकल निकल कर इनके समीप आने लगे ॥५१॥

श्रीकृष्ण—आगमन के आनन्द से यमुना की गति स्तब्ध हो ( रुक ) कर उस का जल बढ़ गया था परन्तु जब अपने पार जाने के लिए श्रीकृष्ण को उत्सुक देखा तो यमुना का जल व वेग क्षीण हो गया ॥५२॥

श्रीकृष्ण के परितोष के लिए यमुना ने अपने जल को घुटनों तक कर लिया तो पुलिन पर की अन्य धाराओं का जल टकना तक हो गया ॥५३॥

श्रीकृष्ण व प्रियावर्ग उन धाराओं को बारंबार सहज ही पार हो हो कर पुलिन समूह में विचरने लगे ॥५४॥

साकूत-सस्मित-बिलोकन नर्म्मजल्पै—
रालिङ्गन--स्तननखार्पण--चुम्बनाद्यैः ।
तासां स्वसङ्ग--मनोज--बिलासतृष्णां
कुर्व्वन् मुहुः स बिपुलां बिलालस कृष्णः ॥५५॥
ततः पुलिनमागत्य स चक्रभ्रमणाभिधम् ।
तत्र रन्तुमनाश्चक्रमारुरोह प्रियागणैः ॥५६॥
बितस्ति-मात्रोच्च-निखात-शङ्कुग-त्रिनेमि-चक्रोपरि राधया सह ।
स्थितः स मध्येऽन्यसखीगणैः क्रमाद्बहिश्चकाराथ सुमण्डलत्रयीम् ॥
आवृत्य पूर्णं रसधारया हरिं राधोपगूढं किल मण्डलत्रयी ।
सुवर्णबल्ल्यश्चि-तमालशाखिनं स्वर्णालबालालिरिबावभावसौ ॥५८

---

श्रीकृष्ण बिशेष अभिप्राय से हास्य, अबलोकन, परिहास, जल्प, आलिंगन, स्तनों पर नखाघात, मुखचुम्बन आदि नाना बिध क्रियाओं द्वारा गोपियों की बिलासतृष्णा को अतिशय रूप से बढ़ाते हुए बिहार करने लगे ॥५५॥

पश्चात् श्रीकृष्ण ने पुलिन पर आगमन कर बिहार करने की बासना से चक्रभ्रमण नामक चक्र पर प्रियाओं सहित आरोहण किया ॥५६॥

चक्रभ्रमण का प्रकार यह है कि भूमि पर गड़ी हुई एक बिलांत भर कीली के ऊपर तीन नेमियों ( परिधि, घेरा ) वाला एक चक्र ( गोल थाल ) है, उस चक्र के मध्यभाग में श्रीराधा-सहित श्रीकृष्ण चढ़े, तथा तीन नेमियों पर सखियों की तीन मण्डलियाँ खड़ी हो गयीं ॥५७॥

यह तीन सखी मण्डलियाँ रसोल्लास पूर्ण श्रीराधा द्वार आलिंगित श्रीकृष्ण को मध्य में करके चारों ओर ऐसी शोभ

आदिश्य हल्लीशक-केलि-रङ्गे राधा-मुकुन्दौ ललितादिकालीः ।
तत्रांस-विन्यस्त-भुजौ मिथस्ता-वनृत्यतां लास्य-विदां वरिष्ठौ ॥५९
नृत्यन्तितम्बिनीनां तद्दृग्ध्य-पदचालनैः ।
कुलाल-चक्रवच्चक्रं भ्रमदासीद्राधोरपि ॥६०॥
विधाय राधां ललिता-विशाखयो-र्मध्ये तदंसार्पित-बाहुरच्युतः ।
गायन् स गायद्भिरलं कदाप्यसौ बभ्राम नृत्यन् सह नर्त्तकीगणैः ॥
लघुभ्रमच्चक्रगतेः समा तासां गतिः क्वचित् ।
क्वचिन्मन्दा क्वचिच्छीघ्रा विविधासीत् प्रिया हरेः ॥६२॥

---

देने लगीं जैसे स्वर्णलता वेष्टित तमालतरु को आवृत करके स्वर्ण का आलबाल शोभा देता है ॥५८॥

अब नृत्यविदों में श्रेष्ठतम श्रीराधाकृष्ण ने ललितादिक सखियों को हल्लीशक अर्थात् मण्डली नृत्य करने का आदेश कर आप दोनों ने परस्पर स्कन्ध पर हस्त प्रदान पूर्वक नृत्य आरम्भ किया ॥५९॥

नृत्य करती हुई सखियों के तथा श्रीयुगल के चरण-चालन चातुरी से वह रासचक्र ("चक्रभ्रमण") कुलाल चक्र (कुम्हार-का चाका) की भाँति वेग से घूमने लगा ॥६०॥

श्रीकृष्ण श्रीराधा को ललिता व विशाखा के मध्य में करके कभी उनके स्कन्ध और कभी ललिता-विशाखा के स्कन्धों पर हस्तयुगल अर्पण करके गायन व नृत्य करती हुई सखियों के साथ स्वयं गाते हुए नृत्य करने लगे ॥६१॥

चक्र की गति लघु अथवा द्रुत जब जैसी होती तब व्रजां-गनाओं की गति भी उसके समान ही कभी मन्द और कभी शीघ्र विविध प्रकार की होकर श्रीकृष्ण को सुख पहुँचाने लगी ॥६२

तासां द्वयोर्द्वयोर्मध्ये तदंस-न्यस्तदोः स्फुरन् ।
स चलत्स्वर्णवल्लीनां नृत्यत्तापिञ्छवद्बभौ ॥६३॥
सोऽलातचक्रवत् क्वापि लघुगत्याऽभ्रमत्तथा ।
हित्वा मां क्वाप्यसौ नागादिति ता मेनिरे यथा ॥६४॥
स एकां मण्डलीं कृत्वा प्रान्ते सर्व्व-प्रिया-गणैः ।
तासां मध्ये स्फुरन्नृत्यन् चक्रञ्च भ्रमयन् बभौ ॥६५॥
स्वशक्तिं दर्शयन् चक्राद्युगपद्वा क्रमाच्चलात् ।
अवरुह्य मुहुस्तत्तत्स्थानमाश्वारुरोह सः ॥६६॥
गोप्यश्च युगपत् सर्व्वाः कदाप्येकैकशः क्वचित् ।
अवरुह्यारुह्य चक्रमण्डल-बन्धनम् ॥६७॥

---

उन सब गोपियों के मध्य मध्य में श्रीकृष्ण प्रवेश कर उनके स्कन्धों पर हस्त रख कर चंचल स्वर्णलताओं के मध्य तमालवृक्ष की भाँति शोभा देने लगे ॥६३॥

अलातचक्र ( लुआठ ) को घुमाने से जैसे अग्नि मण्डलाकार दिखायी देती है वैसे ही श्रीकृष्ण गोपियों में चक्र की तीव्र गति के कारण भ्रमण करने लगे जिससे प्रत्येक गोपी यही समझती कि श्रीकृष्ण मेरे ही समीप हैं, अन्यत्र कहीं गये नहीं ॥६४॥

श्रीकृष्ण चक्र के छोर पर, एक पृथक् मंडल रच कर प्रियागण के साथ उनके मध्य में नृत्य करते करते चक्र को घुमाते हुए शोभा देने लगे ॥६५॥

श्रीकृष्ण अपनी अद्भुत नृत्य-कौशल दिखाने लगे। वे बेग से घूमते हुए उस चक्र पर से एक ही समय अथवा क्रम से चक्र के जिस स्थान पर से भूमि पर उतर पड़ते, उसी स्थान पर शीघ्र ही चढ़ जाते इस प्रकार उतरते-चढ़ते हुए भी ऐसे दिखाई देते कि वे गोपियों के मध्य में ही स्थित हुए नृत्य कर रहे हैं-यही उनकी अद्भुत नृत्य-शक्ति थी ॥६६॥

बिलस्येत्थं हरिस्ताभिश्चक्रभ्रमण-नर्त्तनैः।
रासलीला-बिशेषाय चक्रादवरुरोह सः ॥६८॥
स्वलहरि-मृदुहस्तैः संस्कृतं कृष्ण आल्या
कुमुद-सुरभि-वातैर्मार्जितं स्फारमग्र्यम् ।
शशि-किरण-सुधाभिः सिक्त-लिप्तं स ताभिः
पुलिन--बरमनङ्गोल्लासरङ्गाख्यमायात् ॥६९॥
बिधाय कृष्णः परितः सुमण्डलीं तस्मिन्मिथो बद्धकरैः प्रियागणैः।
तदन्तरायं प्रियया बभौ यथा विशाखयेन्दुः परिवेश-मध्यगः ॥७०॥
परिभ्रमत्तल्ललनालि-मण्डलं वभौ यथा कामकुलाल-भूपतेः।
रासादिलीलाख्यघटादिनिर्मितौ सुबर्णचक्रं हरिदण्डचालितम् ॥७१॥

---

यह देख कर गोपियाँ भी अपनी आरोहण अबरोहण ( चढ़ने-उतरने ) की शक्ति को दिखाती हुई कभी तो सबके-सब एक साथ और कभी एक एक चक्र से भूमि पर उतर पुनः शीघ्रतापूर्वक चक्र पर चढ़ मण्डल बना नृत्य करने लगीं ॥६७॥

श्रीकृष्ण इस प्रकार से चक्रभ्रमण व नृत्य सहित उनके साथ बिलास करके कोई बिशेष रासलीला के लिए चक्रपर से उतर पड़े ॥६८॥

उतर कर 'अनंगोल्लास' नामक पुलिन पर सखियों सहित जा पहुँचे। वह पुलिन यमुना के हस्तरूपा लहरियों द्वारा संस्कृत, कुमुद कुसुम के पवन से सुरभित, पवन द्वारा मार्जित, चन्द्र-किरणों द्वारा सिक्त ( न्हाया हुआ ) व लिप्त तथा बिस्तृत था ॥६

उस स्थान पर श्रीकृष्ण परस्पर बद्धहस्त प्रियाओं द्वारा सुन्दर मंडल रचना कर उसके मध्य में प्रियतमा श्रीराधा के साथ ऐसे शोभित हुए जैसे परिधि ( घेरा ) मध्य चन्द्रमा बिशाखा नक्षत्र के साथ शोभित होता है ॥७०॥

तन्मण्डलं भाति बिलास-सागरे रोद्धुं मनोमीनमिहैव किं हरेः ।
कन्दर्प-कैवर्त्त-बर-प्रसारितं हैमं महाजालमुरोज-तुम्बिकम् ॥७२॥
परस्पराबद्धकर-प्रियालते-द्वर्योर्द्वयोर्मध्यगतः क्वचित् प्रभुः ।
प्रियायुगांसार्पितदोर्युगोऽस्फुरत्ताभिः स नानागतिनर्त्तनैर्भ्रमन् ॥
भुज-शिरसि बिराजद्दोर्युगं स्वप्रियाल्याः
प्रचलदजयदेतन्मण्डलं कृष्णमूर्त्तेः ।
जलद-शकल-जालं मध्यमध्यांतराजत्
स्थिरतडिदुपगूढं संभ्रमच्चक्रवातैः ॥७४॥

---

जैसे कुम्हार के घड़ा बनाते समय चाका को हाथ से घुमाने पर वह चाका शोभा देता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णरूपी कुलाल-राज द्वारा रासादि लीला रूपी घट निर्माण करने के लिए स्वर्ण चक्ररूपिणी ललनामंडली को अपने बाहु दण्ड द्वारा संचालित करने पर वह ललनामंडली शोभा देने लगी ॥७१॥

धीवँर जैसे मछली पकड़ने के लिए नदी में जाल फैला उसके ऊपर कुछ तूँबें—बाँध कर उसे पानी पर तिरा देता है वैसे ही इस बिलाससागर में कन्दर्परूपी कैवर्त्त ( धीवर ) ने मानस मत्स्य को पकड़ने के लिए मानो तो गौरांगी ब्रजांगनाओं के रूप में सोने के सूत से बुने हुए महान् जाल को प्रसारित कर रक्खा है जिस पर उरोज रूपी तूँबी फल लगे हुए हैं ॥७२॥

कभी प्रियाओं के परस्पर हस्त ग्रहण कर नृत्य करने पर श्री-कृष्ण दो-दो प्रियाओं के मध्य में प्रविष्ट हो दोनों के स्कन्ध पर अपनी दो भुजा अर्पण कर उनके साथ नाना विध नृत्यपूर्वक रास-चक्र में भ्रमण करते हुए शोभित होते हैं ॥७३॥

रासमण्डल में गोपियों के मध्य मध्य में श्रीकृष्ण की अनेक मूर्त्तियाँ मानो तो मेघमण्डल के खण्ड खण्ड हैं जो कि गोपियों

कदाचिदेक एवायं स्वीयभ्रमण--लाघवात् ।
भ्रमन्नलातचक्राभः सर्व्वासां पार्श्वगोऽस्फुरत् ॥७५॥
हरि-हरिदयितानां वंशिका--कण्ठगानै--
र्मिलित-वलय-काञ्ची-नूपुराली-स्वनौघः ।
नटनगति--विराजत्पादतालानुगामी
निजवर-मधुरिम्णा व्यानशेऽसौ जगन्ति ॥७६॥
अनिबद्धं निबद्धञ्च द्विधा-गीतञ्च ते जगुः ।
सारिगमपधन्याख्य-स्वरानालपुः पृथक् ॥७७॥

---

के रूप में अत्यन्त दीप्तिमती सौदामिनी समूह द्वारा आलिंगित है। उन श्रीकृष्ण मूर्त्तियों की एक एक भुजा गोपियों के एक २ कन्धा पर विन्यस्त है। इस प्रकार दोनों भुजाओं को दो दो गोपियों के कन्धों पर स्थापित किये हुए आलिंगित होकर श्रीकृष्ण मूर्त्तियाँ चक्रवात (बवण्डर) से भी तीव्र गति से नृत्य करती हुई तड़ित् विजड़ित मेघखण्डमालाओं की शोभा पर विजय प्राप्त कर रही है ॥७४॥

पूर्व श्लोक में श्रीकृष्ण की अनेक मूर्त्तियों का वर्णन करके इस श्लोक में कहते हैं कि कभी एक ही श्रीकृष्ण की अतिशय वेग पूर्वक अलातचक्र की भाँति भ्रमण करते हुए समस्त व्रजांगनाओं के पार्श्व में स्थित स्फुरित होने लगते हैं ॥७५॥

श्रीकृष्ण की वंशी–ध्वनि ने प्रियाओं की कण्ठ के गीत, वलय, करधनी व नूपुरों के शब्द समूह के संग मिश्रित होकर तथा नृत्य की गति में विशेष रूप से प्रकाशित होने वाले चरण–तालों का अनुगमन कर अपनी अत्युत्कृष्ट माधुरी द्वारा जगत् को व्याप्त कर दिया ॥७६॥

श्रीकृष्ण व व्रजांगनाएं दो प्रकार के गीत अनिबद्ध व निबद्ध

शुद्धाञ्च।विकृतां जातिं द्विविधाञ्च मुदा जगुः ।
तत्र सप्तविधां शुद्धामेकादशविधां पराम् ।।७८।।
षड्ज-मध्यम-गान्धार-भेदान् ग्रामांस्त्रिभेदकान् ।
तत्र मर्त्या गोचरं ते गान्धार-ग्राममुज्जगुः ।।७९।।
श्रुतीः सप्तस्वरगता द्वाविंशति-भिदा जगुः ।
समीर-संख्यांस्तानांश्च मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः ।।८०।।
पञ्चदश-प्रकारांश्च गमकांस्तिरिपादिकान् ।
चालादि बहुभेदञ्च स्थायं रम्यमिमे जगुः ।।८१।।
शुद्ध-सालग-भेदेन निबद्धं द्विविधं जगुः ।
शुद्धं संज्ञात्रयं तत्र निबन्धं वस्तु रूपकम् ।।८२।।

---

गान करने लगे। उनमें प्रथम निबद्ध अर्थात सा रे ग म प ध नि- ये सात स्वर पृथक् रूप से आलाप के द्वारा दर्शाने लगे ।।७७।।

उसमें भी प्रथम स्वरों के शुद्ध व बिकृत भेद से दो प्रकार की जातियों का आनन्द पूर्वक गान किया-उनमें भी शुद्ध जाति के सात और बिकृत जाति के ग्यारह भेद होते हैं ।।७८।।

षड्ज, मध्यम व गान्धार भेद से स्वरों के ग्राम तीन प्रकार के होते हैं। उनमें जो गान्धार ग्राम ( स्वर समूह ) मनुष्य के अगोचर है उसके स्वरों का ही उच्चारण किया ।।७९।।

तदनन्तर सात स्वरों की बाइस श्रुतियाँ, ( सातस्वरों के मध्य मध्य में सूक्ष्म स्वर होते हैं उन्हीं को श्रुतियाँ कहते हैं ) उन्चास प्रकार के तान और इकीस प्रकार की मूर्च्छनाओं का गान किया ।।८०।।

पन्द्रह प्रकार के तिरिप नामक गमक ( स्वरों को कँपाना ) समूह एवं ताल के अनेक भेद अत्यन्त स्थिर व मनोहर ढंग से श्रीकृष्ण ने सब गान कर दर्शाया ।।८१।।

प्रबन्धे स्वरपाठादि-भेदान्नानाभिधान् जगुः ।
रागान्नानाप्रकारांश्च ग्रहांश्च न्यास-संयुतान् ॥८३॥
सप्तस्वरांस्तु संपूर्णान् षट् स्वरान् षाड्वाभिधान् ।
पञ्चस्वरानौड्वांश्च जगुस्ते तांस्त्रिभेदकान् ॥८४॥
मल्लार-कर्णाटक-नट्ट-साम-केदार-कामोदक-भैरवादीन् ।
गान्धार-देशाग-वसन्तकांश्च रागानगायन् सह मालवांस्ते ॥८५॥
श्रीगुर्जरीं रामकिरीञ्च गौरी-मासावरीं गोण्डकिरीञ्च तोडीम् ।
वेलावलीं मङ्गल-गुर्जरीञ्च वराटिकां देशवराटिकाञ्च ॥८६॥
मागधीं कौशिकीं पालीं ललितां पटमञ्जरीम् ।
सुभगां सिन्धुडामेता रागिणीस्ताः क्रमाज्जगुः ॥८७॥

---

पुनः शुद्ध व सालग भेद से निबद्ध जाति को गाया । उसमें निबद्ध के तीन नाम होते हैं-प्रबन्ध, वस्तु व रूपक ॥८२॥

प्रबन्ध में भी स्वर व पाठादि के भेद से अनेक प्रकार के राग होते हैं । उनको नाना प्रकार के न्यासस्वरों व ग्रह स्वरों सहित गान किया ॥८३॥

सम्पूर्ण नामक सातस्वरों, षाड्व नामक छः स्वरों और औड्व नामक पाँच स्वरों के त्रिविध भेद से रागों का गान किया ॥८४॥

पश्चात् मल्हार, कर्णाटक, नट, सामकेदार, कामोद, भैरव, गान्धार, देशाग, बसन्त व मालव राग श्रीकृष्ण व गोपियों ने गाये ॥८५॥

और श्री, गुज्जरी, रामकली, गौरी, आसावरी, गुणकली, तोडी, बिलावल, मंगलगुज्जरी, बराटिका, देशबराटिका, मागधी, कौशिकी, पाली, ललित, पटमंजरी, सुभग व सिन्दुरा रागिनियों को गोपियों ने क्रमपूर्वक गान किया ॥८६—८७॥

घनानद्ध-ततानान्ता: शुषिराणाञ्च भेदकान् ।
वृन्दयोपहृतांस्तांश्च क्रमणावादयन्मुहुः ॥८८॥
मुरजं डमरुं डम्फं मण्डुञ्च ममकादिकम् ।
मुरलीं पाविकां वंशीं मन्दिरां करतालिकाम् ॥८६॥
विपञ्चीं महतीं वीणां कच्छपीं करिनासिकाम् ।
स्वरमण्डलिकां रुद्रवीणाञ्च ता अवादयन् ॥६०॥
पताकां त्रिपताकाञ्च हंसास्यं कर्त्तरीमुखम् ।
शुकास्यं मृगशीर्षञ्च सन्दंशं खटकामुखम् ॥६१॥

---

तदनन्तर वृन्दादेवी द्वारा प्रदत्त घन, ( मंजीरा आदि ) आनद्ध ( मृदंगादि ) तत, ( वीणादि ), व शुषिर ( वंशीआदि ) ये चार प्रकार के वाद्य क्रमपूर्वक बारम्बार बजाने लगीं ॥८८॥

फिर मृदंग, डमरु, मण्डु ( जलतरंग ), ममक ( ?, ) मुरली, पाविका ( ?, ), वंशी मन्दिरा ( मादल, खोल ) व करताल बजाने लगीं ॥८६॥

फिर विपंची, महती, वीणा, कच्छपी, करिनासिका, स्वर-मण्डलिका ( स्वरमंडल ) व रुद्रवीणा आदि नाना प्रकार की वीणाओं को बजाया । ६०॥

तदनन्तर नृत्य-कर्म्म के अनेक प्रकार के हस्तक भेदों को दिखाया । नृत्य के समय सर्प के फन, हँस की ग्रीवा, कच्छप आदि जन्तुओं की भाँति हस्त-मुद्रा दिखाने का नाम हस्तक है । किन्तु रास में गोपियों ने हस्तक के अतिरिक्त पताका, त्रिपताका, हंसास्य ( हँस-मुख ), कर्त्तरीमुख ( कैंची ), शुकास्य ( शुक-मुख ), मृगशीर्ष ( मृग-शीश ) सदंश, खटकामुख, सूची-मुख, अर्द्ध चन्द्र, पद्मकोष व अहितुण्डक ( नागफणि ) इत्यादि अनेक प्रकार की पताकाओं ( हस्त-मुद्राओं ) को दिखाया

सूचीमुखं चार्द्धचन्द्रं पद्मकोषाहितुण्डिकम् ।
नर्त्तने दर्शयामासुस्ता इत्यादिक-हस्तकान् ॥९२॥
दधुस्तालान् बहुविधान् काश्चित्तु ध्रुव-लक्षणान् ।
मण्ठलक्षणकांश्चान्यान् कांश्चित्तत्प्रातिलक्षणान् ॥९३॥
अतीतानागतसमैश्च ग्रहैश्च त्रिविधैर्युतान् ।
समा गोपुच्छिका-स्रोतोवहादि-यतिभिर्युतान् ॥९४॥
लयैश्च त्रिविधैर्युक्तान् द्रुत-मध्य-विलम्बितैः ।
निःशब्द-शब्दयुक्तेन द्विधा धरण-संयुतान् ॥९५॥
वर्द्धमानाभिधस्त्वेको हीयमानाभिधः परः ।
इत्यावर्त्त-द्वयाख्येन मानेन च समन्वितान् ॥९६॥ चतुर्भिः कुलकम्

---

यथा पताका = अंगूठे का टेढ़ा कर तर्जनी के मूल में लगा अंगुलियों को सीधा फैलाकर रखना । त्रिपताका = अंगुष्ठ व कनिष्ठा के अग्रभाग को मिला शेष तीन अंगुलियों को सीधा फैलाकर रखना । हंसास्य = तर्जनी, मध्यमा व अंगुष्ठ के अग्रभाग को मिला कर रखना इत्यादि ॥९१-९२॥

कुछ गोपियाँ ध्रुवताल, मण्ठ ताल इत्यादि अनेक प्रकार के ताल और कुछ गोपियाँ उनसे ठीक विपरीत ताल वादन करने लगीं । (अब आगे समाप्ति पर्यन्त इन तालों का उल्लेख है) ॥९३

ये तालें भी अतीत, अनागत व सम भेद से त्रिविध होते हैं । इन तालों को ग्रह सहित, समा, गोपुच्छिका व स्रोतोवहा नामक तीन यतियों सहित, द्रुत, मध्य व विलम्बित नामक तीन लयों सहित, एवं निःशब्द व शब्दयुक्त दो भेदों सहित गोपियों ने बजाया । इनमें प्रथम को वर्द्धमान व दूसरे को हीयमान कहा जाता है । इसी प्रकार इन तालों को दो प्रकार के आवर्त्त एवं मान सहित बजाया ॥९४-९६॥

चञ्चरपुटं चाचपुटं रूपकं सिंहनन्दनम ।
गजलीलामेकतालं निःसारीमादि-तालकम् ॥९७॥
अड्डकं प्रतिमण्ठञ्च झम्पञ्च त्रिपुटं यतिम् ।
नलकूबर-तुद्घट्टं कुट्टकं कोकिलारवम ॥९८॥
उपाट्टं दर्पणं राजकोलाहल-शचीप्रियौ ।
रङ्ग-विद्याधरं वादकानुकूलक-कङ्कणे ॥९९॥
श्रीरङ्गाख्यं च कन्दर्पं षट्पितापुत्रकं तथा ।
पार्व्वती-लोचनं राजचूडामणि-जयप्रियौ ॥१००॥
रतिलीलं त्रिभङ्गीञ्च चच्चरत् बीर-बिक्रमम ।
इत्यादीन्नर्त्तने तालान् दधुः कृष्णोऽस्य च प्रियाः ॥१०१॥
श्रीचैतन्य-पदारबिन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टबरजे गोबिन्दलीलामृते
सर्गो रासबिलास-वर्णनमनु द्वाविंशकोऽयं गतः ॥२२॥

---

अब कुछ अन्य तालों का उल्लेख करते हैं। यथा चंचरपुट, चाचपुट, रूपक, सिंहनन्दन, गजलीला, एकताल, निःसारी, अड्डक, ( आड़ताल ), प्रतिमण्ठ, झम्प ( झपताल ) त्रिपुट, यति, नलकूबर, तुद्घट्ट, कुट्टक, कोकिलारव, उपाट्ट, दर्पण, राजकोलाहल, शचीप्रिय, रंगबिद्याधर, वादक,-अनुकूल, कंकण, श्रीरंग, कन्दर्प षट्पितापुत्रक, पार्वतीलोचन, राजचूडामणि, जयप्रिय, रतिलील, त्रिभंगी, चच्चरत , बारबिक्रम-ये चौंतीस ताल श्रीकृष्ण व श्रीकृष्णप्रिया ब्रजांगनाओं ने वाद्य में प्रकट किये ॥९७-१०१॥

इस प्रकार श्रीगोबिन्दलीलामृत काव्य में रासबिलास वर्णन

# ❀ अथ त्रयोविंशः सर्गः ❀
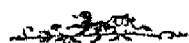
अथ प्रबन्धगानं स नानातालैः पृथग्विधम् ।
कर्त्तु मारभतैताभिर्विदग्धाभिः सनर्त्तनम् ॥१॥

श्रीराधया नृत्यति कृष्णचन्द्रे
गायन्त्य आसन् ललितादयस्तदा ।
चित्रादयोऽन्या किल तालधारिका
वृन्दादयः सभ्यतया व्यवस्थिताः ॥२॥

---

मय बाइसमाँ सर्ग समाप्त हुआ । यह श्रीगोबिन्दलीलामृत श्री-कृष्णचैतन्य महाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूप-गोस्वामी की सेवा का फल, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित हैं, श्रीमज्जीवगोस्वामी के सत्संग से उदय हुआ है तथा श्रीरघुनाथदासभट्टगोस्वामी के वर के प्रभाव से प्रादुर्भूत हुआ है ॥२२॥

अब श्रीकृष्ण ने व्रजांगनाओं के साथ नृत्य करते हुए नाना-प्रकार के तालों में बिभिन्न प्रकार के प्रबन्ध-गान आरम्भ किया ॥१

प्रथम श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण ने नृत्य तथा ललितादि कुछ सखियों ने गान आरम्भ किया, चित्रादि कुछ सखियाँ ताल देने लगीं तथा बृन्दा आदि कुछ सखियाँ नृत्य-गान के गुण-दोष के बिवेचक ) सभासद् के रूप में अवस्थान करने लगीं ॥२॥

कृष्णे नृत्यत्येकले राधिकाद्या गायन्ति स्माश्चर्यतालैर्दुरूहैः ।
तस्मिन् सभ्ये राधिकाद्याः क्रमेणाश्चर्यं नृत्यं साङ्गहारं व्यधुस्ताः।'
रङ्गे क्रमाच्छ्रेणितया स्थिताना-मन्तःपटत्वं नटतां गतानाम् ।
वीणादि-वाद्यावलि-धारिकाणां नानाप्रबन्धादिक-गायिकानाम् ॥४
तत-घन-शुषिराढ्यानद्ध-कण्ठस्वरौघे
मृदु-विविध-गतित्वेऽप्यैक्यमाप्ते ऽङ्गनानाम ।
तदनुग-पदतालैभ्रू करानाक्षिचालै—
र्ननृतुरिह स कृष्णस्ताः प्रविश्य क्रमेण ॥५॥ युग्मकम्
कृष्णः श्रीमान्मुहुरिह समागत्य तासां स मध्या—
न्नानाताल-क्रमवशतया चालयन् श्रीपदाब्जे ।

---

पश्चात् श्रीकृष्ण अकेले नृत्य करने लगे तो श्रीराधा आदि प्रिया बृन्द अत्यन्त कठिन ताल में गाने लगीं। फिर श्रीकृष्ण सभासद् बने तो श्रीराधा आदि सखियाँ विविध अंग-भंगिमा सहित आश्चर्य नृत्य करने लगीं ॥३॥

प्रथम श्रीकृष्ण आदि सबों के नृत्य का सम्मिलित वर्णन करते हैं, यथाः—रंगस्थल पर ब्रजसुन्दरियों के पंक्तिबद्ध गोलाकार मण्डल पर मण्डल थे। यह मण्डल अन्तः पट अर्थात् आवरण का कार्य कर रहे थे। सखियाँ कोई वीणा, मृदंग आदि नाना प्रकार के वाद्य बजा रही थीं तो कोई नाना प्रकार के प्रबन्ध गान कर रही थीं। उस समय वीणा, झांझ, मृदंग, वंशी व कण्ठस्वरों की विविध ध्वनियों का नृत्य की विविध मृदु गतियों से मेल हो रहा था। नृत्य की विविधगतियाँ अत्यन्त ही मृदु होने पर भी न तो वाद्य-ध्वनि ही कर्कश होने पायी और न कण्ठस्वर ही तीव्र होने पाता-जैसी गति वैसी ही ध्वनि और जैसी ध्वनि वैसी गति का मेल था। इस मेल से नृत्य-वादन-कारिणी, अन्त

धुन्वन् पाणी नर्टति निगदन्नित्थमानन्दयंस्ता—
स्तत्ता तत्थे द्रगिति द्रगि त्थै द्रक् तथै द्रक् तथै था ॥६॥
थो दिक् दां दां किट किट कणझें थोक् थो दिक् आरे
झें द्रां झें द्रां किटि किटि किटि धां झेङ्कु झें झेङ्कु झें झेम ।
थो दिक् दां दां द्रमि द्रमि द्रमि धां काङ्कु झें काङ्कु झें द्रा—
मागत्यैवं नर्टति स हरिश्चारु-पाठ-प्रबन्धम् ॥७॥
कूजत्काञ्ची-कटकबिरणन्नूपुर-ध्वानरम्यं
पाणिद्वन्द्वं मुहुरिह नदत् कङ्कणं चालयन्ती ।

---

पट स्वरूपा मंडलियों में श्रेणीबद्ध रूप से स्थिता गोपियों के रंगस्थल में प्रवेश करके उनकी चरण-चाल का अनुगमन करते हुए ( अर्थात् उनकी चाल से अपनी चाल मिलाते हुए ), भृकुटि, हस्त, अंग व नेत्रों की भंगिमा प्रकट करते हुए क्रम से श्रीकृष्ण, श्रीराधा, ललिता आदि सखियों ने नृत्य किया ॥४-५॥

अब श्रीकृष्ण का पृथक नृत्य वर्णन करते हैं:—श्रीमान् (परम शोभायमान) श्रीकृष्ण पुनः पुनः उनके मध्यसे निकल रंग-स्थल पर आगमन कर नाना विध ताल व क्रम सहित सुन्दर चरण व हस्त युगल को चलाते हुए "ता तत्ता तत्थे, द्रगिति द्रक् तत्थै, द्रक् तत्थै था" "बोल बोलते हुए सखियों को आनन्दित कर नृत्य करने लगे ॥६॥

"थो दिक् दां,दां, किट,किट,कनझें,थोक्,थो दिक्,आरे झें द्रां झें द्रां, किटि किटि किटि धां झेंकु झें,झेंकु झें,झें,थो दिक् दां दां द्रमि द्रमि द्रमि धां, कांकु झें,कांकु झें,द्रा—इत्यादि मृदंग के बोल बोलते हुए श्रीकृष्ण सहसा आगमन कर सुचारु प्रबन्ध पाठ करते हुए नृत्य करने लगे ॥७॥

राधाकृष्ण-द्युति-घनचये चञ्चलेव स्फुरन्ती
नृत्यन्तीत्थं गदति तथ थै थै तथै थै तथै था ॥८॥
धां धां दृक् दृक् चङ् चङ् निङां णां निङां णां निङां नां
तुत्ता कु तुं तुं गुड् गुड् गुड् धां द्रां गुड् द्रां गुड् द्राम् ।
थेक् धेक् धो धो किरिटि किरिटि द्रां द्रमि द्रां द्रमि द्रा—
मागत्यैवं मुहुरिह मुदा श्रीमदीशा ननर्त्त ॥९॥
झं झं कुर्वत् कनकवलयै धुन्वती पाणिपद्मौ
तासां मध्यात् झपदि ललिताऽप्यागता कृष्णकान्त्या ।
श्यामे रङ्गे तडिदिव घने नृत्यतीत्थं वदन्ती
थै थै थो थो तिगड़ तिगड़ थो तथै थो तथै ता ॥१०॥

---

श्रीराधा का नृत्य वर्णन:-श्रीकृष्ण की अंगकान्ति रूप मेघ-मंडल के मध्य में विजली की भांति श्रीराधा अपने मनोहर बजते हुए किंकिणी, कटक ( कड़ा, पहौंची ), व नूपुरों की ध्वनि के साथ, रमणीय कंकण ध्वनि युत हस्तों को चलाती हुई, "तथै, थै, तथै, थै, तथै था" बोल बोलती हुई नृत्य करने लगी ॥८॥

धां धां दृक् दृक्, चङ् चङ् निङां णां, निङां णां, निङां नां, तुत्ता कु तुं तुं, गुड् गुड्धां, द्रां गुड्द्रां गुड्द्रा, धेक् धेक्, धो धो, किरिटि किरिटि, द्रां, द्रिमिद्रां, द्रिमिद्रां,-इस प्रकार से मदीश्वरी श्रीराधा आगमन कर नृत्य करने लगीं ॥९॥

अथ ललिता नृत्य-वर्णन:-अब ललिता भी उनके मध्य में आकर अपने कंचन वलय युत हस्त पद्मों को झंकारती हुई श्याम-कान्ति से श्यामा बनी हुई रंगस्थल में "थै, थै, थो, थो तिगड़, तिगथै, थो, तथै, थो, तथै, ता" बोलती हुई बिजली की भाँति नृत्य करने लगी ॥१०॥

द्रमि द्रमि द्रमि धो धो धो मृदङ्गादि-नादैः
कण कण कण वीणा-शब्द-मिश्रैर्विशाखा ।
नटति झणन झं झत्कारयत्यलङ्कारजाला
द्रगिति द्रगिति द्रक् थै थो तथो थो ब्रुवाणा ॥११॥
काचित् स्वनन्नूपुर-किङ्किणीका मुहुः कणन्-कङ्कण-पाणियुग्मम् ।
विधुन्वतीत्थं नटनीरयन्ती थैया तथैया तथथै तथैया ॥१२॥
पादन्यासैः श्रीकरद्वन्द्वचालै-र्नृत्यत्यन्या नूपुर-ध्वान-मिश्रैः ।
तालोत्थानायेत्थमुच्चारयन्ती थै-थै-थै-थै-थै तथै-थै-तथै-थाः ॥१३॥
रङ्गं प्राप्ता तदनु तथान्या नृत्यन्ती सा लपति नदेत्थम् ।
थैया थैया तथ-तथ-थैया थैया-थैया तिगड़-तथैया ॥१४॥

---

विशाखा–नृत्य–वर्णन:–तब विशाखा भी जिनके अंग के आभूषण जाल झनन् झंझन् झन् कर रहे थे, वीणा के कण कण कण, शब्दों से मिश्रित मृदंग के द्रुमि द्रुमि द्रुमि, धो धो धो, शब्दों के साथ द्रगिति द्रगिति द्रक् थै थो तथो थो बोलती हुई नृत्य करने लगी ॥११॥

अन्य सखियों का नृत्य-वर्णन:—कोई सखी छम छमाते हुई नूपुरों व किंकिणी के साथ झनझनाते हुए कंकणयुक्त हस्तों को हिलाती हुई थैया, तथैया, ततथै, तथैया बोलती हुई नृत्य करने लगी ॥१२॥

कोई गोपी नूपुरध्वनि मिश्रित चरणों को चलाती एवं श्री-हस्तों को हिलाती हुई, ताल के उत्थान के लिए, "थै, थै, थै, थै, थै, तथै, थै तथै, था" इस प्रकार बोलती हुई नृत्य करने लगी ॥१३॥

तब अन्य कोई गोपी रंगस्थल पर आकर "थैया, थैया, तथ, तथ, थैया, थैया, थैया, तिगड़ तथैया" कहती हुई नृत्य करने लगी ॥१४॥

आआ ईआति आआति अईअति अआ आतिआ आतिआ आ
आ आ ज्योत्स्नोज्ज्वलाङ्गं नटतीव पुलिनं राधिके पश्य आरे।
आ आ आ आति आ आ नटति च विपिनं मन्द-वातेरितम् आ
आ आ आ एति कृष्णः पुनरिह निगदन् सालसाङ्गं ननर्त्त ॥१५॥
आइ अ आइ अतिप्रिय हास-चन्द्रति कुन्दति हंसति आरे।
क्षीरति हीरति हारति आरे आइ अ आइ अ नृत्यति राधा ॥१६॥
ता धिक् ता धिक् धिगिति निनादं कुर्व्वन् रासे वरमुरजोऽयम्।
लास्यैरासामतिशयतुष्टो निन्दत्यन्याः सुर-वनिताः किम् ॥१७॥

---

इस प्रकार सखियों के नृत्य करने पर श्रीकृष्ण पुनः उल्लसित होकर नृत्य करने लगे। कैसे? श्रीकृष्ण कहते हैं "आ आ, ई आति, आ आति, अई आति, अ आ आति, आ आति, आ आ,—हे राधे! देखो ज्योत्स्ना से उज्ज्वल अंग बनकर यह पुलिन मानो नृत्य कर रहा है। आ आ आ आति, आ आ,—वन भी मन्द वायु से संचालित हो नृत्य कर रहा है, आ आ आ एति"—कहकर आलस अंग से नृत्य करने लगे ॥१५॥

श्रीराधा भी (अलसांगी हो) कहने लगीं—"हे प्रिय! तुम्हारा हास्य, चन्द्रमा, कुन्द, हंस, क्षीर, हीरा, व हार (मुक्ता) के समान—उज्ज्वल शोभा देता है 'आ इ अ आ इ अ' ऐसा कहती हुई नृत्य करने लगीं। (हंसी चन्द्रमा के समान आह्लाद देती, कुन्दपुष्प की भाँति खिलती व कुन्द-कलियों की भाँति शोभा देती, हंस के समान विलास करती हुई सबको सुख देती, क्षीरवत् मधुर रुचिकर लगती, हीरा के समान दमकती, तथा हार (मुक्ता-मोती) की भाँति श्रेणी बद्ध शोभा देती हैं) ॥१६॥

श्रीव्रजसुन्दरियों का नृत्य कौशल की सर्वोत्कृष्टता वर्णन करते हैं:— यह वर (श्रेष्ठ-उत्तम) मृदंग रास में "ता धिक् ता

वैणिक्यो वैणविक्यश्च गायन्त्यस्तालधारिकाः ।
मौरजिक्यश्च नृत्यन्ति नर्त्तकीभिः समं मुदा ॥१८॥

आविष्टानां गाननृत्येऽङ्गनानां तत्तद्गत्याऽत्युच्छ्वसद्गाढ़बन्धम् ।
नीवी-वेणी-कञ्चुकादि स्वयं तत् कृष्णः क्षिप्रं नृत्यमध्ये बबन्ध ॥

ते नानाशब्दबन्धेन मस्तृजुर्गायनीजनाः ।
ष ऋ गा म प धै न्याख्यैः स्वरैरागान्नवान्नवान् ॥२०॥

---

धिक् धिक्" शब्द करता हुआ मुझे ऐसा लगता है कि यह "उनको धिक्कार है, उनको धिक्कार है धिक्कार कह कह कर ब्रज-सुन्दरियों के नृत्यकौशल से अतिशय प्रसन्न हो मानो सुरबाला उर्वशी, रम्भा आदि तथा गन्धर्व, किन्नरी आदि का तिरस्कार कर रहा है। (मृदंग की श्रेष्ठता इसी में है कि यह अचेतन हो करके चेतन की भाँति सारासार विवेक में चतुर है ॥१७॥

उनके नृत्योल्लास का वर्णनः—नृत्यकारिणी गोपियों के अद्भुत नृत्य के दर्शन कर बीणा बजाने वाली, वेणु बजाने वाली, ताल देने वाली तथा मृदंग बजाने वाली गोपियाँ भी आनन्द के वेग में नृत्य करने लगीं—अपना अपना साज बजाती हुई नृत्य करने लगीं ॥१८॥

इस प्रकार वे गान वादन सहित नृत्य में आविष्ट हो गयीं तो गान व नृत्य के अनुसार उनके चरणों की गति व अंगभंगी अत्यन्त वेगपूर्वक हो जाने के कारण कस करके बाँधी हुई नीवी, वेणी व कंचुकादि ढीली हो चलीं जिन्हें तत्काल स्वयं श्रीकृष्ण ने नृत्य करते करते ही कस कर बाँध दीं ॥१९॥

वे गानकारिणी ब्रजबालाएँ षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत व निषाद स्वरों में नाना प्रकार के बन्ध ( बन्दिश )

स्वरानालापयन् शुद्धान् सङ्कीर्णांश्च सहस्रधा।
गीतञ्च मार्गदेशीय-भेदाढ्या बहुधा जगुः ॥२१॥
प्रावृण्नभ इव सघनं सूचीमूलमिव सशुषिरं गानम्।
गगनमिवातिततं तद्रत्नमिव बभौ सदानद्धम् ॥२२॥
योऽयं महान् ध्वनिरभून्नटनर्त्तकीनां
मञ्जीर-सद्वलय-कङ्कण-किङ्किणीजः ।
पत्ताल-सम्पदनुगामितया चतुर्षु
वाद्येषु तेषु किल पञ्चमतां स लेभे ॥२३॥

---

में नवीन नवीन उत्तम से भी उत्तम राग प्रकट करने लगीं ॥२०

उस समय वे शुद्ध ( अमिश्रित ) व संकीर्ण ( मिश्रित ) स्वर आलापती हुईं सहस्रों प्रकार के गीत मार्गी व देशीय भेद से गान करने लगीं ॥२१॥

नृत्यस्थल में प्रकाशित गोपियों के गान की शोभा वर्षाकाल के स-घन ( मेघयुक्त ) आकाश की भाँति सघन ( झाँझ आदि वाद्य ) युक्त थी सूची ( सुई ) के मूल के शुषिर ( छिद्र ) की भाँति शुषिर ( वंशी आदि की ध्वनि ) युक्त थी, गगन की भाँति अति तत अर्थात् अतिशय बिस्तृत अर्थात् बीणादि ध्वनियुक्त थी तथा रत्न जैसे सदानद्ध ( सुन्दर रूप से जड़ा हुआ ) होता है वैसे ही गान भी श्रेष्ठ मृदंग-बाद्य सहित संयुक्त होकर शोभा पा रहा था ॥२२॥

नट ( श्रीकृष्ण ) व नर्त्तकियों ( ब्रजसुन्दरियों ) के नूपुर, बलय, कंकण व किंकिणी द्वारा जो एक महान् शब्द हो रहा था वह ( नृत्य की शोभा को बढ़ाने वाली ) चरणगति रूप सम्पत्ति का अनुगमन करता हुआ पूर्वोक्त चार बाद्य—ध्वनियों में एक पाँचवीं ध्वनि के रूप में प्रकट हो गया ॥२३॥

आस्ये गीतिस्तदभिनयनं श्रीकरे श्रीपदाब्जे
तालो ग्रीवा-कटिषु धुवनं नेत्रयोर्दोलनञ्च ।
सव्यासव्यागमनगमनं तारकायां कटाक्ष:
कृष्णास्याब्जे मनसिज-सुखं बल्लवीनां तदासीत् ॥२४॥
जातय: श्रुतयो याश्च मूर्च्छना गमकाश्च ये ।
नोच्चरन्ति विना वीणां कण्ठे तांस्तांश्च ता जगु: ॥२५॥
असंमिश्रा जाती: श्रुति-गमक-रम्या: स्वरतती:
समुन्नीय्ये यैका मुदित हरिणा साध्विति गिरा ।
पुपूजे तेनेयं तदपि च तदायासमनयद्
ध्रुवाभोगं सास्मादलभततरां मानमधिकम् ॥२६॥

---

नृत्यकाल में ब्रजसुन्दरियों के मुख में गीत, हस्तों से अभि-नय ( अर्थात् अर्थ प्रकाश ) चरणकमलों द्वारा ताल प्रदान, ग्रीवा व कटि में कम्पन, नयनों का इतस्तत: संचालन, दक्षिण व बाम ओर गमनागमन तारकाओं ( पुतलियों ) में कटाक्ष, ये समस्त ही श्रीकृष्ण के मुखकमल के दर्शन मात्र से अनायास ही सम्भोग-सुख के समान सुखकर बन गये ॥२४॥

रागों की जो जातियाँ, श्रुतियाँ, मूर्च्छनाएँ व गमकें बीणा के अतिरिक्त उच्चारित हो नहीं सकती है, उन सब को ब्रजांग-नाएँ अपने अपने कण्ठ से उच्चारण करने लगीं ॥२५॥

कोई एक सुन्दरी ने स्वर समूहों की जाति को विशुद्ध रूप से व्यक्त कर; उनकी श्रुतियों व गमकों को मनोहर बना ऊँचे स्वरों से गान किया तो श्रीकृष्ण ने आनन्दित हो "साधु साधु" कह कर उसे सम्मान दिया । तब तो वह सुन्दरी उस पद को ध्रुव ताल में गाती हुई अन्तिम भाग आभोग तक ले गयी जिस पर

छालिक्य-नृत्ये राधाया देयमन्यदपश्यता।
तुष्टेनात्मार्पितस्तस्यै कृष्णेनालिङ्गनच्छलात् ॥२७॥
कृष्णे कान्तां नटयति मुदा क्वापि वंशीप्रगानै—
र्नर्मोन्नीतं स्खलनमिह सा तस्य दृष्ट्या दिशन्ती।
तालं तस्य स्खलितमपि संभालयन्त्यात्मनो द्राक्
तं चाप्येषा नटयति तथा क्वापि वीणादि-गानैः ॥२८॥
कृष्णेन राधाऽथ तया समं हरि-र्यथा ननर्त्तात्र जगाववादयत्।
साहाय्यकोत्काऽपि तयोः सखीततिर्नालं तथासीन्नृति-गानवादने॥
तालावसाने हरिरात्मपाणि- न्यासं प्रिया-वक्षसि संविधत्ते।
प्रियापि सव्येन करेण तुष्टा निरस्यतीशस्य करं रुषेव ॥३०॥

---

श्रीकृष्ण ने उसे पहले से भी अधिक सम्मान प्रदान किया ॥२६॥

तब श्रीराधा ने "छालिक्य" नामक नृत्य प्रकट किया जिससे श्रीकृष्ण परम सन्तुष्ट हुए तथा इसके लिए कोई उपयुक्त दान न देख कर उन्होंने आलिंगन के छल से आत्मा ही समर्पण कर दिया ॥२७॥

नृत्य में एक समय श्रीकृष्ण वंशी बजाते हुए प्रिया को नृत्य करा रहे थे, तो श्रीराधा ने परिहास पूर्वक उनके गाने की भूल को नेत्र-भंगी-द्वारा सूचित कर दिया। श्रीकृष्ण गाते समय अथवा सखियों को देख ताल चूक गये तो श्रीराधा ने उनके भूल को तुरत संभाल लिया। कभी श्रीराधा वीणा आदि बजाकर श्रीकृष्ण को नृत्य भी कराती ॥२८॥

इस रंगस्थल में श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा और फिर श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार नृत्य, गान व वादन किये, सखियाँ उनकी सहायता के लिए उत्कंठिता होती हुई भी, वैसा नृत्य, गान व वादन करने में समर्था न हो सकीं ॥२९॥

जानुभ्यां क्षितिमालम्ब्य प्रसार्य्यैका ततौ भुजौ ।
जुघूर्णे काञ्चनी वेग-क्षिप्तेव स्मरचक्रिका ॥३१॥
लीलोत्सर्पापसर्पाभ्यां दोःप्रसार-निकुञ्चनैः ।
अङ्गान्यङ्गैः स्पृशन्त्यन्या नृतिं चक्रेऽन्यदुष्कराम् ॥३२॥
स्पृष्ट्वा करैकेन भुवं कचित् परा देहं परावृत्त्य मुहुर्मुहुर्दिवि ।
पतन्त्यनृत्यद्भुवि सा कदाप्यसौ बिना तदालम्बनमम्बरे परम् ॥३३
ऊर्ध्वे स्थितोत्तानतया विभुग्ना क्षीणोदरी पार्ष्णिग-वेणिरेका ।
ननर्त्त पृष्ठातत-शिञ्जिनीका कृष्णतनोर्हेमधनुर्लतेव ॥३४॥

---

ताल की समाप्ति पर श्रीकृष्ण ने अपना हस्त प्रिया के वक्षः स्थल पर स्थापना किया। प्रिया श्रीराधाने प्रसन्न होती हुई भी मानो तो रुष्ट हो अपने बाएं हस्त से प्रियतम् श्रीकृष्ण का हस्त हटा देती हैं ॥३०॥

एक गोपी दोनों घुटनों द्वारा भूमि का सहारा ले, बाँहों को फैला कर, बड़े जोर से फेंके हुए काम-चक्र की भाँति चक्कर काटने लगी ॥३१॥

अन्य एक गोपी उछलती-भागती बाँहों को सिकोड़ती फैलाती तथा एक अंग से दूसरे अंग को छूती हुई नृत्य करने लगी जो औरों के लिए दुष्कर था ॥३२॥

अन्य कोई गोपी कभी एक हाथ से भूमि स्पर्श कर आकाश में अपनी देह को बारंबार घुमाकर भूमि पर पतित हो (आकर) नृत्य करती और कभी कभी भूमि का सहारा लिये बिना ही निराधार अधर ( शून्य ) में नृत्य करने लग जाती ॥३३॥

अन्य एक क्षीण उदर वाली गोपी उत्तान ( चित्त ) हो मुख ऊपर कर उदर को टेढ़ा उठा, जूड़ा को एड़ी से मिला नृत्य

मञ्जीरान्तर्गत-विवरगान् कापि तालानुरोधा--
देक-द्वि-त्रि-क्रमवशतया वादयन्ती कलायान् ।
सर्व्वान् कापि स्थगयति पदौ चालयन्त्यत्यपूर्व्वं
नृत्यन्त्येषा गुणिभिरखिलैः साधुवादैः पुपूजे ॥३५॥
गीतं वाद्यञ्च नृत्यं विधि-शिव-रचितं यच्च वैकुण्ठलोके
यल्लक्ष्मीकान्त-लक्ष्मीचय-नय-रचितं स्वेन यद्यत् प्रणीतम् ।
अन्यागम्यं यदाभिर्व्रजवरललना-नर्त्तकीभिश्च सृष्टं
रासे कृष्णस्तदेतन्मुहुरिह कुतुकी सर्व्वमाभिर्व्यतानीत् ॥३६॥

---

करने लगी । उस समय उसकी पीठ सुवर्ण की धनुलता के समान प्रतीत होती थी ॥३४॥

कोई गोपी चरण चलाती हुई नूपुर के दानों को ताल के अनुसार एक, दो, तीन, चार-इस क्रम से बजाने लगी और कभी सबही दानों को निःशब्द करके अत्यन्त अपूर्व नृत्य करने लगीं । यह अवलोकन कर रंगस्थल के सब गुणीजन "साधु साधु" कहकर प्रशंसा करने लगे ॥३५॥

बैकुण्ठ में श्रीभगवान् के संतोष के लिए ब्रह्मा, शिवादिकों ने प्रयत्नपूर्वक जितने प्रकार के गीत, बाद्य व नृत्यों की रचना की है; लक्ष्मी--कान्त व लक्ष्मीकुल के द्वारा रचित जितने नृत्य-गीतादि हैं, तथा सकल कला गुरु स्वयं श्रीकृष्ण ने जो जो रचना की है एवं ब्रज की श्रेष्ठ ललना नर्त्तकियों ने जिन जिन नृत्यों की सृष्टि की है जो औरों के लिए असाध्य हैं, उन समस्त नृत्य, गीतादि को रास में कौतुकी श्रीकृष्ण ने श्रीराधा आदि ब्रजसुन्दरियों के द्वारा पूर्व से कहीं अधिक बिस्तार के साथ प्रकट किया ॥३६॥

काश्चित् पश्यति काश्च चुम्बति पराः साकूतमालोकते
कासाञ्चिद्दशनच्छदौ पिबति सोऽन्यासां कुचौ कर्षति ।
वक्षोजे नखरानलर्क्षितमधात् कासाञ्च नृत्ये भ्रम—
न्नेवं रासमिषेण ताः स रमयन्त्रेमे रसाब्धौ हरिः ॥३७॥
एवं गायन् गाययंस्तान् स्वदारांश्चित्रं नृत्यन्नर्तयन्नर्तितस्तैः ।
गीतश्चैतान् श्लाघयन् श्लाघितस्तै रेमेऽत्युच्चैर्बालको वा स्वबिम्बैः
काचित् समाघ्राय भुजं निजांसे न्यस्तं हरेः साधु-पटीरलिप्तम्—
आनन्दमग्नोत्पुलकाश्रुकम्पा सचुम्प्य शम्पेव बभौ स्थिराभ्रे ॥३९
सा नृत्यजाश्रान्तिरमूमृगाक्षी-र्विश्रामयामास विलास-वृन्दात् ।
स्नेहाकुलालीव बिभूषयन्ती स्वेदाङ्कुरैर्भालकपोलयोस्ताः ॥४०॥

---

श्रीकृष्ण नृत्य में भ्रमण करते करते अतर्कित रूप से किसी गोपी का दर्शन, किसी का अधर, ओष्ठ चुम्बन, किसी के प्रति साभिप्राय-अवलोकन, किसी का कुचाकर्षण एवं किसी के स्तन पर नखाघात करते हुए रास के छल से रस–सागर में श्रीराधा आदि को रमण करा कर स्वयं रमण करने लगे ॥३७॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपनी दाराओं ( पत्नियों ) को गान व नृत्य करा तथा स्वयं उनके द्वारा गीत व नर्तित हो आश्चर्य रूप से गान व नृत्य किया तथा उनकी प्रशंसा करते व उनके द्वारा प्रशंसित होते हुए बालक जैसे अपना प्रतिबिम्ब देख कर उसके साथ खेलता है, वैसे ही गोपियों द्वारा प्रशंसित होकर श्रीकृष्ण उनके साथ बिबिध रासबिहार सम्पादन करने लगे ॥३८

कोई गोपी श्रीकृष्ण के चन्दन–लिप्त बाँह को अपने कँधे पर रख उसे आघ्राण ( सूंघने ) करने लगी तथा उसके आनन्द में निमग्न हो कम्प, अश्रु व पुलकयुत बनी हुई वह मेघ में स्थिर बिजली की भाँति शोभा देने लगी ॥३९॥

शिथिल-बसन-केशाः स्वासवेल्लत्कुचाग्राः
श्रमजलयुतभालाः सालसाङ्ग्यः क्रियासु।
क्रमजनित-रुचापि प्रेष्ठनेत्रातितुष्टिं
पुपुषुरधिकमेता रासनृत्यावसाने ॥४१॥
फुल्लपुण्डरीक-षण्ड-गर्व्वखण्डि-चक्षुषो
हिण्डदण्डजेश-कुण्डलेऽस्य गण्डमण्डले।
कापि ताण्डवालिपण्डिता स्वगण्डमण्डलं
न्यस्य तेन दत्तमत्ति पर्णपूग-चर्व्वितम् ॥४२॥
स्वस्पर्शोत्पुलकाकीर्णं तत्स्पर्शोत्पुलकाञ्चितम्।
कृष्णस्यांसे भुजं न्यस्य बिशश्राम क्षणं परा ॥४३॥

---

उस रास-नृत्य में जो गोपियों को श्रान्ति ( थकान ) हुई उसी ने स्नेहाकुल सखी की भाँति उनके ललाटों व कपोलों को श्रमबिन्दुओं द्वारा बिभूषित करके मानो उनको बिलाससमूह से बिश्राम कराया अर्थात् यद्यपि वे श्रीकृष्ण के संग बिलास में अतृप्त ही थे तथापि समयानुसार प्राप्त श्रान्ति की सेवा को उन्होंने अंगीकार कर अर्थात् वे बिश्राम करने लगीं ॥४०॥

रास-नृत्य की समाप्ति पर गोपियों के बस्त्र व केश शिथिल हो गये थे श्वासोच्छ्वास से कुचाग्र-भाग कम्पित हो रहे थे, कपोलों पर श्रमबिन्दु झलक रहे थे, क्रिया प्रतिअंगों में आलस्य भर गया था ऐसी उनके श्रमजनित कान्ति (शोभा) भी श्रीकृष्ण के नयनों को अतिशय आनन्द प्रदान कर रही थी ॥४१॥

प्रफुल्लित पुण्डरीक समूह के गर्व को खर्व करने बाले नेत्र-शाली श्रीकृष्ण के मकराकृति कुण्डल युत कपोलों से कोई एक गोपी अपने कपोलों को सटा कर श्रीकृष्ण के दिये हुए पान व सुपारी को चबाने लगी ॥४२॥

कुच-शिरसि निधायान्योन्य-संस्पर्श-हर्षात्
पुलकिनि पुलकाढ्यं स्वेदिनि स्वेदयुक्तम् ।
शतशत-शशिशीतं नृत्यज-क्लान्ति-दिग्धा
स्वरमण-करमेका श्रान्ति-शान्तिं जगाम ॥४४॥
मुहुः कराब्जेन दयाब्धिमग्नस्तासां मुखात् स्वेदजलानि कृष्णः ।
संमार्ज्य यन्नाप्यशकन्न मार्ष्टुं तत्स्पर्श सौख्याद्द्विगुणीकृतानि ॥४५॥
एका सुसख्यामृत-दिग्धबुद्धिः कान्तस्य संव्यान-पटाञ्चलेन ।
ममार्ज सस्वेदजलं निजास्यं स्वस्यापि तेनास्य च तादृशं तत् ॥४६

---

कोई एक गोपी अपने स्पर्श से पुलक-पूर्ण श्रीकृष्ण के कँधे पर उनके स्पर्श से पुलक-पूर्ण अपनी बाँह को रख कर क्षण भर के लिए विश्राम करने लगी ॥४३॥

कोई दूसरी गोपी नृत्य के श्रम से क्लान्त होकर अपने कुचों के शिरोभाग पर श्रीकृष्ण के हस्त स्थापन कर श्रम से शान्ति लाभ करने लगी । उस समय परस्पर-संस्पर्श जन्य आनन्द से उसके कुचाग्र भाग व श्रीकृष्ण के हस्त भी पुलक व स्वेदयुक्त हो गये तथापि श्रीकृष्ण के वे हस्त शत शत शशधर ( चन्द्रमा ) से भी अधिक सुशीतल प्रतीत हुए ॥४४॥

श्रीकृष्ण दया के सागर में निमग्न होकर अर्थात् अतिशय दयार्द्र होकर अपने कर कमलों द्वारा व्रजांगनाओं के मुखमंडल से स्वेदजल बारंबार पोंछते हैं परन्तु श्रीकृष्ण के हस्त के स्पर्श के कारण सात्त्विक भावों के उदय होने से स्वेद-जल दुगुना बढ़ता ही गया जिससे श्रीकृष्ण बारंबार पोंछते हुए भी पोंछ न सके ॥४५

और एक गोपी-सख्यरूपी अमृत-समुद्र में भीगी बुद्धि-वाली अर्थात् भय, संकोच हीन समान भाव-वाली—कान्त श्रीकृष्ण के उत्तरीय वस्त्र के अंचल से ही अपने मुख का पसीना

कृष्णाङ्ग-सङ्गादि-विलास-सिन्धा-वानन्दजालस्य तरङ्ग-मग्नाः ।
अशक्तवस्त्रमाल्याम्बर-कुन्तलानां नासन्नलं सम्वरणे मृगाक्ष्यः ॥४७
इत्थं समाप्य विविधाङ्गमनन्यसिद्धं
ताभिः समं सरस-रास-विलास-नृत्यम् ।
प्रोद्यत्स्मरं पुनरमुं रतिकेलिनृत्यं
कर्तुं समुत्कमनसं हि विविच्य वृन्दा ॥४८॥
हिमबालुक-बालुकेऽमले पुलिने सह राधयाऽच्युतम् ।
विनिवेश्य तयो पुरः सखीनिचयं स्वगणा न्यवीविशत् ॥४९ युग्मकम्
कुसुम-फलरसैस्तैर्भूरिभेदैः कृतानि
मणि-चषक-भृतानि स्वादुवैशिष्ट्यभाञ्जि ।
विविध-फल-विदंशैरन्वितानि न्यधात् सा
हरि-हरिदयितानामग्रतः सन्मधूनि ॥५०॥

---

पोंछने लगी और श्रीकृष्ण ने भी उस गोपी की साड़ी से अपने मुख का पसीना पोंछ लिया ॥४६॥

कुछ मृगनयनियाँ श्रीकृष्ण के अंग-संग रूपी विलास सागर के आनन्दरूपी तरंगों में ऐसी डूब गयीं कि अपने अंगों के खिसलते हुए वस्त्र, मालाएं व केशों को सँभालने में असमर्थ हो गयीं ॥४७॥

इस प्रकार श्रीवृन्दादेवी ने श्रीकृष्ण का व्रजसुन्दरियों के साथ विविध-अंग वाले अनन्यसिद्ध सरस रास विहार का समापन करके कामोच्छलित मूर्त्ति अच्युत श्रीकृष्ण को पुनर्बार रति-केलि नृत्य के लिए उत्कण्ठित समझ, कर्पूर कणाओं भाँति सुविमल बालुकाओं से व्याप्त यमुना पुलिन में श्रीराधा सहित श्री-कृष्ण को पधरा कर उनके सन्मुख सखीसमूह को अपने अपने कार्य में नियुक्त किया ॥४८-४९॥

प्रत्यङ्गना—युगलमसौ स्वशक्त्या
कृष्णः स्फुरंस्तदधरामृत-वासितानि ।
हासं विदंश-सदृशैरपि तैर्विदंशै-
स्ताः पाययन्नपिबदेव मधूनि तानि ॥५१॥

कन्दर्पमाध्वीक-मदाकुलाङ्गीं कन्दर्प-माध्वीक-मदानुशिष्टे ।
राधां समादाय हरौ प्रविष्टे विन्यस्ततल्पं पुलिनान्तकुञ्जम् ॥५२॥

कन्दर्प-मदवैक्लव्याद्घूर्णा-पूर्णेक्षणाः सखीः ।
वृन्दाप्यादाय कुञ्जेषु पृथक् पृथगशाययत् ॥५३॥ युग्मकम्

---

तब श्रीवृन्दादेवी ने नाना प्रकार के कुसुमफलों के रस से बने हुए विशेष स्वादिष्ट मधु को मणिनिर्मित पान पात्रों में भर कर नाना प्रकार के फलों को विदंश के रूप में ( मधु-मदिरा के साथ खाये जाने वाले पदार्थों को विदंश कहा जाता है ) श्रीकृष्ण व श्रीराधा के सन्मुख ला कर रक्खा ॥५०॥

तब श्रीकृष्ण अपनी ऐश्वर्य-शक्ति प्रकाशित कर, प्रत्येक गोपी के मध्य में शोभा को प्राप्त हुए तथा हासपरिहास पूर्वक उनके ओष्ठों पर दन्ताघात करते हुए विदंश के साथ उनको मधुपान कराने और स्वयं करने लगे ॥५१॥

अनन्तर श्रीकृष्ण ने, कन्दर्प व माध्वीक के मद से उन्मत्त होकर कन्दर्प व माध्वीक के मद से विह्वल बनी हुई प्रियतमा श्री-राधा को संग ले विचित्र शय्या से शोभित पुलिन के कुञ्ज में प्रवेश किया । वृन्दादेवी ने भी कन्दर्पमद से व्याकुल घूर्णपूर्ण नेत्रों वाली सखियों को ले जा कर पृथक् पृथक् कुञ्जों में शयन करा दिया ।५२-५३॥

स्वाधीनभर्त्तृकावस्थां प्रापय्य राधिकां तया ।
सहाययौ वहिः कृष्णः स्मयन् पूर्ण-मनोरथः ॥५४॥
तयेरितः स कुञ्जेषु प्रविश्य युगपत् पृथक् ।
स्वाधीनभर्त्तृकावस्थां प्रापयामास ताः सखीः ॥५५॥
निर्गतः कुञ्ज-निकरात् कृष्णस्ताभिरलक्षितः ।
एकः सन् राधिकामागात् स्वदर्शन-मृदुस्मिताम् ॥५६॥
तत्रागता कुञ्जततेर्निवीता दृष्ट्वा निजालीं पुरतो हसन्तीम् ।
यत्नावृत-स्वाङ्गचयालि-पालि-र्नम्रानना लोलदृगेतयोचे ॥५७॥
यो नायकः सोऽत्र स वृन्दया मया
रङ्गे स्थितः क्वापि गतो न हि क्षणम् ।

अनन्तर श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को स्वाधीनभर्त्तृका अवस्था को प्राप्त करा अर्थात् क्रीड़ा के अन्त में उनकी वेशभूषा उनके ही आदेश से शृङ्गार करके, उनके साथ पूर्ण मनोरथ हो हँसते हँसते कुंज से बाहर पधारे ॥५४॥

तब श्रीराधा द्वारा प्रेरित होकर श्रीकृष्ण ने प्रत्येक सखी के कुंज में एक ही समय में प्रवेश किया तथा पूर्वोक्त रीति से पृथक् पृथक् सब सखियों को स्वाधीन-भर्त्तृका अवस्था प्राप्त कराया ॥५५॥

पश्चात् श्रीकृष्ण सखियों द्वारा अलक्षित रूप में कुंजों से बाहर निकल अनेक से पुनः एक बन श्रीराधा के समीप आ गये। श्रीराधा उनके दर्शन से मधुर मृदु मुसकराने लगी ॥५६॥

सखियों ने कुंजों से बाहर निकल कर सन्मुख अपनी सखी श्रीराधा को हँसती हुई देखा तो वे लज्जा से नीचे मस्तक कर, अंगों को वस्त्र से आवृत कर, चंचल नयनी बनी स्थित रहीं। तब उनसे श्रीराधा बोलीं ॥५७॥

नानर्त्तयद्वो रतिनर्त्तनेऽसकौ
दशेदृशी वो वपुषः कुतोऽभवत् ॥५८॥
हरिर्हसन्नाह निकुञ्ज-रङ्गे नर्त्त्यास्त्वमा मूर्त्तिमतोज्ज्वलेन ।
रत्याख्य-नृत्ये रसनायकेन संनर्त्तिता यत् स्फुटतत्त्वङ्गाः ॥५९॥
कृष्णो स्वसख्यां प्रणयोद्गतेर्ष्या-स्ता ऊचुरस्मिन् रतिनृत्य एषा ।
त्वां नर्त्तयन्ती सततं गुरुस्ते कर्त्तुं त्वया वाञ्छति नः प्रशिष्याः ॥६०॥
निजेच्छया यात्र गुरूपसत्तिः स्यात्शिष्यता शास्त्रमता तयैव ।
बलात्कृता नैव ततो न शिष्या वयं गुरुस्त्वं विफलः श्रमो वाम् ॥६१॥

---

जो नायक हैं श्रीकृष्ण वे तो इस रंगस्थल में वृन्दा और मेरे संग ही रहे, क्षण भर के लिए भी बाहर नहीं हुए, किस नायक ने तुमको रति-नृत्य में नचाया है। अन्यथा तुम्हारे शरीरों की ऐसी दशा कैसे हो गयी ॥५८॥

यह श्रवण कर श्रीकृष्ण हँसते हँसते कहने लगे कि जो मूर्त्तिमान् उज्ज्वल रसराज है अर्थात् मैंने ही इस कुंज रूप रंगभूमि मे इन नटियों को सम्यक् रूप से नचाया है। इसी कारण इनके अंगों में नृत्य के चिन्ह प्रकट हो रहे हैं ॥५९॥

यह श्रवण कर सखियों ने प्रणय मिश्रित ईर्ष्या के साथ श्रीकृष्ण व निज सखी श्रीराधा से कहा, हे कृष्ण ! हमारी यह सखी श्रीराधा ही इस रति नृत्य में सदा तुमको नचाया करती हैं अतएव इस नृत्य में तुम्हारे गुरु ये ही हैं तथा ये तुम्हारे द्वारा हमको भी अनुशिष्य अर्थात् शिष्य का शिष्य बनाना चाहती हैं ॥६०॥

जो शिष्य अपनी इच्छा से गुरु-सेवा अथवा संग करता है उसे ही शास्त्र में शिष्य कहा जाताहै परन्तु तुमने गुरु-संग बलपूर्वक करवाया है जो उपयुक्त नहीं हुआ अतएव हम शिष्या नहीं हुई एवं तुम दोनों का परिश्रम निष्फल हो गया ॥६१॥

जानासि नो नो नकुलाङ्गनानां वृत्तिं विशुद्धां सखि भोगिनि त्वम्।
तथापि सम्पादयितुं स्वसाम्यं किं खिद्यसे प्रेर्य्य वृथा भुजङ्गम् ॥६
इत्थं विधाय पुरु-नर्म्म--विहारनृत्यं
ताभिः समं मदकरीव करेणुभिः सः ।
तत्श्रमापनयनाय कलिन्द-पुत्र्यां
कर्त्तुं समारभत वारिविहार--नृत्यम् ॥६३॥
तोये तदोरुद्वयसे कदाचित् स नाभिमात्रे क च कण्ठदघ्ने ।
आकृष्य तास्ताभिरलं निषिक्तः प्रिया हसंस्ताः कुतुकी न्यषिञ्चत् ।
एकैकाभिः पञ्चषाभिः समस्ताभिः पृथक् पृथक् ।
नानालीलाकलहां ताभिर्व्यात्युक्षीं विदधे हरिः ॥६५॥

---

हे सखि ! हे भुजंगिनि! हम नकुल स्त्री हैं हमारी विशुद्ध (पवित्र) भाव को क्या तुम जानती नही हो अर्थात् जानती हो, तथापि अपने समान हमको भी बनाने के लिए अपने पति भुजंग ( सर्प, लम्पट कामी ) को भेज करके अब क्यों वृथा खेद प्रकट कर रही हो? ॥६२॥

जैसे मदमत्त हस्ती हस्तिनियों के संग विहार पूर्वक नदी में उत्तार कर विश्राम लाभ करता है, वैसे ही श्रीकृष्ण ने भी प्रियाओं के संग पूर्ण विहार कर नृत्य के अनन्तर उस उस नृत्य के श्रम को मिटाने के लिए कलिन्द–कन्या यमुना में जलविहार का नृत्य आरम्भ कर दिया ॥६३॥

उस यमुना में कौतुकी श्रीकृष्ण ने उन प्रियाओं को कभी जानु पर्यन्त जल में खींचा तो कभी नाभि पर्यन्य और कभी कण्ठ पर्यन्त जल में खींच ले गये। उन्होंने उनको जल से खूब भिगो दिया तो उन्होंने भी हंसते हंसते जल से तर–बतर कर दिया ॥६४॥

जये तं तं समादातुं ग्लहं दातुं पराजये ।
अनिच्छुभिर्द्वयं कर्तुं स ताभिः कलहायते ॥६६॥
रात्रौ च चक्रमिथुनेन युनक्ति भृङ्गः
फुल्लाम्बुजानि पिबतीति हरौ ब्रुवाणे ।
दोःस्वस्तिकेन रुरुधुर्हृदयं प्रियास्ता
वासोऽञ्चलेन वदनञ्च विशङ्किता द्राक् ॥६७॥
निज-दृग्विजिता-शफर्य्या घट्टितप्रसृता स्वयं हरिं चकिता ।
यत् परिरेभे राधा सख्यं मेने स तेनास्याः ॥६८॥

---

पश्चात् एक एक गोपी, पाँच पाँच छः छः गोपियों अथवा समस्त गोपियों के साथ श्रीकृष्ण ने पृथक् पृथक् एक एक मंडल बना कर नाना प्रकार के बिलास का पण ( दाव ) लगाकर परस्पर जल-युद्ध आरम्भ कर दिया ॥६५॥

उस जलयुद्ध में श्रीकृष्ण जिससे जीत जाते उससे अपना पण ले लेते और जिससे हार जाते उसको उसका पण दे देते और जो कोई देने-लेने में आनाकानी करती उनके संग उस समय खूब कलह मचा देते ॥६६॥

"रात्रिबेला में चकवा-चकई मिले और भ्रमर प्रफुल्ल कमलों का मधुपान करने लगा" श्रीकृष्ण के ऐसा कहते ही प्रियावर्ग शंकित हो कर बायीं व दायीं भुजाओं को स्वस्तिका के आकार से बाँध कर अर्थात् बायीं भुजा से दायाँ कंधा और दायीं भुजा से बायाँ कन्धा पकड़ कर उनके द्वारा अपने वक्षस्थल तथा बसनांचल के द्वारा अपने मुख कमल को सबने ढ़क लिया ॥६७॥

श्रीराधा की ( चंचल ) दृष्टि से पराजित होकर शफरी ( मछली ) ने लज्जा के मारे श्रीराधा के चरणों के मध्य से होकर जंघा को स्पर्श किया तो श्रीराधा चकित हो कर स्वयं

कमलाकमलि सखीनां कमलाकमलि च बिसाबिसि प्रधनम् ।
यदभूत् तत् पश्यत इह दूराच्चित्रं हरेर्मनो विजितम् ॥६६॥
द्वित्राभिः पञ्चषाभिश्च सप्ताष्टाभिः सहाच्युतः ।
व्यतनोन्मण्डलीभूय जलमण्डुक-वाद्यकम् ॥७०॥
निर्लेपतां कुचयुगानि निरञ्जनत्वं
नेत्राणि मोक्षमगमन् रसनाः कचाश्च ।

---

श्रीकृष्ण से लिपट गयीं-इस सख्यता से श्रीकृष्ण अत्यन्त आनन्दित हो गये ॥६८॥

उधर सखियाँ परस्पर कभी जल, कभी कमल और कभी मृणाल ( कमल की डंडी ) से परस्पर युद्ध करने लगीं। उसमें किसी भी सखी की जय-पराजय नहीं हुई परन्तु दूर खड़े खड़े उनके युद्ध को देखने वाले श्रीकृष्ण के मन की पराजय हो गयी-यही आश्चर्य हुआ। तात्पर्य-सखियों के परस्पर जल-युद्ध के दर्शन कर श्रीकृष्ण मुग्ध हो गये ॥६६॥

अब श्रीकृष्ण दो, तीन, पाँच, छः, सात, आठ, गोपियों के साथ मंडली बना कर जलमण्डूक वाद्य बजाने लगे ॥७०॥

उस समय गोपियों के घनरस अर्थात् गाढ़ जल में निमग्न रहने के कारण उनके स्तनयुगल निर्लेप अर्थात् कुंकुम, चन्द-नादि के लेप से रहित हो गये, उनके नेत्र निरंजन अर्थात् काजल शून्य हो गये, करधनी, केश और नीवी ( कटिबन्धन ) को मोक्ष प्राप्त हो गया ( अर्थात् बन्धन खुल गये ) तथा मुक्ताहार निर्गुण दशा को प्राप्त हो गया अर्थात् उनके गुण ( डोर ) छिन्न हो गया। गूढ़ार्थः—गोपियाँ घनरसं अर्थात् प्रगाढ़ विलास में निमग्न होने पर उनके स्तनयुगल निर्लेप हो गये अर्थात् श्रीकृष्ण रूपी परब्रह्म के अंग संस्पर्श से प्रकृति-माया का लेप मिट गया, नयनसमूह

नीव्यश्च निर्गुणदशां सह हारमाल्या
मग्नासु तद्घनरसे रमणीष्वभूवन् ॥७१॥
आलेपनालङ्करणैरभूणमनावृता वारि-विहार-धौता ।
क्लिन्नाम्बरोद्यत्सहजाङ्गशोभा-लोभाय कृष्णस्य दृशोस्तदासीत् ॥७२॥
तासां वक्षश्चन्दनैः श्वेततोया कृष्णा साम्यं गङ्गयाऽसौ गतापि ।
शौरेस्तत्केलिसौभाग्यलाभात्ताभिः शश्वत् सुष्ठु सा तामजैषीत् ॥७३॥
इत्थं विधायाम्बु-विहार-नृत्यं कान्तः सकान्ताभिरवाप्ततीरः ।
सखीकुलैर्मार्जित-केश-वर्ष्मा दधार प्रत्युद्गमनीय-वस्त्रम् ॥७४॥

---

निरंजन हो गये अर्थात् त्रिगुणात्मक अंजन रूप जो शरीरादि उपाधि हैं उनसे मुक्त हो ब्रह्मस्वरूप हो गये, किंकिणी, केश व कटि भी मायिक बन्धन से मुक्त हो गये तथा मुक्ताहार भी निर्गुण हो गया अर्थात् तीनों गुण से परे हो गया। तात्पर्य-श्रीकृष्ण के अंगसंस्पर्श से गोपियाँ दिव्य चिन्मयी (कृष्णमयी) बन गयीं॥७१

इस प्रकार जलक्रीड़ा में गोपियों के अत्यन्त आसक्त होने पर, उनके अंगों में लगे हुए कुंकुम-चन्दनादि के लेप रूपी अलंकारों के जल-विहार में धुल जाने पर जो अनावृत शोभा भीगे तन पर लगे वस्त्रों में से छिटक रही थी, उससे श्रीकृष्ण के नयन-युगल अतिशय लुब्ध हो उठे ॥७२॥

गोपियों के वक्षस्थल के चन्दन से यमुना का जल श्वेत हो जाने से यमुना गंगा के समान हो गयी परन्तु तथापि गोपियों के संग श्रीकृष्ण की जल-केलि का सौभाग्य बारंबार होने के कारण ही उसी यमुना ने गंगा पर विजय भी प्राप्त कर ली अर्थात् इस अपूर्व अनन्य सौभाग्य के कारण यमुना गंगा से श्रेष्ठ बन गयी ॥७३॥

श्रीकृष्ण इस प्रकार से जल बिहार रूपी नृत्य कार्य समाप्त

वृन्दा ताभिः समं कृष्णमानीय स्वर्णमण्डपम् ।
तत्पूर्व्व-कुट्टिमे पुष्पास्तरणे तं न्यवीविशत् ॥७५॥
ततः सवृन्दोपनिनाय वृन्दा कल्पागवल्ली-फलसम्पुटांस्तान् ।
पूर्णान् विचित्राम्बर-भूषणानु-लेपाञ्जनैर्गैजवर्णकैश्च ॥७६॥
तत्तन्नामाङ्कितानालीततिरादाय पटकान् ।
कृष्णं राधां सखीश्चासूः पृथक् पृथगभूषयत् ॥७७॥
हरिरुज्ज्वल-रसमूर्त्ती रतिपरिणति-मूर्त्तयो हि राधाद्याः ।
विधुरयमस्य कलास्ता एकात्मानोऽपि तत् पृथग्देहाः ॥७८॥

---

करके कान्तावृन्द सहित तीर पर निकल आये। सखियों ने दोनों के केश व अंग-प्रत्यंग को पोंछा तब दोनों ने उत्तरीय व परिधेय के रूप में दो-दो स्वच्छ वस्त्र धारण किये ॥७४॥

तब श्रीवृन्दादेवी गोपियों सहित श्रीकृष्ण को सुवर्णमण्डप में पधरा कर ले गयी तथा पूर्व की ओर की वेदिका के ऊपर कुसुम-शय्या पर उनको शयन कराया ॥७५।

पश्चात् वृन्दादेवी ने सखियों के साथ मिल कर कल्पतरु के फल रूपी पिटारियों को ( फल ही पिटारी का काम भी देतीं ) विचित्र वस्त्रों, भूषणों, कुंकुम, चन्दनादि अनुलेप, सिन्दूर व तिलक से भर भर कर श्रीकृष्ण, श्रीराधा आदि के समीप ले जाकर उपहार भेंट किया ॥७६॥

उन फल रूपी पेटियों पर श्रीराधा, श्रीकृष्ण, ललिता आदि सखियों के नाम सब पृथक् पृथक् लिखे हुए थे, अतएव सेवापरा सखियों ने अपनी अपनी पेटा ले ले कर श्रीराधा, श्रीकृष्ण एवं सखियों का पृथक् पृथक् शृंगार किया ॥७७॥

श्रीकृष्ण उज्ज्वल रस अर्थात् शृंगार रस की मूर्त्ति हैं तथा श्रीराधा आदि शृंगार-रस का स्थायी-भाव जो रति है उस

मिथः स्नेहाभ्यङ्ग-रम्याः सख्योद्वर्त्तन-सुप्रभाः ।
तारुण्यामृत-सुस्नाता लावण्य-रसनोज्ज्वलाः ॥७९॥
मिथः सौभाग्य-तिलकाः सौन्दर्य-स्थासकाञ्चिताः ।
अष्टाभिश्चित्रिताङ्ग्यश्च स्तम्भाद्यैर्भाववर्णकैः ॥८०॥
किलकिञ्चित-बिव्वोकाद्युन्मादोत्सुकतादिभिः ।
नानाभावैरलङ्कारैः सुष्ठ्वलङ्कृत-मूर्त्तयः ॥८१॥
सप्रियास्ताः प्रिया यद्यप्यन्तरित्थं विभूषिताः ।
प्रियालिभिर्बहिरपि भूषिता भूषणैर्बभुः ॥ ८२॥ चतुर्भिः कुलकम्

---

रति के परिपाक अर्थात् पराकाष्ठा की मूर्त्ति हैं । यह श्रीकृष्ण चन्द्रमा हैं, वे श्रीराधा आदि चन्द्रमा की कला रूपिणी हैं, अतएव चन्द्रमा और कलाओं में अभेद है। वे दोनों एकात्मा ही है तथापि लीला के लिए पृथक् पृथक् देह धारण किये हुए हैं ॥७८

आगे के चार श्लोकों में भी श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा व सखियों की यही एकात्मा वर्णित है यथा:-श्रीराधा आदि प्रियावर्ग परस्पर के स्नेह रूपी तेल के मार्जन ( मालिश ) से मनोहरा बन सख्यभाव का उबटना लगा सुन्दर कान्तिमती बन यौवन रूपी अमृत में स्नान कर, लावण्यरूपी वस्त्रों को धारण कर उज्ज्वलांगी बनी हुई हैं ॥७९॥

वे परस्पर के सौभाग्य रूप तिलक को धारण कर सौन्दर्य रूप अंगराग से युक्त हो स्तम्भ, स्वेद, पुलकादि अष्ट प्रकार के सात्त्विक भावों से चित्रितांगी बनी हुई हैं ॥८०॥

वे किल-किंचित, बिब्बोक, उन्माद व औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भावों तथा अंगज व स्वभावज विविध भावों के अलंकारों से सुन्दर रूप से अलंकृतांगी बनी हुई हैं ॥८१॥

इस प्रकार समस्त प्रेयसी वर्ग प्रियतम से संयुक्त होने के

अनङ्गगुटिका सीधुविलासं दुग्धलड्डुकम् ।
आनीतं रूपमञ्जर्य्या यद्‌यानि वृन्दया वनात् ॥८३॥
फलानि रस-रूपाणि मधुतुल्य-रसानि च ।
तान्यस्वाद्याचम्य ताभिः स विवेश केलिमन्दिरम् ॥८४॥ युग्मकम्
तस्मिन्मुक्त-चतुर्द्वारि यमुनानिल-शीतले ।
कोटि-सूर्य्यांशु-सद्रत्नचयांशु-परमोज्ज्वले ॥८५॥
मनोज-केलिनिलयेऽगुरु-धूपातिसौरभे ।
विन्यस्त-रत्न-पर्य्यङ्के हंसतुलिकयान्विते ॥८६॥
सूक्ष्माम्बरावृतावृन्त-सत्पुष्पास्तरणोपरि ।
नानोपधान-चित्रान्ते कृष्णः सुष्वाप कान्तया ॥८७ सन्दानितकम्

---

कारण पूर्वोक्त भावालंकारों से बाहर-भीतर विभूषित हैं ही, तथापि सखियों द्वारा नाना प्रकार के बाह्य भूषणों से भी विभूषिता होने पर उनकी शोभा दुगुनी प्रकाशित होने लगी ॥८२॥

अब दो श्लोकों में भोजनादि कार्य द्वारा भी उनकी एकात्मता दिखाते हैं, यथाः—श्रीकृष्ण आदि सबों के भोजन के लिए रूपमंजरी अनंगगुटिकादि, अमृतविलास, दूध व लड्डुए ले आयीं और वृन्दादेवी बिना गुठली व छिलकों के मधु जैसे मीठे व सरस फल ले आयीं । श्रीकृष्ण ने श्रीराधादि के साथ वह सब भोजन कर आचमन ले केलिमन्दिर में प्रवेश किया ॥८३-८४

केलिमन्दिर व शय्या का वर्णन:—केलिमन्दिर के चारों द्वार खुले हुए हैं, वह यमुना की वायु से शीतल है, करोड़ों सूर्यों की किरणों की भाँति उज्ज्वल रत्नों की किरणमाला से परम उज्ज्वल रत्नों की किरणमाला से परम उज्ज्वल है, कामकेलि का निवास स्थल है, अगुरु धूप से सुगन्धित है, उसमें रत्नपर्यंक ( पलंग ) बिछा हुआ है, हंसतूलिकाएं ( कोमल गद्दियाँ ) बिछी हुई हैं, ऊपर से सूक्ष्म वस्त्र व पुष्प की पंखुरियों से आवृत है तथा नाना प्रकार के छोटे-मोटे इधर उधर तकिये लगे हुए हैं ऐसी

पर्य्यङ्क-पार्श्व स्थित-खट्टिकायुगे सुखं निविष्टे ललिता-विशाखिके ।
कृष्णाख्य-ताम्बूल-सुचर्व्वितान्तने ताम्बूलमास्वादयतां निजेश्वरौ ॥
श्रीरूप-रतिमञ्जर्य्यौ पादसम्वाहनं तयोः ।
चक्रतुश्चापरा धन्या व्यजनैस्तावबीजयन् ॥८९॥
क्षणं तौ परिचर्य्येत्थं निर्गताः केलिमन्दिरात् ।
सख्यस्ताः सुषुपुः स्वे स्वे कल्पवृक्ष-लतालये ॥९०॥
श्रीरूपमञ्जरीमुख्याः सेवापराः सखीजनाः ।
तल्लीला-मन्दिर-बहिः कुट्टिमे शिश्यिरे सुखम् ॥९१॥
यत् पालितं तातमुखैर्विवर्द्धितं गोलाख्यैर्भिन्नगणैर्निषेवितम् ।
भक्तैः सदास्वादितमेनदालिभिः श्रीराधया कृष्णरसामृतं फलम् ॥

---

शय्या पर कान्ता के साथ श्रीकृष्ण ने शयन किया ॥८५—८७॥

तब पलंग के पार्श्व में स्थित दो छोटे छोटे खटोलों पर ललिता व विशाखा दो ओर बैठ कर अपने-ईश्वर-ईश्वरी श्रीराधा-कृष्ण को ताम्बूल अर्पण करने लगीं तथा श्रीराधाकृष्ण भी अपना चर्वित ताम्बूल ललिता—विशाखा के मुख में दे दे कर आस्वादन कराने लगे ॥८८॥

उस समय श्रीरूपमंजरी व रतिमंजरी श्रीराधाकृष्ण के श्री—चरणों को चाँपने लगीं तथा अन्यान्य परम धन्यवती सखियाँ चँवर ढुलाने लगीं ॥८९॥

इस प्रकार कुछ समय तक सखियों ने श्रीराधाकृष्ण की सेवा करके, बिलास मन्दिर से निकल अपने अपने कल्पतरु निर्मित लता कुंज में जा कर शयन किया ॥९०॥

( परन्तु ) श्रीरूपमंजरी आदि सेवापरायण सखियों ने उसी लीलामन्दिर के बाहर की वेदिका पर ही सुख पूर्वक शयन किया ॥९१॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण की रात्रि—शेष पर्यन्त की अष्ट—कालीन लीलाओं का वर्णन समाप्त करके श्रीकृष्ण के चतुर्विध परिकरों

कृष्णस्य वृन्दाविपिनेऽत्र राधया लीला अनन्ता मधुराश्चकासति ।
क्षणे क्षणे नूतन-नूतना: शुभा दिङ्मात्रमेतन्मयका प्रदर्शितम् ॥९३

श्रीरूप--दर्शित--दिशा लिखिताष्टकाल्या
श्रीराधिकेश--कृतकेलिततिर्मयेयम् ।
सेवाऽस्य योग्यवपुषाऽनिशमत्र चास्या
रागाध्व-साधक-जनैर्मनसा विधेया ॥९४॥

पादारविन्द--भृङ्गेण श्रीरूप--रघुनाथयो: ।
कृष्णदासेन गोविन्दलीलामृतमिदं चितम् ॥९५॥

---

दास, सखा, माता-पिता व प्रियागण—में से मधुर परिकरों का ही सुखोत्कर्ष दर्शाते हैं, यथा:—जिस रसामृतफल का नन्द-यशोदा ने वात्सल्य रस द्वारा लालन-पालन किया, सुबल-मधुमंगलादि सखाओं ने सख्य लीलारस द्वारा निरन्तर पुष्ट कर बढ़ाया, तथा रक्तक-पत्रक आदि दासों ने दास्यलीलारस से निरन्तर सेवा-सुश्रुषा की, उसी श्रीकृष्ण रूपी रसामृत फल को सखियों सहित श्रीराधा ने मधुर लीलारस द्वारा सर्वदा आस्वादन किया अर्थात् सम्भोग सुख का अनुभव किया ॥९२॥

अब ग्रंथकार श्रीकृष्णदास कविराजगोस्वामी महाशय कहते है कि श्रीवृन्दावन में श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण की अनन्त मधुर-लीला क्षण क्षण में नवीन नवीन रूप से प्रकाशित हो रही है—मुझ क्षुद्र ने केवल उसका दिग्दर्शन मात्र ही कराया है ॥९३॥

श्रीरूपगोस्वामीपाद के प्रदर्शित पथ अर्थात् उनके बताये हुए स्मरणमंगल के अनुसार श्रीराधाकृष्ण की "प्रातः, पूर्वान्ह, मध्यान्ह, अपरान्ह, सायान्ह, प्रदोष, मध्यरात्रि व निशान्त"—ये अष्टकालीन लीलाएँ मैंने लिखी हैं। रागमार्गानुगत साधक भक्तगण, अन्तश्चिन्तित योग्यवपु अर्थात् गुरूपदिष्ट सेवायोग्य सिद्ध देह द्वारा अथवा साधकावस्था में भावना द्वारा समय

र इन लीलाओं का आस्वादन करें ९४

यैरेतत् परिपीयते हृदि लसत्तृष्णातिरेकान्मुहु—
र्ब्रह्माद्यैरपि दुर्गमं व्रजविधोर्लीलामृतं राधया ।
वृन्दारण्य-विलासिनी-कुमुदिनीवृन्दस्य बन्धुर्व्रजे
कारुण्यादचिरेण वाञ्छिततमं तेषां तनोतु स्वयम् ॥९६॥
श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दास-कृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ—भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽयं रजनी-विलास-ललितः पूर्णस्त्रयोविंशकः ॥२३॥

इति श्रीकृष्णदासकविराज—गोस्वामिविरचितं
श्रीगोविन्दलीलामृतं महाकाव्यं समाप्तम् ॥

---

श्रीरूप व श्रीरघुनाथदासगोस्वामी युगल के चरणकमलों के भ्रमरस्वरूप इस श्रीकृष्णदास ने यह गोविन्दलीलामृत मधु संचय किया अर्थात् भ्रमर जैसे पुष्पों में से मधु संग्रह करता है ऐसे ही मैंने भी अपार अनन्त श्रीकृष्णलीलामृत सागर में से कुछ अमृत-कणों का उद्धार किया है ॥९५॥

फल—श्रुति वर्णनः—श्रीवृन्दावन चन्द्र श्रीकृष्ण के श्रीराधिका के साथ लीलामृतस्वरूप, ब्रह्मादिकों को भी दुर्लभ इस गोविन्द-लीलामृत को जो अतिशय लालसापूर्वक पान करेगा अर्थात् श्रवण व पठन करेगा उसको वृन्दावन—विलासिनी गोपीरूप कुमुदिनियों के प्राणबन्धु श्रीकृष्ण उसके अभीष्ट फलरूप युगल-सेवा प्राप्ति को स्वयं ही प्रदान कर देंगे ॥९६॥

इस प्रकार यहाँ श्रीगोविन्दलीलामृतमहाकाव्य का यह रजनी विलासात्मक तेइसवाँ सर्ग समाप्त हुआ। यह गोविन्दलीला—मृत श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु के पदारविन्दों के मधुपस्वरूप श्री—रूपगोस्वामी की सेवा का फल है, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरित है, श्रीमज्जीवगोस्वामी के सत्संग में उदय हुआ है तथा श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वर के प्रभाव से प्रादुर्भूत है ॥२३॥